तब होता है ध्यान का जन्म

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब होता है ध्यान का जन्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विश्व भारती प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब होता है ध्यान का जन्म

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादक : मुनि धनंजय कुमार

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

सौजन्य : **स्व. पूज्य पिताजी हजारीमलजी श्यामसुखा एव पूज्य मातृश्री स्व. श्रीमती मूली देवी, श्रीडूंगरगढ़ (राज.) की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री भंवरलाल, बुद्धमल, गुलाबचन्द, हड़मानमल एवं भूरामल श्यामसुखा।**

संस्करण : २००१

मूल्य : ५०. रुपये

प्रकाशक : जैन विश्व भारती लाडनूं - ३४१ ३०६
नागौर (राज.)

मुद्रक : **कला भारती**
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

TAB HOTA HAI DHYAN KA JANM
Acharya Mahaprajna

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

'ज्ञान-ध्यान' एक वाक्यांश है। ज्ञान के लिए ध्यान आवश्यक है और ध्यान के लिए ज्ञान आवश्यक है। प्रकृति की दृष्टि से दोनों एक हैं और प्रक्रिया की दृष्टि से दोनों दो हैं। ज्ञान में चल अंश विद्यमान है और ध्यान में स्थिर अंश। चंचलता जितनी सहज है स्थिरता उतनी सहज नहीं है। शरीर, वाणी और मन के साथ चलने का जन्म सिद्ध अभ्यास है, किन्तु शरीर, वाणी और मन से परे जाने का अभ्यास नहीं है। जो नहीं है, वह जब 'है' में बदलता है, तब होता है ध्यान का जन्म। देह की आसक्ति चंचलता पैदा करती है। बोलने की पृष्ठभूमि में आसक्ति छिपी रहती है। मन भी उसका वाहक बना रहता है।

जिस क्षण शरीर, वाणी और मन के पीछे खड़ी आसक्ति का दर्शन होता है, उसी क्षण ध्यान व्यक्त हो जाता है

चंचलता की अपनी समस्याएं हैं तो ध्यान के सामने भी कम समस्याएं नहीं हैं। आवश्यक है ध्यान के विषय का ज्ञान, अनुकूल वातावरण, प्रारम्भ बिन्दु को पकड़ना, ध्यान के फलित के विषय में असंदिग्ध होना। सबसे बड़ी समस्या है मन से परे जाने के लिए मन का ही सहारा लेना। समस्या के कुछ बिन्दुओं पर विचार करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक का यत् किंचित् मात्रा में उपयोग हो सकेगा। इसमें न अति गहराई में जाने का प्रयत्न है और न दिशा का अतिक्रमण है, मध्यम मार्ग है। इस पर चलकर ध्यान की गहराई तक पहुंचा जा सकता है, बस इतना पर्याप्त है।

प्रस्तुत पुस्तक के संपादन में धनंजयकुमार ने निष्ठापूर्ण श्रम किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ

11 नवम्बर, 1995
जैन विश्व भारती,
लाडनूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादकीय

* एक दिन
अवस्थित था मैं चेतना के तट पर
सामने विस्तीर्ण था अवचेतन का महासागर
चंचल जल का पूर्वरंग
उछलती-मचलती तरंग
टकराई तट से उत्ताल ऊर्मियां
बिखेर गई शंख-सीपियां
फैली सूर्य की प्रकाश-रश्मियां
चमकी सीपियां,
चुंधियां गई अंखियां
नयन हुए निमीलित
विलीन हो गया बाह्य जगत्
खुला सहसा अभ्यन्तर द्वार
सामने था एक नया संसार।

* और........
मुंदी आंखों में उभरा वह संसार
जोड़ रहा था आत्मा का आत्मा से तार
चंचल लहरों को चीर कर
संयत और संगुप्त होकर
छू ली अतल गहराई
दर्शन केन्द्र पर उभरी अरुणाई
विलीन हो गया मन
न चिंतन न वचन
स्थिर शिथिल तन
पूर्ण जागृत था चेतन
केवल चैतन्य का बोध
स्व-संवेदन आत्म-संबोध।

* महाप्रज्ञ का मौलिक उद्बोध
अनुभूत सत्य का प्रबोध
यही है ध्यान का अवतरण
जीवन का पवित्र/मंगल क्षण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* जिज्ञासा का यह स्वर
मुहुर्मुहुः होता है मुखर
एक योगी के लिए है यह ध्यान
सामान्य आदमी क्यों करे अपना संधान?
ध्यान से निकम्मा बनता है व्यक्ति
हम क्यों करें कुंठित कर्मजा शक्ति?
क्या कभी मिट सकती है चंचलता?
और फल सकती है ध्यान की कल्पलता?
जिसने क्षण भर भी न देखा अपना सद्म
उसके भीतर कब हो सकता ध्यान का जन्म?

* महाप्रज्ञ कहते हैं—
केवल योगियों के लिए नहीं है ध्यान
उन सबके लिए जरूरी है स्व-संधान
जो चाहते हैं अपनी समस्या का समाधान
स्वस्थ, शांत एवं समाधिपूर्ण जीवन का वरदान
अकर्मण्यता नहीं, परम पुरुषार्थ है ध्यान
युग की आवश्यकता है ध्यान
मन, वाणी और शरीर का करें निरोध
निश्चित प्रगटेगा अपना बोध
और तब होगा ध्यान का जनन
खिलेगा मुरझाया जीवन उपवन।

* प्रेक्षा वर्ष का संदर्भ
प्रस्तुत है जीवित/प्रायोगिक धर्म
महाप्रज्ञ का अनुपमेय सृजन
मुनिश्री दुलहराज के आत्मीय सहकार से निष्पन्न
जिसमें है जीवन के हर पक्ष का स्पर्श
बन सकता है एक आदर्श
आप इसे पढ़ें ही नहीं, जीएं
प्रेक्षा का अमृत पीएं
बुझेगी निश्चित अध्यात्म की प्यास
मिलेगा जीवन को निर्मल उच्छ्वास।

मुनि धनंजय कुमार

११.११.९५

जैन विश्व भारती, लाडनूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

1. तब होता है ध्यान का जन्म १
2. ध्यान का प्रारम्भ कहां से करें? ९
3. ध्यान किसका करें? १८
4. ध्यान का परिवार २५
5. ध्येय का चुनाव ३५
6. ध्येय का साक्षात्कार ४३
7. संभव है आत्मा का साक्षात्कार ५१
8. ध्यान तब सधेगा? ५८
9. ध्यान की दिशा बदलने के लिए ६५
10. ध्यान कोई जादू नहीं है ७५
11. व्यक्तित्व निर्माण और ध्यान ८४
12. बाहर उजला भीतर मैला ९४
13. ध्यान और मस्तिष्कीय प्रशिक्षण १०३
14. पर्यावरण और ध्यान ११२
15. ध्यान और परिवार ११९
16. नशा और ध्यान १२७
17. तनाव और ध्यान १३४
18. सामाजिक समता और ध्यान १४३
19. मानवीय सम्बन्ध और ध्यान १५२
20. आवेग और ध्यान १६०
21. सुरक्षा और ध्यान १६८
22. ध्यान की कसौटी १७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब होता है ध्यान का जन्म

महापुरुष का जन्म शुभ बेला, शुभ घड़ी और शुभ नक्षत्र में होता है। ध्यान एक महान तत्त्व है। जब कोई विशिष्ट अवस्था होती है, विशिष्ट अवसर होता है और कोई शुभ नक्षत्र होता है तब ध्यान का अवतरण होता है।

बाह्य और आंतरिक वातावरण

ध्यान के अवतरण के लिए कुछ मर्यादाओं का निर्देश किया गया है। बाहरी और आंतरिक दोनों वातावरण अनुकूल होते हैं तब ध्यान का जन्म होता है। स्वच्छ स्थान, कोलाहल से मुक्त पवित्र वातावरण, पद्मासन, वज्रासन या अर्द्धवज्रासन, बन्द या अधमूंदी आंखें, जिनमुद्रा, ज्ञानमुद्रा अथवा खुले हाथ की मुद्रा, बाएं हाथ पर दायां हाथ—यह सब ध्यान का बाहरी वातावरण है। इस वातावरण में ध्यान का जन्म होता है।

दूसरा है आंतरिक वातावरण। आचार्य रामसेन ने ध्यान की जन्मसामग्री का निर्देश इस प्रकार किया है—

संगत्यागः कषायाणां, निग्रहो व्रतधारणम्।
मनोक्षाणां जयश्चेति, सामग्री ध्यानजन्मनि।।

जब संग का त्याग होता है, आसक्ति कम होती है तब ध्यान का जन्म होता है। तीव्र आसक्ति वाले पुरुष में कभी ध्यान जन्म नहीं लेता। कषायों पर अपना नियंत्रण होता है तो ध्यान का जन्म होता है। बहुत तीव्र कषाय वाले व्यक्ति में ध्यान का जन्म नहीं होता। जिस व्यक्ति में संकल्प होता है, व्रत और नियम होता है, उसमें ध्यान का जन्म होता है। असंयमी मनुष्य में ध्यान का जन्म नहीं होता। जब मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है तब ध्यान का जन्म होता है।

अनासक्ति, कषाय-निग्रह, मनोविजय, व्रत-धारण और इन्द्रिय-विजय—यह ध्यान की जन्म-सामग्री है। जहां ऐसा वातावरण है वहां ध्यान उत्पन्न होता है। जैन आगमों में देवों के जन्म के संदर्भ में बताया है कि उपपत्ति स्थान में शय्या होती है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर एक देवदूष्य होता है, पवित्र वातावरण होता है, वहां देवों का जन्म होता है, उपपात होता है। ध्यान का भी उपपात–जन्म हर जगह नहीं होता। बहुत सारे लोग ध्यान करते हैं, वर्षों तक करते रहते हैं। वे निराशा के स्वर में कहते हैं–मन की चंचलता नहीं मिटी, मन उतना ही चंचल है, ध्यान पैदा नहीं हुआ। इसका कारण स्पष्ट है–ध्यान के अवतरण के लिए जो सामग्री चाहिए, वह सामग्री मिली नहीं और सामग्री की समग्रता के बिना ध्यान का अवतरण होता नहीं।

अनासक्ति और ध्यान

एक प्रश्न हमारे सामने है–पहले अनासक्ति का विकास हो या पहले ध्यान का प्रारंभ? अनासक्त हो जाएं तो फिर ध्यान करने की आवश्यकता ही क्या है? अनासक्त न हों तो ध्यान का जन्म नहीं होता। यह एक समस्या है। पहले क्या करें? कहां से प्रारंभ करें? एक विरोधाभास हमारे सामने आता है, किंतु इसका समाधान बहुत जटिल नहीं है। जो व्यक्ति ध्यान का संकल्प करता है, उसके लिए अनासक्ति का संकल्प लेना भी जरूरी है, कषाय-विजय का संकल्प लेना भी जरूरी है, व्रत का धारण करना भी आवश्यक है, चाहे वह किसी भी मात्रा में हो। जो व्यक्ति ध्यान करना चाहता है,उसके लिए मन की चंचलता को कम करने का संकल्प जरूरी है, अपनी इन्द्रियों पर विजय पाना भी जरूरी है। ध्यान करने वाला इन संकल्पों के साथ ध्यान का प्रारंभ करता है तो ध्यान का अवतरण होने लग जाता है। इन संकल्पों के बिना केवल ध्यान करने बैठ जाएं तो संभव है कि तनाव मिट जाए, अमुक बीमारी मिट जाए किंतु ध्यान का अवतरण नहीं होता। व्यक्ति कायोत्सर्ग करेगा, तनाव मिटेगा पर ध्यान की उपलब्धि नहीं होगी। वास्तव में ध्यान का जो महत्त्व है, ध्यान के द्वारा हमारे जीवन में जो घटित होना चाहिए, वह नहीं होगा, मात्र एक छोटी-सी उपलब्धि हो जाएगी। इन उपलब्धियों के आकर्षण से आजकल ध्यान एक व्यवसाय बन गया। वह प्रलोभन के साथ भी चलता है। अनेक ऐसे ध्यान के गुरु हैं, जो शक्तिपात का प्रलोभन देते हैं। कहते हैं–शक्तिपात करते ही ध्यान होने लग जायेगा। इस प्रलोभन में सामान्य व्यक्ति फंस जाता है। जो समझदार होता है, वह प्रलोभन में नहीं फंसता।

संन्यासी गांव में आया। एक समझदार आदमी उसके पास गया। संन्यासी ने कहा–'तुम मेरे अनुयायी बन जाओ।'

उसने पूछा–'क्यों ?'

संन्यासी ने उत्तर दिया–'मैं तुम्हें स्वर्ग का राज्य दूंगा।'

प्रबुद्ध व्यक्ति बोला–'तुम मेरे अनुयायी बन जाओ, मैं तुम्हें दिल्ली का राज्य दूंगा।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'क्या दिल्ली का राज्य तुम्हारे बाप का है?' संन्यासी ने पूछा

'तो क्या स्वर्ग का राज्य तुम्हारे बाप का है?' व्यक्ति ने पूछा

संन्यासी यह सुनकर स्तब्ध रह गया।

ध्यान के नाम पर यह प्रलोभन चल रहा है, व्यवसाय चल रहा है। वास्तव में ध्यान का अवतरण तब होगा जब हमारे भीतर यह संकल्प प्रस्फुटित होगा—'मैं चित्तशुद्धि के लिए ध्यान का प्रयोग कर रहा हूँ।' हम इस संकल्प के साथ चलें तो ध्यान का अवतरण होगा, चित्त की शुद्धि होगी, अन्यथा यह संभव नहीं है।

कायोत्सर्ग और ध्यान

व्यक्ति में आसक्ति प्रबल होती है। आसक्ति है पदार्थ के प्रति, शरीर के प्रति। मूर्च्छा प्रबल है। उसकी प्रबलता के कारण ध्यान भी नहीं होता और ध्यान का पहला चरण कायोत्सर्ग भी नहीं होता। कायोत्सर्ग कब सधता है? कोरी शिथिलता सधी, शवासन हो गया। हठयोग का शवासन और जैन परंपरा का कायोत्सर्ग—दोनों की प्रक्रिया में कुछ समानता है, किन्तु मूलभूत अन्तर भी स्पष्ट रहना चाहिए। शवासन में कोरी शिथिलता का प्रयोग है। कायोत्सर्ग शिथिलता के साथ-साथ ममत्व के विसर्जन—भेद-विज्ञान का प्रयोग है। जब तक भेद-विज्ञान नहीं होता, कायोत्सर्ग नहीं सधता। 'आत्मा भिन्न शरीर भिन्न'—यह बुद्धि जब तक नहीं जागती, कायोत्सर्ग नहीं सधता।

कायोत्सर्ग का अर्थ है—ममत्व का विसर्जन। शरीर ममत्व का पहला बिन्दु है। 'मेरा शरीर' यहां से ममकार का प्रारंभ होता है और फिर यह इतना विस्तार पा लेता है कि दुनिया के प्रत्येक पदार्थ पर ममकार हो जाता है। वह व्यक्ति का चाहे हो या नहीं, व्यक्ति उसे अपना बनाना चाहता है। यह मेरापन का भाव ममकार का विस्तार है। कायोत्सर्ग तब तक नहीं सधता जब तक ममत्व का विसर्जन नहीं सधता। कायोत्सर्ग का अभ्यास करने वाले प्रत्येक साधक को यह बोध निरंतर होना चाहिए कि मैं केवल शिथिलता का प्रयोग नहीं कर रहा हूं, केवल प्रवृत्ति का विसर्जन या तनाव का विसर्जन नहीं कर रहा हूं, मैं ममत्व विसर्जन के साथ शिथिलता का अभ्यास कर रहा हूं अथवा ममत्व विसर्जन के लिए शिथिलता का अभ्यास कर रहा हूं। जब ममत्व का विसर्जन होगा, कायोत्सर्ग होगा, तब ध्यान का अवतरण होगा?

कायोत्सर्ग ध्यान करने के लिए उतना ही जरूरी है जितना कि भोजन के लिए स्वस्थ पाचन-तंत्र का होना जरूरी है। व्यक्ति भोजन करता है। यदि पाचन-तंत्र स्वस्थ नहीं है तो क्या होगा? भोजन करने का कोई परिणाम आएगा? स्वस्थ पाचन-तंत्र होता है तो आहार रस-रूप में परिणमन पाता है। उसका शरीर के लिए उपयोग होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठीक वैसे ही जब तक कायोत्सर्ग सम्यक् नहीं सधता तब तक ध्यान का अवतरण नहीं हो सकता।

कषाय-निग्रह और संयम

दूसरा तत्त्व है–कषाय-निग्रह। क्रोध, मान, माया, लोभ–इनका निग्रह होना चाहिए। इनका निग्रह नहीं होता है तो ध्यान का अवतरण नहीं हो सकता। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ध्यान का प्रारम्भ करने वाला वीतराग बनकर आए। यदि वीतराग बन जाए तो ध्यान की जरूरत ही नहीं है। उसके स्वतः ध्यान सिद्ध हो गया। यह संभव नहीं है किन्तु एक सीमा तक निग्रह करने का दृढ निश्चय होना चाहिए। क्रोध को कम करूंगा, अहंकार को कम करूंगा, कपट और लोभ को कम करूंगा–यह निश्चय होता है तो ध्यान का अवतरण होता है।

तीसरा तत्त्व है–संयम। यदि जीवन में कोई संयम नहीं है तो ध्यान कहां से आएगा? असंयम की परिस्थिति में ध्यान का जन्म नहीं होता।

मन का निग्रह

चौथा तत्त्व है–मन का निग्रह, मनोविजय। मन की चंचलता है तो ध्यान का जन्म नहीं हो सकता। प्रश्न वही उभरता है–मन की एकाग्रता पहले हो या ध्यान पहले हो? हम ध्यान का प्रयोग मन की चंचलता को मिटाने के लिए करते हैं पर साथ-साथ यह अनुभूति होनी चाहिए कि अभी जो प्रयोग प्रारंभ कर रहे हैं, वह ध्यान नहीं कर रहे हैं, ध्यान का वातावरण बना रहे हैं। कहा जाता है–श्वास को देखें। इसका अर्थ है–श्वास को देखना ध्यान का वातावरण बनाना है। श्वास-प्रेक्षा का प्रयोग करना ध्यान के लिए उचित भूमि तैयार करना है। जिसने श्वास को देखना सीख लिया, उसने मन की चंचलता को कम करने का अभ्यास कर लिया। जैसे ही चंचलता कम होगी, ध्यान का अवतरण हो जाएगा।

ध्यान की पृष्ठभूमि

महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में अष्टांग योग की एक व्यवस्थित पद्धति का प्रतिपादन किया है। अष्टांग योग का प्रारम्भ होता है आसन, प्राणायम, यम और नियम से। उसके बाद होता है प्रत्याहार, धारणा। फिर सातवां नम्बर आता है ध्यान का। यह पृष्ठभूमि है ध्यान की। प्रत्येक ध्यान-प्रणाली के साथ आसन-प्राणायाम बहुत आवश्यक है। व्यक्ति ध्यान करता है, आसन नहीं करता है तो पाचन-तंत्र में गड़बड़ी हो सकती है। ध्यान को व्यवस्थित करने के लिए आसन का होना जरूरी है। प्राणायाम और प्रत्याहार भी आवश्यक है। हम शरीर को देखते चले गए, श्वास को देखते चले गए, यह वास्तव में धारणा है, ध्यान का पहला रूप है। ध्यान का जन्म कब होगा? जब एक-प्रत्यय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्तति होगी तब ध्यान का जन्म होगा। एक विषय पर लगातार दस मिनट, बीस मिनट, आधा घंटा, घंटा तक हमारा चित्त स्थिर हो जाए, केवल उसी विषय पर हम केन्द्रित हो जाएं, उसका नाम है ध्यान। श्वास को देखते चले गये, धारणा होती चली गई, वह ध्यान का पहला रूप है। धारणा, ध्यान और समाधि–तीनों संलग्न हैं। किंतु जब तक एक बिंदु पर केन्द्रित नहीं है तब तक वह धारणा है।

हमारी यह अवधारणा स्पष्ट होनी चाहिए कि जब तक मन की चंचलता रहती है, ध्यान सधता नहीं है। दीर्घश्वास का प्रयोग इसलिए है कि चंचलता थोड़ी कम हो जाए। यह चंचलता को कम करने का प्रयोग और ध्यान का पूर्वाभ्यास है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का प्रयोग इसलिए है कि प्राण का संतुलन और नाड़ी-तंत्र का संतुलन सधे, चंचलता कम हो जाए। एक नथुने से श्वास लेना, दूसरे से निकालना, फिर दूसरे से लेना, पहले से निकालना–यह समवृत्ति श्वास की पद्धति है। इससे एकाग्रता भी बढ़ती है, साथ-साथ संतुलन भी बनता है। सम्यक् श्वास का प्रयोग भी इसीलिए है। नाभि–तैजस केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करें। श्वास लेते समय पेट फूलता है, उसका अनुभव करें और श्वास छोड़ते समय पेट सिकुड़ता है, उसका अनुभव करें। श्वास लें और पेट न फूले, श्वास छोड़ें और पेट न सिकुड़े, भीतर न जाए वह मिथ्या श्वास है, गलत श्वास है, सम्यक् श्वास नहीं है। जो दीर्घ और मन्द होता है, वहीं सम्यक् श्वास होता है। जो श्वास छोटा आता है, वह मिथ्या श्वास होता है। श्वास के ये सारे प्रयोग इसलिए हैं कि ध्यान का अवतरण हो। इन प्रयोगों के द्वारा हम केवल ध्यान का वातावरण बना रहे हैं, ऐसी पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं जिससे कि ध्यान का जन्म हो जाए।

पदार्थ को नहीं, स्थिति को बदलें

बहुत लोगों की शिकायत रहती है–माला जपते हैं, ध्यान भी करते हैं, पर मन की चंचलता कम नहीं होती? चंचलता कम कैसे होगी? जितनी आसक्ति उतनी चंचलता। आसक्ति को एक इंच भी कम करना नहीं चाहते और मन की चंचलता को मिटाना चाहते हैं, यह कैसे संभव है? व्यक्ति माला फेरने बैठा। माला फेरने से पहले किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा हो गया, बोल-चाल हो गई। माला फेरते समय दिमाग में तो वही बात घूम रही है कि उसने मुझे ऐसा कह दिया। बहू सोचती है–सास ने मुझे ऐसा कह दिया और सास सोचती है–बहू ने मुझे ऐसा कह दिया। उसने मुझे ऐसा क्यों कहा? आप सोच रहे हैं और चाह रहे हैं कि ध्यान हो जाए, कैसे संभव होगा? बाहर में परिग्रह आपके लिए जरूरी हो सकता है। जीवन को चलाना है। परिग्रह के बिना जीवन चलता नहीं है। बाहर में परिग्रह रहे पर भीतर में परिग्रह न रहे, इस स्थिति का निर्माण हो तो ध्यान का जन्म हो सकता है। पदार्थ को नहीं, स्थिति को बदलना है। स्थिति को नहीं बदला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है तो फिर बाधाएं ही बाधाएं प्रस्तुत हो जाएंगी।

कुत्ता दौड़ता हुआ जा रहा था। एक समझदार व्यक्ति ने पूछा–'कहां जा रहा है?'

'मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं।'

'कब तक पहुंच जाएगा?'

'अब तक तो पहुंच जाता।'

'फिर क्यों विलम्ब हो रहा है?'

'विलम्ब मेरे ही साथी कर रहे हैं। मैं जहां भी जाता हूं, जिस गांव में भी जाता हूं, मेरी बिरादरी के लोग ही मुझे आगे नहीं जाने देते।'

एक कुत्ता जब कहीं दूसरी जगह जाता है, तब उस स्थान के कुत्ते उसके पीछे पड़ जाते हैं।

कुत्ते ने ठीक कहा–'मैं आज तक पहुंच जाता पर मेरे जो भाई-बंधु हैं, वे मुझे आगे नहीं बढ़ने देते।'

जब तक कषाय है, परिग्रह और आसक्ति प्रबल है तब तक ये मन की एकाग्रता को कैसे बढ़ने देंगे? वहीं रोक लेंगे। हम स्थिति का परिवर्तन करें, केवल पदार्थ का नहीं। उवपास किया, खाना छोड़ दिया, यह पदार्थ का संयम है। प्रश्न है खाने की भावना छूटी या नहीं? उपवास किया। रात का समय है, नींद नहीं आ रही है। मस्तिष्क में चिंतन चल रहा है–आज पारणे में दूध पीऊंगा, मूंग खाऊंगा, यह खाऊंगा, वह खाऊंगा। यह पदार्थ का परिवर्तन है, स्थिति का नहीं। पदार्थ के प्रति आसक्ति तो वैसी ही बनी हुई है। केवल पदार्थ का परिवर्तन करने मात्र से ध्यान का अवतरण नहीं होता। ध्यान का अवतरण तब होगा जब स्थिति का परिवर्तन हो जाए। पदार्थ भी छूटे, साथ-साथ पदार्थ को पकड़कर रखने वाली हमारी चेतना भी बदल जाए, वह भी छूट जाए। मन की चंचलता जब तक होती है तब तक ऐसा संभव नहीं होता।

परिणाम मन की चंचलता का

हमें सबसे पहले जिस बिन्दु को पकड़ना है, वह है मन की चंचलता। चंचलता की अवस्था में आसक्ति कम नहीं होती, कषाय कम नहीं होता। जब मन चंचल होता है, दो स्थितियां बनती हैं प्रयोजनशून्यता और क्रमबद्धता का अभाव।

मन बहुत चंचल है इसलिए आदमी बिना प्रयोजन के कार्य करता है। काम करना, श्रम करना जीवन के लिए वरदान है, किन्तु प्रयोजन-शून्य कार्य करना जीवन के लिए अभिशाप है। आज अनावश्यक प्रवृत्तियां कितनी बढ़ती जा रही हैं। आज के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैज्ञानिक जगत का हम विश्लेषण करें तो पता चलेगा, जैसे पदार्थ का विस्तार हुआ है वैसे ही मानसिक चंचलता बढ़ी है और मानसिक चंचलता बढ़ी है इसीलिए ही पदार्थ का इतना विस्तार हुआ है, अन्यथा नहीं होता। आज अनावश्यक हिंसा हो रही है। कोई जमाना था आदमी अनावश्यक हिंसा करता था। जीवन चलाने के लिए हिंसा करनी पड़ती, अपनी सुरक्षा के लिए हिंसा करनी पड़ती। यह आवश्यक हिंसा महावीर की भाषा में अर्थदंड है। आज का युग हो गया अनर्थदंड का। अनावश्यक हिंसा बढ़ गई है। कोई प्रयोजन नहीं, बिना मतलब बम विस्फोट कर दिया, किसी को चलते हुए मार दिया। यह अनावश्यक हिंसा क्यों हो रही है? जितनी चंचलता बढ़ेगी, उतनी प्रयोजन-शून्यता बढ़ेगी। एक विद्यार्थी विश्वविद्यालय की छत पर चढ़ा और उसने दस-बीस लोगों को पिस्तोल की गोली से मार दिया। पूछा गया—क्यों मारा? तुम्हारा प्रयोजन क्या था? उसने कहा—प्रयोजन कुछ भी नहीं। मैंने फिल्म में ऐसा देखा था और वैसा कर दिया। प्रयोजन-शून्यता एक परिणाम है। जितनी मन की चंचलता होगी उतनी ही प्रयोजन-शून्य अनावश्यक प्रवृत्ति का विस्तार होता चला जाएगा। यह एक बहुत खतरनाक मोड़ है आज के युग का, जहां अनर्थदंड चल रहा है।

दूसरी बात है—क्रमबद्धता का अभाव। मन की एकाग्रता है तो व्यक्ति क्रमबद्ध कार्य करेगा। प्रातःकाल यह करना है, मध्याह्न में यह करना है, सायंकाल यह करना है। सारा कार्य क्रमबद्ध चलेगा। जब मन की चंचलता बहुत होती है, क्रमबद्धता समाप्त हो जाती है। एक व्यक्ति ने कहा—मेरी बड़ी समस्या है। मैंने पूछा—क्या समस्या है? बोला—समस्या यह है कि मैं एक काम शुरू करता हूं वह पूरा नहीं होता और बीच में ही दूसरा शुरू कर देता हूं। कार्य पूरा एक भी नहीं होता।

जहां मन की चंचलता अधिक होती है, वहां ये दोनों समस्याएं पैदा हो जाती हैं—प्रयोजन-शून्य अनावश्यक प्रवृत्तियों का विकास एवं क्रमबद्धता का अभाव।

इन्द्रिय-विजय

पांचवां तत्त्व है—इन्द्रिय-विजय। इन्द्रियों पर विजय नहीं है तो ध्यान का जन्म कहां होगा? एक व्यक्ति बहुत पेटु है। खाने में भी रस है। ठूंस-ठूंस कर खा लेता है और फिर सोचता है—ध्यान करूं। क्या ध्यान जन्म लेगा? उसने ध्यान के लिए तो स्थान ही नहीं छोड़ा। पेट इतना भर गया कि ध्यान आएगा तो बैठेगा कहां? उसके लिए अवकाश ही नहीं है। अस्वाद-व्रत का विकास किए बिना, अस्पर्श का विकास किए बिना, अशब्द का विकास किए बिना ध्यान कहां होगा?

मन में उत्सुकता है। कहीं थोड़ा-सा शब्द हुआ। तत्काल ध्यान चला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाएगा–किसका शब्द हुआ? यह उत्सुकता क्यों पैदा होती है? इसका कारण है इन्द्रियों का असंयम।

जिसे ध्यान का विकास करना है, उस व्यक्ति को इन पांच संकल्पों को स्वीकार करना होगा। इन्हें स्वीकार किए बिना ध्यान में बैठ जाने पर भी ध्यान नहीं सधेगा। कुछ लाभ मिल सकता है किन्तु जो परिणाम आना चाहिए, जो घटित होना चाहिए, वह घटित नहीं होता। जिस व्यक्ति के मन में यह अभिलाषा जागती है कि मुझे ध्यान का प्रयोग करना है, अपनी आत्मा का अनुभव करना है, भीतर की गहराइयों में उतरना है, वह व्यक्ति ध्यान में बैठने से पूर्व इन पांच संकल्पों पर ध्यान दे। अगर वह ऐसा करता है तो निश्चित ही उस व्यक्ति में ध्यान का अवतरण हो सकता है। अगर ऐसा नहीं करता है तो वास्तव में ध्यान अवतरित नहीं होता। इस सचाई को समझकर हम ऐसे वातावरण का निर्माण करें, जिससे हमारे जीवन में ध्यान का अवतरण हो सके, ध्यान का जन्म हो सके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

ध्यान का प्रारम्भ कहां से करें?

बच्चे का जन्म हो गया, वह चलना कब प्रारम्भ करता है? बोलना कब प्रारंभ करता है? प्रायः एक निश्चित अवस्था होती है। प्रत्येक प्रवृत्ति का एक प्रारम्भ बिन्दु है। प्रारम्भ बिन्दु की खोज सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। ध्यान का प्रारम्भ कब होता है? जब हमारा मन एक चिन्तन पर टिक जाए, पांच मिनट, दस मिनट, बीस मिनट एक बिन्दु पर टिक जाए, यह ध्यान के प्रारम्भ का पहला बिन्दु--पहला क्षण है। चिंतन और चिंतनान्तर, ज्ञान और ज्ञानांतर होता रहता है। एक वस्तु को जाना, इतने में दूसरी वस्तु को जानने की चिंता सामने आ जाती है। चिन्तन स्थाई नहीं रहता, चक्र घूमता रहता है। एक मिनट में दस चिन्तन आ जाते हैं। यह स्थिति निर्मित हो जाए—एक चिन्तन चले, उसमें दूसरा चिन्तन बाधा न डाले। यह ज्ञानान्तर से अपरामृष्ट चेतना की जो अवस्था है, वह ध्यान का प्रारम्भ क्षण है।

ध्यान की दो स्थितियां हैं। एक स्थिति है—एक चिन्तात्मकता तथा दूसरी स्थिति है—चिन्तन का अभाव।

अभावो वा निरोधः स्यात्, स च चिन्तान्तरव्ययः।
एकचिन्तात्मको यद् वा, स्वसंवित् चिन्तयोज्झिता।।

एक विचार, एक चिन्तन का आलम्बन लिया और उसी में व्यक्ति चलता रहा, दूसरा कोई चिन्तन नहीं, ज्ञान नहीं, इस स्थिति में ध्यान का प्रारम्भ हो गया। एक चिन्तन पर स्थित रहना बहुत कठिन है और इसलिए है कि हमारे भीतर बहुत कुछ चल रहा है किन्तु हमें उसका पता नहीं चलता। निरन्तर कर्म का विपाक हो रहा है। हमारी भावधारा बदलती चली जा रही है, चित्त में परिवर्तन होता चला जा रहा है। जैसे-जैसे कर्म का विपाक होता है, हमारे जैविक रसायन बदलने शुरू हो जाते हैं। ये रसायन हमारे चिन्तन को प्रभावित करते हैं, मन की गति बहुत चंचल हो जाती है। उस अवस्था में एक चिन्तन की बात सोची नहीं जा सकती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरूरी है आलम्बन

ध्यान का स्वरूप है–ज्ञानान्तर और चिन्तान्तर न हो। प्रश्न होता है कि इस स्थिति का निर्माण कैसे करें? उसका आलम्बन है–प्रेक्षा। शरीर प्रेक्षा एक आलम्बन है, श्वासप्रेक्षा एक आलम्बन है। यह ध्यान नहीं है। ध्यान है मन की एकाग्रता, मन का एक चिन्ता में रहना अथवा चिन्ता से मुक्त होकर स्व-संवेदन–अपना अनुभव करना। ये सब आलम्बन हैं। हम आलम्बनों का अभ्यास इसलिए कर रहे हैं कि हमारी ध्यान की स्थिति पुष्ट बन जाए। निरालम्ब आकाश में वायुयान के लिए चलना संभव है, एक पक्षी के लिए भी उड़ना संभव है। यदि आदमी उड़ान शुरू करे तो क्या होगा? वह छत पर जाकर हाथ फैला दे और निरालम्ब आकाश में छलांग लगा दे तो क्या होगा? वह आकाश में नहीं पहुंचेगा, धरती पर आ जाएगा।

निरालम्ब चलना हर किसी के लिए संभव नहीं है, निरालम्ब में रहना हर किसी के लिए संभव नहीं है। पृथ्वी निरालम्ब है पर गुरुत्वाकर्षण से बंधी हुई है। सौरमण्डल निरालम्ब है पर गुरुत्वाकर्षण से बंधा हुआ है। आदमी अपने पैरों से धरती पर चलता है, निरालम्ब नहीं चलता। निरालंब होना बहुत कठिन है, इसलिए हम आलम्बनों का प्रयोग करते हैं। प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण आलम्बनों का प्रशिक्षण है। श्वास को देखो, श्वास का आलंबन लो। शरीर को देखो, शरीर का आलम्बन लो। चैतन्य केन्द्रों को देखो, शरीर में होने वाले प्रकम्पनों का आलम्बन लो। लेश्याध्यान करो, रंगों का आलम्बन लो। ये सब आलम्बन हैं। आलम्बन का अभ्यास जैसे-जैसे पुष्ट होता चला जाएगा, निरालम्ब की स्थिति घटित होती चली जाएगी। उस स्थिति में केवल चेतना, शुद्ध चेतना और निश्चय नय का ध्यान होता है। केवल द्रव्यार्थिक का ध्यान होता है, पर्यायार्थिक समाप्त हो जाता है। ध्यान इतना शुद्ध चेतना पर टिक गया कि आलम्बन अवशेष नहीं रहा। यह निर्विकल्प, निर्विचार या निरालम्ब का ध्यान तब संभव बनता है जब आलम्बन पुष्ट होते चले जाएं, एकाग्रता सधती चली जाए।

एकाग्रता कैसे सधे?

प्रश्न है–एकाग्रता कैसे सधे? एकाग्रता की सिद्धि का उपाय क्या है? चंचलता कैसे कम हो सकती है? एक चिन्तन पर हम लम्बे समय तक कैसे टिक सकते हैं? इस प्रश्न को समाहित करते हुए कहा गया–

इष्टे ध्येये स्थिरा बुद्धिः, या स्यात् संतानवर्तिनी।
ज्ञानांतराऽपरामृष्टा, सा ध्याति ध्यानमीरिता।।

इष्ट ध्येय का चुनाव करो। ध्येय इष्ट है, वांछनीय है, प्रिय है तो मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिकेगा। प्रियता के बिना मन कहीं टिकता नहीं है। जहां प्रियता है, आदमी टिक पाएगा। अप्रियता में ऊब आ जाएगी, आदमी टिक नहीं पाएगा। बहुत सुन्दर कहा गया–ध्येय वह बनाओ, जो इष्ट हो। जो इष्ट नहीं है, उस ध्येय पर मन टिकेगा नहीं।

एक व्यक्ति जैन परिवार में जन्मा हुआ है, उसे कहा जाए–तुम पार्श्वनाथ का ध्यान करो, महावीर का ध्यान करो तो एकाग्रता जल्दी सध जाएगी। यदि उसे कहा जाए कि तुम विष्णु का ध्यान करो, शेषशायी मुद्रा में विष्णु का ध्यान करो तो एकाग्रता जल्दी नहीं सधेगी। एक वैष्णव व्यक्ति से कहा जाए–तुम महावीर और पार्श्वनाथ का ध्यान करो तो एकाग्रता जल्दी नहीं सधेगी। उस इष्ट का चुनाव करना होता है, जिस पर हमारी श्रद्धा जमी हुई है। महर्षि पतंजलि ने इस सचाई को प्रकट किया था। उन्होंने ध्यान के कई प्रकार बतलाए और अन्त में लिख दिया–**यथाभिमतस्य ध्यानाद् वा।**' जो अभिमत हो, जो अच्छा लगता हो, उसी को अपनाओ। यह आग्रह नहीं किया कि तुम यही करो।

एकांगी अभिमत

ध्यान की पद्धतियों में भी एकांगी आग्रह बहुत चलता है। कहा जाता है–ध्यान का शिविर है, स्वाध्याय मत करो, यह मत करो, वह मत करो, केवल ध्यान ही ध्यान करो। यह एकांगी अभिमत है। हम केवल एकांत का नहीं, अनेकांत का प्रयोग करें। केवल विचार ही न करें और केवल अविचार ही न रहें। केवल विचार से काम नहीं चलेगा और केवल अविचार तक शायद पहुंचा नहीं जा सकेगा। हो सकता है कोई पहुंच भी जाए किन्तु अविचार के साथ विचार का होना अत्यन्त अनिवार्य है। मनुष्य चिन्तन करता है और इसीलिए वह समनस्क है। वह अमनस्क नहीं है, एकेन्द्रिय नहीं है, जिसमें विचार न हो। जब तक केवलज्ञान की स्थिति न आ जाए तब तक विचार रुक नहीं सकता। जब केवली बन जाए तब विचार नहीं, साक्षात्कार होगा।

हमारी दो भूमिकाएं हैं–विचार की भूमिका और साक्षात्कार की भूमिका। जहां साक्षात्कार हो गया, विचार की आवश्यकता नहीं है। जब तक साक्षात्कार नहीं है, प्रत्यक्षीकरण नहीं है तब तक विचार का होना जरूरी है। विकास का बड़ा माध्यम है विचार। ध्यान का इतना ही प्रयोजन है कि अनावश्यक विचार न आए। जिस समय जो करना है, वह कर सकें, इस स्थिति का निर्माण हो जाए।

मालिक की मनोवृत्ति : कर्मचारी की मनोवृत्ति

दो प्रकार की मनोवृत्तियां होती हैं–मालिक की मनोवृत्ति और कर्मचारी की मनोवृत्ति।

अमेरिका के उद्योगपति फोर्ड ने अपने सेक्रेटरी से पूछा–'कल्पना करो–मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तुम दोनों एक साथ मरें। क्या अगले जन्म में तुम फोर्ड बनना चाहोगे?

सेक्रेटरी बोला–'बिल्कुल नहीं, मैं ऐसी मूर्खता करना नहीं चाहता।'

फोर्ड ने पूछा–'क्यों?'

'मैं क्यों चाहूं? आप अपने कार्यालय में नौ बजे आते हैं। आपका चपरासी नौ बजे आता है। आपका कर्मचारी ग्यारह बजे आता है। जैसे ही चार बजते हैं, काम से छुट्टी लेकर वे घर चले जाते हैं। आप रात्रि में नौ बजे तक काम करते हैं। जब रात्रि में घर जाते हैं तब फाइलों का गट्ठर साथ लेकर जाते हैं। फिर वहां जाकर काम करते हैं। आपके दिमाग से यह काम का बोझ चौबीस घण्टे उतरता नहीं है। आपके चपरासी और कर्मचारी के दिमाग में काम का कोई भार रहता ही नहीं। इसलिए ऐसी मूर्खता मैं क्यों करूंगा कि मैं फोर्ड बनूं।

ध्यान के मामले में हमें कर्मचारी की मनोवृत्ति को अपनाना है। ध्यान के क्षेत्र में यह मनोवृत्ति अच्छी नहीं है कि चौबीस घण्टा अनावश्यक भार लदा रहे। हम ऐसी वृत्ति का निर्माण करें, जब आवश्यक हो, विचार आए और जब आवश्यक न हो, विचार को विसर्जित कर दें। ध्यान का प्रयोजन न निर्विचार होना है और न काम के विचार का ठप्प हो जाना है। सारे लोग निर्विचार होकर बैठ जाएं, प्रार्थना में लग जाएं तो खाने को भी नहीं मिलेगा, पहनने को भी नहीं मिलेगा। हमारी जीवन की सारी यात्रा विचार-विकास के साथ जुड़ी हुई है। मनुष्य ने जो विचार किया है, विकास के लिए किया है। ध्यान का यह प्रयोजन नहीं है कि हम विकास की यात्रा को उलट दें। यदि हम ध्यान को व्यापक बनाना चाहते हैं तो अनेकांत का आलम्बन लेना होगा। यदि एकांतदृष्टि से कहा जाए–सब निर्विचार बन जाएं तो क्या होगा? पहले तो बनेंगे नहीं और बन जाएंगे तो संसार को खतरा पैदा हो जाएगा, संसार चलेगा भी नहीं।

विचार आवश्यक है, किन्तु वह सम्यक् होना चाहिए। अनावश्यक न हो, प्रयोजनहीन न हो, इस स्थिति का निर्माण अपेक्षित है। ध्यान का प्रयोजन व्यवहार के विपरीत नहीं है। उसका उद्देश्य व्यवहार को परिष्कृत करना है। यदि ध्यान की यात्रा जीवन यात्रा के बिल्कुल उल्टी हो तो ध्यान कभी सबके लिए ग्राह्य नहीं होगा। वह केवल उन लोगों के लिए ग्राह्य हो सकता है, जो हिमालय की गुफा में जाकर बैठ जाएं और अकेले बैठे-बैठे निर्विकल्प ध्यान करें। वह व्यापक बनेगा विचार परिष्कार या विचार संयम के साथ। यदि एक सूत्र पकड़ लें–विचार का संयम करना है तो ध्यान सध जाएगा।

ध्यान है श्रुतज्ञान

बहुत कठिन है विचार का संयम। आचार्य रामसेन के सामने प्रश्न आया–ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या है? उन्होंने बहुत सुन्दर समाधान दिया–'**श्रुतज्ञानमुदासीनं यथार्थमतिनिश्चलम् ।**' श्रुतज्ञान का नाम है ध्यान। ज्ञान और ध्यान में अन्तर क्या है? पानी और बर्फ में अन्तर क्या है? जब तक तरल है तब तक पानी है और जब जम गया तब बर्फ बन गया। जो तरल है, व्यग्र है, वह है ज्ञान और जो ज्ञान एकाग्र है, जमा हुआ है, वह ध्यान है। दूध है ज्ञान, दही जम गया, ध्यान हो गया। ज्ञान और ध्यान दो नहीं हैं। ध्यान ज्ञान से शून्य है तो मूर्खों के काम का हो जाएगा। ज्ञान से शून्य होना नहीं है। ज्ञान हमारी आत्मा का स्वभाव है। ज्ञान के विपरीत कोई आचरण क्यों होना चाहिए? वस्तुतः ज्ञान ही ध्यान है, यदि ज्ञान को जमा लें, उसकी तरलता को सघनता में बदल दें।

उदासीन ज्ञान

प्रश्न है–ज्ञान को ध्यान में बदलने का साधन क्या है? उसके तीन साधन हैं–१. ज्ञान उदासीन हो, २. ज्ञान यथार्थ हो, ३. ज्ञान अतिनिश्चल हो।

ज्ञान को उदासीन बनाएं। उदासीन बनाने का अर्थ है–राग-द्वेष से मुक्त बनाना। जो ज्ञान राग-द्वेष से मुक्त है, वह ज्ञान ध्यान है। व्यक्ति पद्मासन लगाकर ध्यान में नहीं बैठा है, उसने श्वास पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया है किन्तु यदि उसने उस क्षण में राग-द्वेष से मुक्त ज्ञान का अनुभव किया है तो वह ध्यान है। यह एक बहुत व्यापक परिभाषा है। कायोत्सर्ग की मुद्रा में ध्यान करें, यह तो प्रारम्भिक प्रयोग है, जिससे इस स्थिति का निर्माण हो जाए। निरन्तर अभ्यास से चलते-फिरते, जागते-सोते इस स्थिति का निर्माण हो जाता है। जिस क्षण राग-द्वेष मुक्त जीवन जीया, हमारा ध्यान सध गया।

यथार्थ ज्ञान

दूसरी बात है–ज्ञान यथार्थ हो, झूठी कल्पना न हो, असम्भव कल्पना न हो। जहां झूठी कल्पनाएं होती हैं वहां पूरा ज्ञान भी नहीं बनता, ध्यान कहां से बनेगा?

दो गप्पी मिल गए। एक ने कहा–जब मेरा दादा मरा था तब दस लाख रुपये छोड़कर मरा था। उसके पास में कोड़ी भी नहीं थी, किन्तु मरते समय दस लाख छोड़ गया। दूसरा गप्पी बोला–क्या विशेषता हांक रहे हो? मेरा दादा जब मरा था, तब वह सारी दुनिया को छोड़कर मरा था।

असंभव, झूठी और मिथ्या कल्पनाओं से कुछ भी नहीं बनता। ज्ञान यथार्थ होना चाहिए। यथार्थ ज्ञान का आविर्भाव हो जाए तो ध्यान सध जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिनिश्चल ज्ञान

तीसरी बात है–ज्ञान चंचलता से रहित हो। अतिनिश्चल ज्ञान है ध्यान। अचंचलता'–इस बिन्दु को पकड़ें। चंचलता ही राग-द्वेष को ला रही है, चंचलता ही अयथार्थ को यथार्थ बना रही है। शरीर, वाणी और मन की चंचलता का संयम हो जाए तो ध्यान सध जाए। महावीर का वचन है–तीन प्रकार का संवर होता है–मन का संवर, वाणी का संवर और काया का संवर। आसन की स्थिति, कायोत्सर्ग–यह काया का संवर है। अल्प भाषण अथवा मौन वाणी का संवर है। एकाग्रता मन का संवर है। बहुत लोग जिज्ञासा करते हैं–हम प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करते हैं। क्या उससे संवर और निर्जरा होती है? मैं कहता हूं–उससे और होता ही क्या है? जब आप प्रवृत्ति का संवर करते हैं, एकाग्रता करते हैं तब संवर और निर्जरा दोनों होते हैं। अगर संवर और निर्जरा न हो तो ध्यान हमारे लिए कोई काम का नहीं है। ध्यान का महत्त्व इसीलिए है कि उससे संवर और निर्जरा की उत्कृष्टता उपलब्ध होती है।

चंचलता को कम कैसे करें? यह बड़ा जटिल प्रश्न है। उसके लिए एक अभ्यास का क्रम है। पहले प्रारम्भ कहां से करें? हम श्रुत से करें यानि शब्द से ही प्रारम्भ करें। कोई शब्द या विचार लें। कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठ जाएं, आंखें बन्द रहे और उसी विचार को देखते रहें। कल्पना करें–किसी ने ॐ शब्द ले लिया, किसी ने 'अर्हम्' शब्द ले लिया। किसी ने यह संकल्प ले लिया–मैं अपना विकास करना चाहता हूं। इस मंत्र अथवा संकल्प को बंद आंखों से पढ़ें। उस शब्द पर, उस विचार पर आप टिकते चले जाएं। यदि यह अभ्यास आधा घण्टा तक हो जाए–केवल एक ही विचार को पढ़ें, बीच में कोई दूसरा विचार न आए, तो मानना चाहिए–आपका ध्यान परिपक्व हो गया। यदि दो-तीन मिनट टिके तो मानना चाहिए–ध्यान का प्रारम्भ हो गया।

ध्यान की मात्रा

जैन आगमों में पुद्गल के बारे में बहुत विवेचन है। एक परमाणु एक गुण वाला है और एक परमाणु अनन्त गुण वाला है। इसमें कितना अन्तर है। एक एक गुण वाला है और एक अनन्त गुण वाला–यह मात्रा का विभेद क्यों? यह शक्त्यांश का भेद है, शक्ति के अंशों का भेद है। एक परमाणु एक गुण वाला है। उसमें अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद मिलते हैं तो वह दो गुण वाला बन जाएगा। फिर अनन्त अविभागी का योग बनता है तो वह तीन गुण वाला बन जाएगा। ऐसा होते-होते अनन्त गुण तक पहुंच सकता है। ध्यान की मात्रा का यही संदर्भ है। एक गुण ध्यान की मात्रा, दो गुण ध्यान की मात्रा क्रमशः वृद्धि होती चली जाए तो अनन्त गुण ध्यान की मात्रा तक पहुंच सकते हैं। यदि प्रारम्भ हो जाए, विकास की यात्रा शुरू हो जाए तो विकास की दिशा लक्ष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ओर उन्मुख हो जाएगी। ध्यान में एक विचार का आलम्बन लिया और वह एक गुण तक टिक गया, बीच में कोई दूसरा विकल्प, विचार नहीं उभरा तो मान लें, पहली यात्रा सध गई। फिर दो मिनट, तीन मिनट........ इस प्रकार एक व्यवस्थित क्रम से आगे बढ़ा जा सकता है, अभ्यास को परिपक्व बनाया जा सकता है। यदि व्यवस्थित प्रक्रिया से न चलें तो विकास होना कठिन हो जाएगा, परिवर्तन भी कठिन बन जाएगा।

हमें बदलना है व्यवहार को। ध्यान में बैठ गए, शरीर को देखा, श्वास को देखा, इससे स्वभाव में इतना परिवर्तन नहीं होगा, जितना होना चाहिए। परिवर्तन तब संभव होगा जब विचार को बदलने का संकल्प करें, उस विचार को बंद आंखों के सामने रखें, उस पर एकाग्रता सधती चली जाए। निश्चित मानें—एकाग्रता की मात्रा जैसे-जैसे बढ़ेगी, आदत की मात्रा घटती चली जाएगी। इधर ध्यान का विकास और उधर आदत का परिवर्तन—दोनों साथ-साथ चलेंगे। आदत बदलने के लिए यह विचार-ध्यान, श्रुत-ध्यान बहुत उपयोगी है।

पंचतंत्र : निर्माण की कहानी

यह आग्रह नहीं होना चाहिए—हम स्वाध्याय न करें, पढ़ें नहीं। बहुत आवश्यक है पढ़ना और स्वाध्याय करना। उसके बिना आप कैसे विकास कर पाएंगे? कोई उपाय भी नहीं है। स्वाध्याय के प्रति आकर्षण पैदा हो जाए, इस पर ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। बच्चों को शिक्षा दी जाती है कहानियों के माध्यम से। संस्कृत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है पंचतंत्र। वह क्यों बना? राजा के पुत्र पढ़ने में रुचि नहीं लेते थे। कोई भी अध्यापक आता, उसे निकाल देते, उसका अनुशासन नहीं मानते। राजा बड़ा चिंतित हो गया। ऐसे लड़के जन्मे हैं, राज्य कैसे चलेगा? कौन चलाएगा? ये सब उत्तराधिकारी हैं। ऐसे मूर्ख बने रहेंगे तो राज्य का क्या होगा? उसने विद्वानों की खोज शुरू की। कोई ऐसा विद्वान आए, जो मेरे पुत्रों को पढ़ा दे। विद्वान राजा के पुत्रों को पढ़ाने को अपना सौभाग्य मानकर आते हैं किन्तु टिक नहीं पाते। राजा की चिंता और बढ़ गई। आखिर एक विद्वान आया विष्णुशर्मा। वह केवल विद्वान ही नहीं था, अनुभवी भी था। केवल पढ़ा-लिखा नही था, कोरा श्रुतज्ञान ही विकसित नहीं था, साथ में मतिज्ञान भी विकसित था। मतिज्ञान का विकास नहीं होता है तो श्रुतज्ञान भी भार बन जाता है। व्यक्ति ने बहुत शास्त्र पढ़ लिए किन्तु उसका मतिज्ञान जागृत नहीं है तो शास्त्र भी उसके लिए शस्त्र बन जाता है। विष्णुशर्मा अनुभवी था। उसने कहा—महाराज! मैं पढ़ाऊंगा। राजा ने पुत्रों को सौंप दिया। उसने अपनी योजना बना ली। उसने पहले दिन कोई पाठ नहीं पढ़ाया, कोई लम्बा-चौड़ा सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किया। एक कहानी कही। कहानी में राजपुत्रों का मन लग गया। राजकुमार बोले—गुरुजी! दूसरी कहानी और कहो। विष्णुशर्मा ने दूसरी कहानी कही, तीसरी कहानी कही। राजपुत्रों को कहानियों के माध्यम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कुछ देना था सारा दे दिया। राजनीति का पूरा ज्ञान राजपुत्रों को दे दिया। कहानी के माध्यम से ज्ञान भी मिल गया और काम भी बन गया। इन कहानियों का संग्रह है पंचतंत्र। यह है पंचतंत्र के निर्माण की कहानी।

हमें यह चुनाव करना होता है कि प्रिय क्या है? जैन साहित्य में चार अनुयोग हैं, उसमें एक अनुयोग है 'धर्मकथानुयोग'। धर्मकथा के माध्यम से जनता को जितना प्रेरित किया जा सकता है, सम्बोधित किया जा सकता है, उतना द्रव्यानुयोग से नहीं किया जा सकता। द्रव्यानुयोग को समझने वाले कितने लोग होते हैं। बहुत कम लोग होते हैं, जो द्रव्य की मीमांसा को समझ पाते हैं। कहानी ऐसा माध्यम है, जिसमें विद्वान और अनपढ़, बालक और प्रौढ़--सब रुचि लेते हैं। यह सबको प्रिय लगती है। धर्मकथानुयोग का यह प्रयोजन बहुत स्पष्ट है।

प्रारम्भिक चरण

ध्यान के मार्ग में भी इष्ट का चुनाव करना जरूरी है। ध्येय इष्ट होगा तो हमारी बुद्धि उसमें स्थिर बन जाएगी। ध्येय इष्ट नहीं है तो बुद्धि स्थिर नहीं बनेगी। हमें श्रुतज्ञान--विचार या आलम्बन का चुनाव करना है और श्रुतज्ञान में वह ज्ञान पहले लेना है, जो हमें इष्ट है, प्रिय है। इष्ट अपना-अपना अलग-अलग हो सकता है। सबको एक निर्देश नहीं दिया जा सकता। उसका स्वयं चुनाव करना होता है। केवल पद्धति को जान लें, आलम्बनों को जान लें, आलम्बनों का अभ्यास कर लें तो ध्यान का प्रारंभिक चरण उद्‌घाटित हो सकता है।

क्या ध्यान वैयक्तिक है?

ध्यान वैयक्तिक भी है और ध्यान सीखा भी जा सकता है। एक व्यक्ति ने पूछा--आप शिविरों का आयोजन क्यों करते हैं? क्या ध्यान कोई सिखाने की बात है? ध्यान तो व्यक्तिगत होता है। ध्यान करने वाले की चेतना होगी तो ध्यान होगा। सिखाने वाला कैसे कराएगा? ध्यान कोई रुपया नही है कि जेब से निकाला और दूसरे को दे दिया। ध्यान नितांत वैयक्तिक बात है।

मैंने कहा--एक पहलू से ही मत सोचो। दूसरा पहलू भी देखो। ध्यान नहीं सिखाया जा सकता, किंतु ध्यान का आलम्बन सिखाया जा सकता है, ध्यान की पद्धति सिखाई जा सकती है। ध्यान की जो प्रक्रिया है, वह सिखाई जा सकती है। ध्यान तो व्यक्तिगत ही होगा, जब व्यक्ति चाहेगा, तब ध्यान होगा। जैसे चाहेगा वैसे होगा, जितनी अर्हता है उतना होगा। सिखाया जा सकता है उसका मार्ग। सरकार सड़कों का निर्माण कर सकती है। क्या उन पर कार चलाना सरकार का काम है? कार तो ड्राईवर चलायेगा कार चलाने वाला और सड़क बनाने वाला एक नहीं होता। सड़क बनाने वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का काम है सड़क बना दे। कोई कार चलाये या न चलाये। तेज रफ्तार से चलाये या धीमी रफ्तार से चलाये। दूसरों को टक्कर मारता हुआ चलाये या ठीक से चलाये। यह ड्राइवर का नितांत वैयक्तिक काम है। ठीक यही बात ध्यान के संदर्भ में है कि आलम्बन को सिखाया जा सकता है। यह गुरु का काम हो सकता है किंतु ध्यान करना नितांत वैयक्तिक है।

एक दिशा-निर्देश दिया-ध्यान का प्रारम्भ श्रुतज्ञान के माध्यम से बहुत अच्छा होता है। हम किसी एक विचार, एक आलंबन पर टिक जाएं, एकाग्रता का अभ्यास करें, यह प्रयोगात्मक पद्धति है। प्रयोगात्मकता ही हमारी विकास की यात्रा में सहायक हो सकती है। ध्यान का प्रारम्भ कहां से होता है? ध्यान की मात्रा का विकास कैसे होता है? ध्यान को किस प्रकार विचार से निर्विचार की ओर ले जाया जा सकता है? एकाग्रता को कैसे पुष्ट किया जा सकता है? इन सारे प्रश्नों की अनेकांत दृष्टि से मीमांसा कर हम ध्यान की साधना करें तो हमारे लिए यह मार्ग कंटीला नहीं रहेगा, बहुत ही सरल और सरस मार्ग बन जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३

ध्यान किसका करें?

व्यक्ति कोई भी काम जागरूकता के साथ करता है तो अनुभव करता है कि यह काम ध्यानपूर्वक किया। अन्यमनस्क स्थिति में करता है तो अनुभव करता है कि काम किया पर उसमें ध्यान नहीं रहा। उससे पूछा गया—कोई आया? उत्तर मिला—आया तो था पर मुझे पता नहीं चला क्योंकि मैंने ध्यान नहीं दिया। यह ध्यान का पूर्व रूप प्रत्येक व्यक्ति में मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति ध्यान करता है। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो ध्यान न करे। हम जिस ध्यान की चर्चा कर रहे हैं, वह ध्यान का उच्चतम प्रयोग है। वह ऐसा ध्यान है, जहां हम किसी पवित्र आलंबन पर चेतना को स्थापित करें, मन को एकाग्र बनाएं।

ध्यान के दो प्रकार

प्रश्न है—ध्यान किसका करें? ध्यान कहां करें? ध्यान का आलंबन क्या होना चाहिए? आगम में दो प्रकार का ध्यान बतलाया गया है। अपने स्वरूप पर ध्यान टिकाना, यह है निश्चय नय का ध्यान। दूसरे का आलंबन लेकर ध्यान करना या किसी वस्तु पर ध्यान टिकाना, यह है व्यवहार नय का ध्यान—

निश्चयात् व्यवहाराच्च, ध्यानं द्विविधमागमे।
स्वरूपालंबनं पूर्वं, परालंबनमुत्तरम् ।।

हमारे सामने आत्मा स्पष्ट नहीं है। आत्मा को स्वीकार किया है, माना है, किन्तु उसका साक्षात्कार नहीं है। उसके स्वरूप का हमें बोध मिला है कि आत्मा शुद्ध है। उसमें अनंत ज्ञान है, अनंत दर्शन है, अनंत वीर्य है, अनंत आनंद है। यह हमने पढ़ा है किन्तु उसका साक्षात्कार नहीं हुआ है। पदार्थ हमारे सामने हैं। आकाश को हम जानते हैं, देखते हैं। वह ऊपर है किन्तु साक्षात् नहीं है।

सूरज, चांद, दीप, रत्न—ये हमारे सामने स्पष्ट हैं। बहुत सारे परालम्बन हमारे सामने प्रत्यक्ष हैं। स्वरूप का आलंबन परोक्ष है। हम अपने स्वरूप को साक्षात नहीं जानते। केवल आगम के आधार पर, श्रुतज्ञान के आधार पर जानते हैं कि आत्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा होता है। निश्चय नय परमार्थ को छूने वाला नय है। वास्तविक क्या है, वह इसे स्पष्ट करता है किन्तु उसका ध्यान करना सरल नहीं है। जो अस्पष्ट है, परोक्ष है, उस पर ध्यान टिकाना बहुत कठिन होता है। ओलंपिक खेलों में प्रशिक्षित धावक भाग लेते हैं। क्या दो वर्ष का बच्चा धावक बनेगा? उसने चलना तो पूरा सीखा ही नहीं है, धावक बनना कैसे सम्भव होगा? जब उसके पैरों में ताकत आ जाए, दौड़ने का अभ्यास करे और पूरा प्रशिक्षण ले तब वह धावक की प्रतियोगिता में भाग ले सकता है, किन्तु दो वर्ष का बच्चा धावक की प्रतियोगिता में हिस्सा नहीं ले सकता। ठीक यही बात ध्यान के संदर्भ में है। जो भिन्न का अभ्यास कर लेता है, पर-आलंबन का अभ्यास कर लेता है, वह अभिन्न का ध्यान की योग्यता पा सकता है–

अभिन्नमाद्यमन्यत्तु, भिन्नं तत्तावदुच्यते।
भिन्ने तु विहिताभ्यासोऽभिन्नं ध्यायत्यनाकुलः।।

अभिन्न है हमारी आत्मा। भिन्न है पदार्थ। भिन्न पर ध्यान का अभ्यास कर लिया तो धीरे-धीरे अभिन्न का ध्यान करने की क्षमता विकसित हो सकेगी, किन्तु भिन्न का ध्यान नहीं किया और हम सीधे अभिन्न पर जाएं तो यह संभव नहीं होगा। कोई व्यक्ति ऐसा हो सकता है, जो सीधा आत्मध्यान में चला जाए अथवा जिसके पूर्वजन्म का ऐसा संस्कार है, जो पहले ध्यान कर चुका है, वर्तमान में सीधा आत्मध्यान में चला जाए, किन्तु यह सामान्य आदमी के लिए संभव नहीं है।

निश्चय का ध्यान और व्यवहार का ध्यान, स्वरूपालंबी ध्यान और परालम्बी ध्यान–दोनों में अन्तर है। हम दोनों को एक तुला के पलड़े में नहीं रख सकते।

बच्चे ने मां से पूछा–मां! रेडियो और टेलीविजन में क्या अन्तर है? मां ने कहा–मैं और तुम्हारे पिता जब कमरे के भीतर लड़ते हैं तब रेडियो और जब लड़ते-लड़ते बाहर आ जाते हैं तब टी.वी. हो जाते हैं।

परालंबन के प्रयोग

स्वालंबन है भीतर रहना। परालंबन में हमारे सामने टी.वी. आ जाती है। हमने सूरज पर ध्यान टिकाया, चन्द्रमा पर ध्यान टिकाया, यह टी.वी. है। ध्यान का एक प्रयोग है सूर्य पर ध्यान करना। भगवान महावीर सूर्याभिमुख ध्यान करते थे। उस समय के अनेक साधक सूर्य के सामने खड़े हो जाते, हाथों को ऊपर कर लेते और सूर्य पर दृष्टि टिकाकर अनिमेष प्रेक्षा–त्राटक-ध्यान करते। बहुत कठिन है ध्यान का यह प्रयोग। सबसे पहले खतरा होता है आंख को। जो विधि को नहीं जानता, उसकी आंख के लिए कठिनाई होती है और जो विधि को जान लेता है, उसके लिए कोई समस्या नहीं है। यह प्रयोग प्रकाश के आवरण, ज्ञान के आवरण को क्षीण करने का और अतीन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतना के विकास का बड़ा महत्त्वपूर्ण योग है।

चन्द्रमा स्पष्ट आलंबन है। चन्द्रमा को देखते हैं, चन्द्रमा पर ध्यान टिका देते हैं, खुली आंख से उस पर ध्यान करते हैं। अनेक साधक दीप को सामने रखकर उसकी लौ पर ध्यान टिका लेते हैं। त्राटक का एक प्रकार है दिये की लौ पर खुली आंखों से ध्यान करना। रत्न-रश्मि पर भी ध्यान किया जाता है। समाचार पत्र में पढ़ा—एक अमेरिकन महिला रत्न-रश्मि पर ध्यान टिकाती और भविष्यवाणियां करती। सूर्य, चन्द्र, दीप, रत्न, रश्मि—इन सब पर ध्यान टिकाया जाता है और हमारा ध्यान सध जाता है। ये परालंबन हैं, पदार्थ—आलंबन हैं। इसी प्रकार अनेक वस्तुओं का आलंबन लिया जा सकता है। जो बहुत गहरे ज्ञानी ध्यानी हो जाते हैं, जिनका ध्यान बहुत विकसित है, वे परमाणु पर ध्यान टिका देते हैं।

ध्यान के महान साधक के लिए एक विशेषण आता है—**एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठी**—एक पुद्‌गल पर अपनी दृष्टि टिका देना। महावीर के लिए यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है। जब महावीर ध्यान की लम्बी-लम्बी प्रतिमाएं करते थे तब एक पुद्‌गल पर दृष्टि टिका देते थे। वे सोलह-सोलह दिन-रात तक अनवरत अनिमेष प्रेक्षा करते थे। यह परालंबी ध्यान है, पर-आलंबन पर होने वाला ध्यान है।

शरीरालंबन ध्यान

दूसरा है स्व-आलंबन ध्यान। इसके लिए काफी अभ्यास चाहिए। पहले भिन्न पर अभ्यास करें। जब हमारा अभ्यास इतना परिपक्व हो जाए, चेतना इतनी दक्ष बन जाए कि वह निरालंब पर टिक सके तब हम निरालंब पर ध्यान करें, अपनी आत्मा के स्वरूप पर ध्यान करें। ये दो बातें बतलाई गई, तीसरी बात हम और जोड़ दें। परालम्बन है पदार्थ का आलम्बन। उसके साथ एक विषय और जुड़ता है, जो न परालम्बन है और न स्वरूपालम्बन। वह है शरीरालम्बन, शरीर के अवयवों पर ध्यान टिकाना।

एक विषयवती प्रवृत्ति

महर्षि पतंजलि ने एक विषयवती प्रवृत्ति का उल्लेख किया है—एक **विषयवती प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी**—एक विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है तो मन को एकाग्र कर देती है। पांच इन्द्रियों के पांच विषय हैं। नासाग्र पर ध्यान करें। नासाग्र ध्यान का मुख्य केन्द्र रहा है। उस पर ध्यान करने से दिव्य गंध उत्पन्न हो जाती है। गंध हमारे सामने नहीं है पर गंध का अनुभव होने लग जाता है। बहुत सारे ध्यान करने वाले व्यक्ति कहते हैं, पता नहीं, क्या बात है, हमें चन्दन की सुगन्ध आने लग जाती है। हमारे आस-पास कुछ भी नहीं होता फिर भी चन्दन की सुगन्ध कहां से आती है? ऐसा क्यों होता है? एक व्यक्ति नासाग्र पर ध्यान करता है। जैसे-जैसे वह सधता है वैसे-वैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गन्धानुभूति होने लग जाती है। जब गन्धानुभूति होने लग जाती है तब उसका ध्यान में विश्वास तीव्र होने लग जाता है। व्यक्ति समझता है कि मैंने एक अनुभव पा लिया। जिसे थोड़ा भी अनुभव होता है, वह ध्यान के लिए समर्पित हो जाता है।

जिह्वा के अग्रभाग पर ध्यान करें। जैसे-जैसे ध्यान सधेगा, रस का संवेदन होने लग जाएगा। जीभ के मध्य भाग पर ध्यान करें। अभ्यास की सिद्धि के साथ-साथ स्पर्श का संवेदन होने लग जाएगा। जिह्वा-मूल पर ध्यान करें, शब्द का अनुभव होगा। जीभ को अधर में रखकर जीभ के अग्रभाग, जीभ के मध्यभाग और जीभ के मूलभाग पर ध्यान करना एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। जीभ को तीन भागों में बांट दें--अग्र, मध्य और मूल। जीभ के मूल पर ध्यान करने से स्वरयंत्र का सम्बन्ध जुड़ जाता है, शब्द का संवेदन होने लग जाता है। तालु पर ध्यान करें तो रूप का संवेदन होने लग जाता है। यह है एक विषयवती प्रवृत्ति।

नाक का अग्रभाग, तालु, जीभ का अग्रभाग, जीभ का मध्य भाग और जीभ का मूलभाग–शरीर के ये सारे अवयव हमारे आलंबन बन गए। एक विषयवती प्रवृत्ति होती है, मन एकाग्र हो जाता है। पूरे शरीर को देखना, शरीर प्रेक्षा करना, एक सामान्य प्रयोग है। उससे प्राण का संतुलन होता है किन्तु विशेष विकास करना चाहें तो शरीर के एक-एक अवयव पर विशेष ध्यान करना होगा। चैतन्य केन्द्रों का निर्धारण इसी आधार पर हुआ है। नासाग्र प्राण का केन्द्र है। जीभ भी चेतना का एक केन्द्र है। उसके तीन नहीं, अनेक विभाग किए जा सकते हैं। हम जीभ के दाएं हिस्से पर ध्यान कर सकते हैं, बाएं हिस्से पर भी ध्यान कर सकते हैं। इनके ध्यान से अलग स्थिति बन जाएगी। शरीर के कण-कण में आलम्बन हैं। यह शरीरालम्बन सबसे अच्छा आलंबन है। हम सूर्य का, चन्द्रमा का, दीप और रत्न का आलंबन लेते हैं। वह भी बड़ा उपयोगी है। किसी परमाणु या वस्तु का आलंबन भी उपयोगी है। किन्तु शरीर का आलंबन दो दृष्टियों से उपयोगी है। पहली बात यह है–एकाग्रता सधती है। दूसरी बात यह है–शरीर की उन इन्द्रियों का विकास भी साथ में हो जाता है।

भेरी चन्दन की बन गई

वासुदेव कृष्ण के राज्य में एक भेरी थी। वह भेरी छह मास से बजाई जाती। स्वयं वासुदेव कृष्ण आते और उस भेरी को बजाते। कहा जाता है–उसका परिणाम यह होता कि बारह योजन के क्षेत्र में जो भी बीमारियां होतीं, अशिव-उपद्रव होता, सारे शांत हो जाते। इतना था भेरी के शब्द का प्रभाव। शब्द के प्रभाव पर विचार पहले भी बहुत हुआ था और आज भी हो रहा है। बड़ी शक्ति होती है शब्द में, मंत्र में। बड़ी उपयोगी थी भेरी। द्वारिका का एक धनाढ्य बीमार हो गया। बहुत उपचार किया, स्वस्थ नहीं हुआ। उसने किसी से पूछा--'भाई! क्या करूं?' उसने उपाय सुझाया–'वासुदेव जो भेरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बजाते हैं, उसमें अभी समय है। अगर तुम भेरी का एक छोटा-सा टुकड़ा किसी भी प्रकार से प्राप्त कर लो तो समस्या का समाधान हो सकता है।' सेठ ने कहा–'यह कैसे संभव है?' उसने कहा–'जो रक्षक है, उसे रिश्वत दे दो।' रिश्वत आज से नहीं चली है, बहुत पुराने काल से चल रही है। यदि वह भेरी का टुकड़ा प्राप्त कर लो तो तुम्हारी बीमारी मिट जाएगी। सेठ ने रक्षक के सामने बात रखी। रक्षक बोला–'यह कैसे हो सकता है? भेरी का टुकड़ा तुम्हें कैसे मिल सकता है?' सेठ ने उसके हाथ में रुपयों की थैली रखी और भेरी का टुकड़ा मिल गया। बात की अपेक्षा थैली में ज्यादा ताकत है। सेठ ने उसको छुआ, बीमारी शांत हो गई।

गूढ़ रहस्य और गुप्त बात छह कानों में जाए तो कैसे टिकी रह सकती है? बात फैलती गई। धीरे-धीरे दूसरे बीमार के पास पहुंची। उसने सोचा–यह तो बहुत अच्छी बात है। जो धनपति होता है उसे कोई चिंता तो होती नहीं है। वह भी रक्षक के पास गया और उसका भी काम हो गया। रिश्वत दे और काम न हो, यह कैसे संभव है? स्थिति यह बनी–रक्षक ने भेरी का एक टुकड़ा काटा और उसके स्थान पर चन्दन का टुकड़ा जोड़ दिया। फिर दूसरा काटा और दूसरा चन्दन का टुकड़ा जोड़ दिया।

छह महिने की अवधि पूरी हुई। वासुदेव कृष्ण आए। भेरी को बजाने के लिए उसे हाथ में उठाया। अशिव का संहार करने वाली भेरी को बजाया। वे यह देखकर स्तब्ध रह गए–भेरी में कोई दम ही नहीं है। भेरी से कोई आवाज ही नहीं आ रही है। उन्होंने सोचा–दिव्य आवाज क्यों नहीं आ रही है? मेरी भेरी ऐसी कैसे है? इसमें ध्वनि का जो टंकार होना चाहिए, वह क्यों नहीं हो रहा है? क्या हो गया है इसे? उन्होंने ध्यान से देखा तो पता चल गया–भेरी तो केवल चन्दन की है, चन्दन ही चन्दन लगा है, मूल द्रव्य है ही नहीं।

मूल चला जाता है और चन्दन की भेरी बन जाती है। चन्दन की भेरी से वह कैसे हो सकता है, जो मूल दिव्य भेरी से हो सकता था? हमारे शरीर में जो हो सकता है, वह बाह्य आलंबन से कैसे हो सकता है? शरीर में चेतना है। हमने सूरज का आलंबन लिया, दिए की लौ का आलम्बन लिया किन्तु उनमें हमारी चेतना कहां है? शरीर के किसी भी केन्द्र का आलंबन लेते हैं तो केवल मन की एकाग्रता ही नहीं सधती, साथ-साथ वह भेरी का घोष भी निकलता है, चेतना भी सक्रिय बनती है, जागृत होती है।

अनिमेषप्रेक्षा

आलम्बन तीन भागों में बंट गए–एक है किसी बाहरी पदार्थ का आलम्बन दूसरा है अपने शरीर का आलम्बन और तीसरा है स्वरूपालंबन।

प्रेक्षाध्यान में अनिमेषप्रेक्षा का ध्यान कराया जाता है। किसी बिन्दु पर ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केन्द्रित करना, भींत पर ध्यान केन्द्रित करना अथवा नासाग्र पर ध्यान केन्द्रित करना, इन सबको अनिमेषदृष्टि से देखा जाता है। यह प्रयोग सबके लिए नहीं है, किन्तु उनके लिए करणीय है, जो अवस्था प्राप्त हैं, साधना का दीर्घकाल से अभ्यास कर रहे हैं। भगवान महावीर भींत पर ध्यान केन्द्रित किया करते थे। भींत पर घण्टों तक अनिमेष प्रेक्षा का प्रयोग। आप भींत को खुली आंख से देखना शुरू करें। यदि आधा घण्टा उस अवस्था में रह जाएं तो भींत आपके लिए विचित्र बन जाएगी। न जाने कितने रंग उभरेंगे। कैसा चित्र आएगा? आप उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। मैंने एक चित्र सामने लेकर अनिमेषप्रेक्षा का प्रयोग किया। वह चित्र बीस मिनट में ही विचित्र बन गया। उसी में से जितने रंग उभरे, जितने परिवर्तन आए, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। नए-नए रूप उसी में से निकलते ही चले गए। यह पदार्थ का आलम्बन महत्वपूर्ण है। उससे भी महत्वपर्ण है शरीर का आलम्बन, शरीर के केन्द्रों पर अधिक ध्यान टिकाना।

ध्यान का अगला चरण

ध्यान का अगला चरण है–स्वरूप का आलम्बन। पहले ही चरण में कोई स्वरूप के आलम्बन की बात करता है तो शायद उसने स्वरूप को ठीक से समझा ही नहीं अथवा वह स्वरूप के आधार पर कोई दूसरी कल्पना कर रहा है। अगर इस सचाई को ठीक से समझ लें तो परिवर्तन आ जाए। परिवर्तन होना बहुत जटिल काम है। जब परालम्बी ध्यान में अच्छी एकाग्रता सध जाए तब आत्मालम्बी ध्यान करें। आत्मा पर ध्यान टिक जाए तो सारी चेतना बदल जाए। जिसने आत्मा का थोड़ा-सा भी अनुभव किया है, उसके मूर्च्छा नहीं रहेगी, ममत्व घट जाएगा, वृत्तियां बदल जाएंगी, क्रोध नहीं होगा, अहंकार नहीं होगा, सारी स्थितियां बदल जाएंगी। आत्मा का साक्षात्कार हो जाए तो क्या बचेगा, बाहर का तो कुछ बचेगा ही नहीं। केवल शेष रहेगा स्वरूप का बोध।

प्रधानता किसे दें?

मनुष्यों को अनेक भागों में बांटा जा सकता है। एक व्यक्ति चंचल होता है। एक व्यक्ति अधिक चंचल होता है, एक व्यक्ति कम चंचल होता है। हम लेश्या की दृष्टि से विचार करें तो एक व्यक्ति कृष्ण लेश्या प्रधान होता है। एक व्यक्ति नील लेश्या प्रधान होता है, एक व्यक्ति कापातल लेश्या प्रधान होता है। वैसे सब लेश्याएं व्यक्ति में मिल सकती हैं पर प्रधानता किस लेश्या की है, यह बोध आवश्यक है। लेश्या के आधार पर वर्गीकरण करें तो कहा जा सकता है–जो कृष्ण और नील लेश्या वाला है, उसका सीधे ध्यान में जाना कठिन है। उसको सबसे पहले जप और आसन का प्रयोग कराना चाहिए। आसन का प्रयोग होगा, जप का प्रयोग होगा तो एक स्थिति का निर्माण होगा। वह ऐसा करते-करते कापोत-लेश्या या तेजो-लेश्या की स्थिति में आ जाए तो फिर ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयोग प्रारम्भ कराना चाहिए। इससे वह कुछ बनेगा अन्यथा यह शिकायत बनी रहेगी—इतने ध्यान-शिविर कर लिए पर मन की चंचलता में कोई फर्क नहीं पड़ा, विचार बहुत आते हैं। इसका अर्थ है—ध्यान का प्रयोग सिद्ध नहीं हुआ। इस स्थिति में सबसे पहले जप का प्रयोग करना चाहिए, अनुप्रेक्षा का प्रयोग करना चाहिए। अनुप्रेक्षा और जप—ये स्वाध्याय के प्रकार हैं, स्वाध्याय और ध्यान दोनों का संगम होना चाहिए। स्वाध्याय के बाद ध्यान और ध्यान के बाद स्वाध्याय—**'स्वाध्यायात् ध्यानमध्यास्तां, ध्यानात् स्वाध्यायमामनेत्।'**

यह एक बहुत वैज्ञानिक दृष्टिकोण है इसीलिए जैन आगमों में धर्मध्यान और शुक्लध्यान का प्रतिपादन किया तो उसके साथ चार-चार अनुप्रेक्षाओं का निर्देश भी दिया गया। अनुप्रेक्षा और प्रेक्षा—दोनों साथ-साथ चलते हैं। पहले प्रेक्षा करें, फिर अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षा के द्वारा मानसिक स्थिति का निर्माण होगा तो प्रेक्षा करने की गति बढ़ेगी।

परालंबन से स्वरूपालंबन की ओर

शब्द में बड़ी शक्ति है परिवर्तन की। आज का व्यक्ति इस तथ्य को जानता है—स्थूल ध्वनि नहीं, सूक्ष्म ध्वनि—पराध्वनि (अल्ट्रा साउण्ड) कितना काम करती है। मंत्र में भी हम सूक्ष्म ध्वनि का उत्पादन करते हैं। मंत्र का अर्थ यह नहीं है कि बोल-बोल कर ही जप करें। पहले उच्चारण के साथ, फिर मध्यम उच्चारण के साथ और अन्त में मानसिक जप करते हैं तब उसमें एक लयबद्धता आती है, मन थमने लग जाता है ध्वनि और मन सध जाते हैं। वह स्थिति एकाग्रता के लिए आधारभूत बन जाती है. पदार्थ और शरीर के आलंबन में व्यक्ति की एकाग्रता बढ़ जाती है, भिन्न का ध्यान परिपक्व हो जाता है और एक दिन वह अभिन्न का ध्यान शुरू करेगा तो आकुलता आ जाएगी। आकुलता से ध्यान में अवरोध आ जाएगा, आगे नहीं बढ़ा जा सकेगा। इसीलिए आवश्यक है मन आकुल-व्याकुल न हो, उसमें विक्षेप न हो। अनाकुल भाव से हम ध्यान की साधना करें, परालम्बन से स्वरूपालंबन की ओर बढ़ें, ध्यान जीवन के लिए महान उपयोगी तत्त्व सिद्ध होगा, उलझनों और समस्याओं के बीहड़ वन में राजपथ के रूप में वरदायी होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४

ध्यान का परिवार

व्यक्ति यात्रा पर जाता है। वह कहीं धर्मशाला में ठहरना चाहता है तो प्रबन्धक पहला प्रश्न पूछता है—आप अकेले हैं या परिवार के साथ आए हैं? अकेला है तो एक छोटा-सा कुटीर पर्याप्त है। परिवार के साथ है तो अधिक स्थान चाहिए। अकेला अकेला होता है। परिवार से परिवृत दूसरी श्रेणी में चला जाता है। ध्यान करने वाले को भी सोचना चाहिए—मैं केवल ध्यान कर रहा हूं या ध्यान के परिवार को साथ में निमंत्रित कर रहा हूं। परिवार के साथ ध्यान आएगा तो अधिक स्थान देना पड़ेगा, पूरे शरीर में उसकी तैयारी करनी पड़ेगी। यदि अकेला ध्यान है तो केवल मानसिक तैयारी करनी होगी और संभवतः वह भी सम्यक् प्रकार से नहीं हो सकेगी।

ध्यान का परिवार क्या है? आचार्य ने इस प्रश्न को समाहित करते हुए कहा—

ध्यानस्यैव तपोयोगाः शेषाः परिकराः मताः।
ध्यानयोगे ततो यत्नः शश्वत्कार्यो मुमुक्षुभिः॥

जितना तपोयोग है, वह ध्यान का परिवार है। आसन, कायक्लेश, प्रतिसंलीनता, इन्द्रिय विजय, आहार का संयम, स्वाध्याय, जप—ये सब ध्यान परिवार के सदस्य हैं। हम ध्यान के परिवार को छोड़कर अकेले ध्यान को बुलाएं तो वह आएगा नहीं और आएगा तो भी पूरा काम नहीं करेगा। परिवार के साथ ध्यान का जो प्रयोग होता है, वह पूरे जीवन को बदलने वाला होता है।

हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, वह द्वंद्वात्मक दुनिया है। चार द्वंद्व हमारे सामने स्पष्ट हैं—

१. शारीरिक द्वन्द्व—भूख और प्यास सताती है।
२. प्राकृतिक द्वन्द्व—सर्दी और गर्मी की समस्या है।
३. मानसिक द्वन्द्व—दो विरोधी इच्छाएं तनाव पैदा कर देती हैं।
४. भावात्मक द्वन्द्व—दो विरोधी भावनाओं का द्वन्द्व।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक व्यक्ति ने कहा–मैं बिल्कुल नैतिकता का जीवन जीना चाहता हूं किन्तु जब यह देखता हूं–अनैतिकता से जीने वाला व्यक्ति बड़ी-बड़ी कोठियां खरीद लेता है, अनेक कारें उसके घर के सामने खड़ी रहती हैं, सारी सुविधाएं जुटाने में वह समर्थ है, तब मन ललचा जाता है। मन में विकल्प उठता है–नैतिक होने में क्या पड़ा है? अनैतिकता से काम करूं तो मैं भी इतना बड़ा आदमी बन जाऊंगा। यदि मैं नैतिकता को पकड़कर बैठा तो बैठा ही रह जाऊंगा। कहां से आएगा इतना धन? यह दो विरोधी इच्छाओं का द्वन्द्व है। एक ओर इच्छा है–मैं नैतिक बनूं, दूसरी ओर इच्छा है–मैं धनवान बनूं, बड़े-बड़े मकानों का मालिक बनूं। यह मानसिक द्वन्द्व व्यक्ति को बहुत सताता है।

भावनात्मक द्वन्द्व भी अनेक उपस्थित होते हैं। एक व्यक्ति ने कहा–मैं बिल्कुल शांत रहना चाहता हूं, क्रोध करना बिल्कुल नहीं चाहता किन्तु जब बच्चा कहना नहीं मानता तब इच्छा होती है कि उसके दो-चार चांटे मार दूं। एक ओर शांति की चाह, दूसरी ओर चांटा मारने की इच्छा–यह विरोधी द्वन्द्व भावना के स्तर पर उभरता रहता है।

अद्वन्द्व कैसे बने

प्रश्न है–इन द्वन्द्वों में जीने वाला व्यक्ति कैसे निर्द्वन्द्व होता है? उसके लिए कोरा ध्यान करना पर्याप्त नहीं है। ध्यान का पूरा परिवार सहयोगी बनेगा तब इन सारे द्वन्द्वों पर हम विजय पा सकेंगे अन्यथा सम्भव नहीं है। प्राकृतिक द्वन्द्व–सर्दी और गर्मी बहुत है। उन्हें सहन करना मुश्किल है। ध्यान करने बैठेंगे तो ध्यान सर्दी और गर्मी पर जाएगा, ध्यान आत्मा पर नहीं जाएगा, इन्द्रिय-विजय और मानसिक विजय पर नहीं जाएगा। इस द्वन्द्व पर विजय नहीं है तो ध्यान कहां से होगा? महर्षि पतंजलि ने आसन का उपयोग बताया–**ततो द्वन्द्वानभिघातः**। आसन के द्वारा द्वन्द्व का अभिघात होता है, द्वन्द्व व्यक्ति को आक्रांत नहीं कर सकता। व्यक्ति पहली बार ध्यान करने बैठता है तो ध्यान कम होता है, पैरों में दर्द हो रहा है, पैर शून्य हो रहे हैं, इसका अनुभव अधिक होता है। पैर ध्यान को पकड़ लेते हैं। आसन-विजय के द्वारा बैठने की अर्हता प्राप्त हो जाती है। व्यक्ति एक आसन में एक घंटा भी बैठ सकता है, दो घंटा भी बैठ सकता है। बैठने की योग्यता आ जाती है तो द्वन्द्व की पीड़ा समाप्त हो जाती है। सीधा बैठना, बिल्कुल तनावमुक्त होकर बैठना और दर्द का अनुभव न होना–इस स्थिति का निर्माण आसन की सिद्धि से संभव है। आसन नहीं सधा, ध्यान में बैठ गए और पीड़ा का अनुभव होता रहे तो फिर ध्यान पीड़ा में जाएगा, अन्य किसी बात में ध्यान नहीं जा सकेगा।

द्वन्द्व के आघात को सहन कर लेना, द्वन्द्व पर विजय पा लेना बहुत अपेक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आसन के द्वारा भूख और प्यास पर भी विजय पाई जा सकती है। ऐसा नहीं है कि भूख नहीं लगेगी। किन्तु भूख लगी तो उसे सहन करने की शक्ति प्रकट हो जाएगी। प्यास लगी तो उसे सहन करने की शक्ति प्रकट हो जाएगी। बड़े-बड़े साधक लम्बे समय तक तपस्या करते थे। एक दिन के उपवास से लेकर छह-छह मास तक की तपस्या, बारह-बारह मास तक की तपस्या करते थे। बाहुबली ने बारह महीने तक तपोयोग की साधना की। महावीर ने छह महीने तक पानी भी नहीं लिया। यह कैसे संभव बना? भगवान महावीर आसनों का बहुत प्रयोग करते थे। आसनों के प्रयोग से शरीर को इतना साध लिया, कायसिद्धि इतनी हो गई कि भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करने की क्षमता भी उनमें प्रकट हो गई।

आसन के द्वारा मानसिक और भावात्मक द्वन्द्वों पर भी विजय पाई जा सकती है। एक आसन है शशांक आसन। जिसे बहुत गुस्सा आता है, उस व्यक्ति को शशांक आसन का प्रयोग कराया जाए तो उसका गुस्सा कम हो जाता है। वासना आदि अनेक वृत्तियां प्रकट होती हैं नाभि के पास। एड्रीनल ग्लैण्ड—वृक्कग्रंथि उसमें सहायक बनती है। उसके प्रभाव से वृत्तियां जागृत हो जाती हैं। यह वही ग्रन्थि है, जिसके लिए 'फाईट ऑर फ्लाईट' 'प्रहार करो या भागो' की बात कही जा सकती है। शशांक आसन और योगमुद्रा के द्वारा उस पर नियंत्रण किया जा सकता है। प्रेक्षाध्यान के साधक वंदना की मुद्रा में बैठकर 'वंदे सच्चं' का उच्चारण करते हुए नीचे झुकते हैं। इस आसन से एड्रीनल ग्लैण्ड पर कंट्रोल होता है, वृत्तियों पर नियंत्रण होता है।

आसन का प्रयोग केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए नहीं है। ध्यान के लिए भी बहुत आवश्यक है आसनों का प्रयोग। आसन न करें और केवल ध्यान करें तो ध्यान का पूरा परिवार नहीं बनेगा। हमने एक कमरा बनाकर खड़ा कर दिया, न छत है, न दरवाजा है तो मकान का पूरा उपयोग नहीं हो सकता। ध्यान के संदर्भ में भी यही बात है। उसके लिए आसन का प्रयोग भी जरूरी है। उससे द्वन्द्वों का शमन होता है, व्यक्ति में लचीलापन आता है और बालक की मनोवृत्ति का जन्म होता है।

दो प्रकार की मनोवृत्तियां

एक है बालक की मनोवृत्ति और दूसरी है प्रौढ़ की मनोवृत्ति। दो बच्चे लड़ पड़े। बच्चों ने एक दूसरे को पीटा। एक बच्चा मां-बाप के पास गया, बोला—उसने मुझे पीट दिया। दूसरे बच्चे ने भी अपने माता-पिता से वही शिकायत कर दी। मां-बाप भी गुस्से में आ गए। वे भी आपस में लड़ पड़े। बच्चों के आधार पर लड़ना मूर्खता ही है किन्तु आवेश में लोग यह मूर्खता भी करते हैं। दूसरा दिन हुआ। बच्चों की लड़ाई कितनी देर की होती है। बच्चे तत्काल भूल जाते हैं। बालक की मनोवृत्ति है भुला देना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक मिनट में बच्चा रोता है, दूसरी मिनट में बिल्कुल भूल जाता है। दूसरे दिन दोनों बच्चे फिर आए और आपस में खेलने लगे पर दोनों बच्चों के मां-बाप मिलने का नाम ही नहीं ले रहे थे। उनमें एक गांठ बन गई। उनका वह वैर-भाव वर्षों तक चलता रहा। बच्चों ने दूसरे दिन ही आपसे में बैर समाप्त कर दिया किन्तु उनके माता-पिता उसे नहीं भुला सके। एक बालक एक दिन ही नहीं, एक घण्टे बाद ही घटना को भुला देता है। यह है बालक की मनोवृत्ति। जब तक लचीलापन होता है तब तक बालक की मनोवृत्ति रहती है। जैसे-जैसे कड़ापन आ जाता है, वैसे-वैसे प्रौढ़ की मनोवृत्ति बनती चली जाती है।

आसन का उद्देश्य है–रीढ़ की हड्डी को लचीला बनाए रखना। सभी हड्डियां लचीली रहनी चाहिए पर मुख्यतः रीढ़ की हड्डी (स्पाइनल कॉड) पृष्ठरज्जु का भाग बिल्कुल लचीला रहे, यह अपेक्षित है। इसका लचीला होना शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी है, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य के लिए भी जरूरी है। लचीलापन बढ़े, कड़ापन न आए, यह आसन का एक बड़ा उपयोग है।

प्राणायाम

ध्यान के परिवार का एक सदस्य है–प्राणायाम। प्राणायाम का अर्थ है–श्वास का निरोध। श्वास लेना और छोड़ना स्वाभाविक क्रिया है। जो श्वास लेगा, वह उसे छोड़ेगा पर प्राणायाम का मूल अर्थ श्वास का विस्तार नहीं है। आयाम शब्द का एक अर्थ होता है–विस्तार। प्रस्तुत संदर्भ में आयाम शब्द का तात्पर्य है–श्वास पर नियंत्रण करना। श्वास का निरोध करना भी ध्यान के लिए बहुत जरूरी है। जिन व्यक्तियों में मन की चंचलता बहुत गहरी होती है, मन कहीं रुकता ही नहीं है, उनके लिए प्राणायाम का प्रयोग बहुत आवश्यक है। श्वास को रोकने की विधि का पूरा ज्ञान होना चाहिए। पूरी विधि को जाने बिना श्वास को रोकने से हानि भी बहुत होती है। यह विवेक होना चाहिए–एक साथ लंबा न रोकें, पांच सैकण्ड, दस सैकण्ड अथवा उतना रोकें जितना रोकने में कोई कठिनाई न हो। श्वास को जबरदस्ती नहीं रोकना चाहिए। श्वास रोकने वालों को पहले अपने शरीर का परीक्षण भी कर लेना चाहिए। जिनके हार्ट ट्रबल है, हाई ब्लड प्रेशर है, उन्हें श्वास को रोकना नहीं चाहिए। उच्च रक्तचाप, हृदय की वेदना–इन स्थितियों में श्वास को रोकना अच्छा नहीं है। सामान्य स्थिति हो तो थोड़े क्षणों के लिए, पांच सैकण्ड, दस सैकण्ड, बीस सैकण्ड तक रोकने का धीरे-धीरे अभ्यास करते चलें। इससे अपने आप ध्यान की योग्यता प्रकट हो जाती है, मन की चंचलता कम हो जाती है। जब-जब दीर्घ श्वास का प्रयोग किया जाता है, यह सुझाव दिया जाता है–श्वास का संयम करें, पांच-दस सैकण्ड के लिए श्वास को रोकें। अन्तर्यात्रा का प्रयोग करें। चेतना को पृष्ठरज्जु के ऊपर से नीचे तक ले जाएं तो बीच-बीच में श्वास को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोकते हुए चलें। श्वास का संयम करना ध्यान के लिए बहुत आवश्यक है किन्तु वह विवेक पूर्वक और सम्यक् जानकारी के बाद होना चाहिए।

प्राणायाम और ज्ञान

एक प्रश्न हो सकता है प्राणायाम का लाभ क्या है? कहा गया—ततः **क्षीयते प्रकाशावरणम्**—प्राणायाम से प्रकाश का आवरण क्षीण होता है। बड़ी अजीब बात है। एक ओर प्राणायाम करो, श्वास को रोको, दूसरी ओर उसका परिणाम यह है—प्रकाश का आवरण क्षीण होता है। इन दोनों में मेल कहां है? प्राणायाम का और ज्ञान का क्या संबंध है? वस्तुतः यह गहन विषय है। आचार्य ने गहरी बात कही है। भाष्यकारों ने भी शायद इसे पकड़ा नहीं। इसका अर्थ बड़ा जटिल बना दिया। इसका अर्थ आचारांग के संदर्भ में समझा जा सकता है। आचारांग सूत्र में भगवान महावीर ने कहा—'**आगयपण्णाणाणं ... पयणुए य मांससोणिए**' जो प्रज्ञावान होगा, उसका मांस-शोणित प्रतनु होगा। जिसकी मांस-चर्बी बढ़ी हुई है, लोही बहुत है, वह प्रज्ञावान नहीं बन पाएगा। प्रज्ञावान होने के लिए चर्बी का कम होना बहुत आवश्यक है। चर्बी हमारे ज्ञान पर आवरण डालती है। आदमी जितना ज्यादा मोटा होता है, बीमारियों के लिए उतनी ही सुविधा है। अधिक चर्बी, अधिक बीमारी—आधुनिक मेडिकल सांइस द्वारा यह तथ्य बहुत समर्थित है।

पूज्य गुरुदेव अहमदाबाद में विराज रहे थे। मैं प्राणायाम के कुछ प्रयोग कर रहा था। एक डॉक्टर दर्शन के लिए आया। संतों ने कहा—'लम्बाई की अपेक्षा महाप्रज्ञजी का वजन कम है।' डॉक्टर ने कहा—'बहुत अच्छा है। मेरा कहना मानें तो वजन मत बढ़ाइये।'

चर्बी आवरण बनती है, प्रकाश पर भी आवरण डालती है। इस रहस्य को समझना बहुत आवश्यक है। शरीर के भीतर आत्मा है। आत्मा का ज्ञान कहां से आ रहा है? भीतर से आ रहा है या बाहर से ? वह भीतर से ही तो आ रहा है। आंख एक द्वार बन गया। आंख में से छनकर ज्ञान की रश्मियां बाहर आ रही हैं। कान एक द्वार बन गया। कान से छनकर ज्ञान रश्मियां बाहर आ रही हैं और बाहर को पकड़ रही हैं। हमारे ज्ञान के पांच स्रोत, पांच दरवाजे बन गए, जो बाहर के विषयों को लेते हैं। ज्ञान की रश्मियां इन स्रोतों में से बाहर निकल रही हैं। आपने कोई दीया जलाया और दीये पर सघन ढक्कन रखा। दीये का प्रकाश भीतर सिमट जाएगा, बाहर कुछ भी नहीं आएगा। ऐसा ढक्कन रखा, जो जालीदार है तो स्रोतों में से छन-छन कर प्रकाश की रश्मियां बाहर निकल आएंगी।

हमारी आत्मा में ज्ञान भरा पड़ा है। वह ज्ञान बाहर निकलना भी चाहता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ ग्रहण करना भी चाहता है किन्तु चर्बी ने इतना आवरण डाल दिया है कि अब प्रकाश भी उसे छेदकर निकल नहीं पा रही है। आवरण इतना मोटा है कि छेद करना भी मुश्किल हो जाए। जितनी ज्यादा चर्बी होती है, प्रकाश का बाहर आना उतना ही मुश्किल हो जाता है। प्राणायाम करने वाले के चर्बी नहीं बढ़ सकती। चर्बी नहीं बढ़ी, इसका मतलब है–प्रकाश का आवरण क्षीण हो गया, शरीर में बाधा डालने वाले जो तत्व थे, वे क्षीण हो गए। हम अपने शरीर को ज्ञान की रश्मियों के निर्गमन का द्वार बना सकते हैं। हमारे जितने चैतन्यकेन्द्र हैं, वे सारे ज्ञान की रश्मियों के बाहर निकलने के स्रोत हैं। जिन चैतन्यकेन्द्रों का चुनाव किया है, वहां से ज्ञान की रश्मियां बाहर निकल सकती हैं। जहां विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (मेग्नो इलेक्ट्रोनिक फिल्ड) बना हुआ है वहां से वे रश्मियां बाहर निकल सकती हैं। जब उन पर बहुत परतें चढ़ जाएं तब वे बाहर कहां से आएंगी?

नया स्रोत

मनुष्य ने विकास किया, ज्ञान के पांच स्रोत बना लिए। छठा स्रोत बनाना बड़ा कठिन है। कुछ व्यक्तियों में यह सहज विकसित होता है पर सबमें सहज नहीं होता। प्राणायाम के द्वारा प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है, एक नया स्रोत विकसित हो सकता है। जिसका प्राणायाम सध गया, शरीर उसके योग्य बन गया तो फिर वह व्यक्ति अनेक स्रोतों का निर्माण कर सकता है। इन्ट्यूशन, प्रतिभा, प्रज्ञा–सबके लिए स्रोत का निर्माण कर सकता है। स्रोत को उद्घाटित करने के लिए प्राण का संयम बहुत जरूरी है। प्राण का संयम करने वाला व्यक्ति उस स्थिति का निर्माण कर सकता है, जिसकी सामान्य आदमी कल्पना भी नहीं कर सकता। भद्रबाहु स्वामी ने महाप्राण ध्यान की साधना की। बारह वर्ष का प्रयोग है महाप्राण ध्यान की साधना का। उसमें प्राण को इतना सूक्ष्म बना लिया जाता है कि पता ही नहीं चलता–श्वास आ रहा है या नहीं आ रहा है। जब उस स्थिति में चले जाते हैं, प्राण अवरुद्ध हो जाता है, विषमता समाप्त हो जाती है तब भीतर एक प्रस्फोट होता है और चेतना बाहर आती है। प्राणायाम का यह जो मूल्य है, उसका अंकन करना चाहिए। बहुत बार सचाई को पकड़ा नहीं जाता। जो व्यक्ति भीतर तक पहुंच जाता है, उसकी पकड़ एक प्रकार की होती है और जो बाहर ही बाहर रहता है, उसकी पकड़ दूसरे प्रकार की होती है।

अपनी अपनी दृष्टि

एक व्यक्ति जा रहा था। सामने दुकानदार बैठा था। दुकान में वह रुका थोड़ी देर बातचीत की और आगे बढ़ गया। दुकानदार क्रोधी था। वह क्रोध में आ गया

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

उसने कहा–मूर्ख! मेरा इतना समय बर्बाद किया और कुछ नहीं लिया। उसके पास में पंसेरी (पांच सेर) का बाट पड़ा था। उसने पंसेरी उठाई और आदमी पर फेंक दी। इतनी भारी पंसेरी उस आदमी तक पहुंच नहीं पाई। पंसेरी की आवाज सुन उसने पीछे देखा और हंसता हुआ आगे बढ़ गया। दूसरे आदमी ने कहा–कैसे आदमी हो? तुम्हारे पर पंसेरी फेंकी और तुम उस पर गुस्सा ही नहीं कर रहे हो? उसका प्रतिशोध नहीं ले रहे हो? तुम कैसे आदमी हो?'

वह हंसते हुए बोला–'भाई साहब! उसने क्या बुरा किया? बेचारे ने पंसेरी फेंकी है तो मुझे पारस समझकर फेंकी है। इसलिए कि वह पारस का स्पर्श पा सोना बन जाएगी। मैं उसका बदला लूं? कैसी मूर्खता की बात कर रहे हो?'

ध्यान से जुड़ी सचाइयां

अलग-अगल दृष्टियां हैं, अपनी-अपनी पकड़ है। एक ने पंसेरी का अर्थ दूसरा लिया और दूसरे ने दूसरा लिया। हम इस सचाई को पकड़ें, वास्तविकता को पकड़ें कि केवल ध्यान तक सीमित नहीं रहना है। ध्यान के साथ जितनी जुड़ी हुई सचाइयां हैं, उन सब सचाइयों पर केन्द्रित होना है। आसन, प्राणायाम, अनुप्रेक्षा–ये सब ध्यान से जुड़ी हुई सचाइयां हैं। तन्मयता के साथ अनुप्रेक्षा करना, अनुचिन्तन करना ध्यान का एक महत्त्वपूर्ण सहयोगी तत्त्व है। अनुप्रेक्षा के बिना हम ध्यान में बहुत ज्यादा सफल नहीं हो सकते। ध्यान के द्वारा सत्य को समझा जा सकता है, देखा जा सकता है किन्तु निर्जरा के लिए, व्यवहार और स्वभाव को बदलने के लिए अनुप्रेक्षा बहुत आवश्यक है, संकल्प का प्रयोग भी बहुत आवश्यक है। संकल्प का प्रयोग, संकल्प की पुनरावृत्ति और चिन्तन–ये सब अनुप्रेक्षा के साथ चलते हैं।

अशरण अनुप्रेक्षा

अनाथी बीमार हो गए। आंख की भयंकर बीमारी। बहुत उपचार किया। संपन्न परिवार, पैसे की कमी नहीं। दूर-दूर के प्राणाचार्यों को बुलाया। आंखें ठीक नहीं हुईं। माता-पिता, भाई-बहिनें–सब विलाप कर रहे हैं पर अनाथी ठीक नहीं हो रहे हैं। मन में एक परिवर्तन आया। अनाथी ने सोचा–मैं अनाथ बन गया, इतना उपचार किया पर कोई परिवर्तन नहीं है। पैसा, परिवार कोई रक्षा करने वाला नहीं है। उसने अपनी ओर झांका, मन में एक संकल्प फूटा–यदि मेरी आंख ठीक हो जाए तो मैं मुनि बन जाऊंगा। एक आश्चर्य घटित हुआ–रात को सोते-सोते संकल्प किया और सुबह आंख बिल्कुल स्वस्थ हो गई। जो आंख अनेक उपचारों के द्वारा स्वस्थ नहीं बनी वह एक संकल्प मात्र से स्वस्थ बन गई। अनाथी प्रव्रज्या ग्रहण कर मुनि बन गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यत्व अनुप्रेक्षा

संकल्प का प्रयोग, सुझाव, सजेशन, ऑटो सजेशन–ये सब अनुप्रेक्षा के अंग हैं। इन सबका प्रयोग करना ध्यान के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति अनुप्रेक्षा का प्रयोग नहीं करता, वह ध्यान में कैसे सफल हो सकता है? एक अनुप्रेक्षा है अन्यत्व अनुप्रेक्षा–पुद्गल और आत्मा की भिन्नता का अनुभव करना, जड़ और चेतन की भिन्नता का अनुभव करना। अन्यत्व का संस्कार जागृत होगा तो ध्यान में मन ज्यादा लगेगा, ध्यान की स्थिति का निर्माण होगा। अन्यत्व अनुप्रेक्षा नहीं है और ध्यान करने बैठेगा तो मन भटकता रहेगा।

प्राणायाम का एक लाभ बतलाया गया–'**धारणासु च योग्यता मनसः**'–मन की ऐसी स्थिति बनती है कि धारणा की योग्यता बन जाती है। शरीर के किसी भी हिस्से पर मन को टिकाना, तैजस केन्द्र, आनन्द केन्द्र–इन सब केन्द्रों पर मन को टिकाना, इसका नाम है–धारणा। दृष्टांत की भाषा है–जो बछड़ा आंगन में कूद-फांद कर रहा है, उसके गले में रस्सी डाली और खूंटे पर बांध दिया, इसका नाम है धारणा। सांख्य दर्शन में अन्यत्व अनुप्रेक्षा को कहा जाता है विवेकख्याति, प्रकृति और पुरुष को भिन्न समझ लेना। जैन दर्शन की भाषा है–पुद्गल और आत्मा को भिन्न समझ लेना। प्राणायाम से इस अन्यत्व बोध विवेकख्याति या भेदविज्ञान का विकास होता है।

एकत्व अनुप्रेक्षा

एक अनुप्रेक्षा है–एकत्व अनुप्रेक्षा। नमि राजा को एक प्रेरणा मिली, एकत्व की अनुप्रेक्षा सध गई। जब चूड़ियां बज रह थीं तो शब्द आ रहा था। चूड़ियां बजनी बन्द हो गईं तो शब्द बन्द हो गया। नमि ने सोचा–'**नमि एकाकी भलो दोय मिल्यां दुख होय।**' अकेला रहना अच्छा है। जहां दो मिलते हैं दुःख होता है। दुःख और है क्या? दो का मिलना ही दुःख है। दो का तात्पर्य है द्वंद्व और द्वंद्व का होना लड़ाई का होना है। अकेला किससे लड़ेगा? एक व्यक्ति हिमालय की गुफा में बैठा है। वह लड़ेगा तो किससे लड़ेगा? जहां दो होते हैं, लड़ाई शुरू हो जाती है। एकत्व, अनित्य–ये सारी अनुप्रेक्षाएं मन का परिष्कार करती हैं, भावना का परिष्कार करती हैं। इनका प्रगाढ़ अभ्यास किये बिना ध्यान की योग्यता ही नहीं आती। हम चाहें, ध्यान का उपचार कर लें, ध्यान के लिए बैठ जाएं, ध्यान का बाहरी वातावरण बना लें किन्तु जब तक ध्यान की आंतरिक योग्यता प्रकट नहीं होती तब तक अनुप्रेक्षाओं का अच्छा अभ्यास नहीं सधता।

तपस्या ध्यान के लिए

अनुप्रेक्षा, जप, स्वाध्याय, आसन, प्राणायाम, तपस्या–ये सब ध्यान परिवार के सदस्य हैं। एक भाई ने पूछा–मैं उपवास करना चाहता हूं। ध्यान शिविर में करूं या न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करूं। मैंने कहा–साधना काल में नहीं करोगे तो फिर कब करोगे? हम लोग यह जानते हैं महावीर ने इतनी बड़ी-बड़ी तपस्याएं कीं। दो दिन के उपवास से लेकर छह मास तक की तपस्या की। एक दिन का उपवास किया ही नहीं। उन्होंने कम से कम बेला–दो दिन का उपवास किया और अधिक से अधिक छह माह का उपवास किया। हमने इस तपस्या को पकड़ लिया किन्तु जिस ध्यान के लिए तपस्या की थी, उसको छोड़ दिया। तपस्या के लिए तपस्या नहीं थी, तपस्या ध्यान के लिए थी। अगर दस दिन ध्यान करना है तो दस दिन खाएगा कैसे? अपने आप तपस्या होगी। आज एकांगी पकड़ हो गई। ध्यान छूट गया, तपस्या मुख्य हो गई। आचार्य ने ठीक लिखा–**ध्यानस्येव तपोयोगाः, शेषाः परिकराः मताः**–जितना तपोयोग है, वह सारा ध्यान का परिवार है इसलिए ध्यानयोग सदा करना चाहिए, दूसरे अपने आप सधेंगे।

सर्वांगीण विकास हो

हम पूरी बात को पकड़ें। एक को लें, एक को छोड़ें, ऐसा न करें। प्रेक्षाध्यान में आसन और प्राणायाम का प्रयोग भी होता है, तपस्या और आहार का संयम भी होता है। स्वाध्याय भी एक सीमा तक चलता है। अनुप्रेक्षा और ध्यान का प्रयोग चलता है। कुल मिलाकर साधना का एक सर्वांगीण रूप चलता है। हमारी साधना सर्वांगीण हो, एकांगी न हो। ऐसा न हो कि एक हाथ दस हाथ जितना लम्बा हो जाए, दीवार को छू ले और दूसरा हाथ यहीं रह जाए। पैर तो इतने बढ़ जाएं कि पाताल को छुएं और ऊपर का हिस्सा इतना छोटा-सा रह जाए कि उपहास का पात्र बन जाए। ऐसा एकांगी विकास न हो, सर्वांगीण विकास हो, सब अवयव एक साथ बढ़ें। हम समग्र दृष्टि से विकास करें। समग्र विकास का अर्थ है–ध्यान को और उसके परिवार के सब सदस्यों को एक साथ आमंत्रित करें, सबका सर्वांगीण प्रयोग चले, जिससे द्वन्द्वों को सहन करने की शक्ति भी जागे, हम प्रकाश के आवरण को भी दूर कर सकें, जो मोह, ममता, माया का मैल जमा हुआ है, अनुप्रेक्षा के द्वारा उसका प्रक्षालन भी करें, ध्यान के द्वारा भीतर की सचाइयों को भी देख सकें। इस स्थिति के निर्माण के लिए आवश्यक है कि हमारा दृष्टिकोण व्यापक बने। जब तक मूल दृष्टि ठीक नहीं होती तब तक कुछ भी ठीक नहीं होता।

एक आदमी ने डॉक्टर से कहा–डॉक्टर साहब! आंख दिखानी है। डॉक्टर ने उसे कुर्सी पर बिठा दिया। सामने दीवार पर वस्त्र-पट पड़ा था। उस पट पर अंक लिखे हुए थे। डॉक्टर ने कहा–देखो, पट पर अक्षर देखो

'अक्षर कहां है?'

'उस पट पर।'

'पट कहां है?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'उस भींत पर है।

'भींत कहां है।'

डॉक्टर ने कहा—'चले जाओ, तुम्हारा कोई इलाज नहीं हो सकता।'

दृष्टि ही नहीं है तो बेचारा डॉक्टर क्या करेगा? अगर हमारा दृष्टिकोण ही समग्रता का नहीं बनता है तो प्रेक्षाध्यान का शिविर क्या करेगा? ध्यान कराने वाला भी क्या करेगा? हम दृष्टि-सम्पन्नता के साथ ध्यान का प्रयोग करें, ध्यान की उसके परिवार के साथ उपासना करें तो जीवन में सफल होने की निश्चित संभावना की जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्येय का चुनाव

एक बीमार व्यक्ति से पूछा जाए—तुम चिकित्सा करा रहे हो। चिकित्सा का ध्येय क्या है? उत्तर होगा—स्वास्थ्य-लाभ। स्वस्थ रहने के लिए चिकित्सा कराई जाती है और स्वस्थ बनाने के लिए डॉक्टर चिकित्सा करता है।

मनुष्य की चाह है स्वास्थ्य। किन्तु बीमारियां कितनी हैं? एक नहीं, अनेक हैं। चिकित्सा के प्रकार भी अनेक हैं। कोई भी चिकित्सा की ऐसी पद्धति नहीं है, जिससे सब रोगों की चिकित्सा एक समान विधि से की जा सके। अनेक रोग, अनेक चिकित्सा के विकल्प और अनेक औषधियां। ऐसी कोई एक औषधि नहीं है, जो सब रोगों के लिए काम की हो इसीलिए चिकित्सा की पद्धति अनेकात्मक है।

अनेकात्मक है ध्यान की पद्धति

ध्यान की पद्धति भी अनेकात्मक है। पूछा जाए—ध्यान का उद्देश्य क्या है? सीधा उत्तर होगा—आत्मा का स्वास्थ्य। एक है शरीर का स्वास्थ्य और दूसरा है आत्मा का स्वास्थ्य। हमारा ध्येय है आत्मा का स्वास्थ्य। आत्मा स्वस्थ रहे, नीरोग रहे, जो रोग हैं वे मिट जाएं। एक शब्द में यह उत्तर संभव है किन्तु हमें विभक्त करना होगा, एक शब्द से काम नहीं चलेगा। जितने रोग के प्रकार हैं, उतने ही प्रकार औषधि के होंगे। आसन का एक उपयोग है ध्यान में सहायता करना तो आसन का दूसरा उपयोग है शरीर को स्वस्थ बनाए रखना। आसन का एक पहलू है चिकित्सात्मक और दूसरा पहलू है ध्यानात्मक। जो लोग योगा के द्वारा, आसन के द्वारा चिकित्सा करते हैं, उन्होंने आसनों का अलग-अलग वर्गीकरण किया है। जिसे सुगर की बीमारी है, उसे इतने आसनों का कोर्स देना है। जिसे उच्च रक्तचाप की बीमारी है, उसे इतना कोर्स देना है। प्रत्येक बीमारी के लिए आसनों का अलग-अलग वर्गीकरण है। इसी प्रकार ध्यान में भी हमें वर्गीकरण करना होगा।

बाधक समस्याएं

शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक—ये समस्याएं आत्मा के स्वास्थ्य में बाधक हैं। शारीरिक समस्याएं आत्मा को भी अस्वस्थ बना देती हैं। एक व्यक्ति ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना चाहता है किन्तु शरीर से स्वस्थ नहीं है तो वह ध्यान नहीं कर पाएगा। जो व्यक्ति उच्च रक्तचाप से पीड़ित है, वह ध्यान कैसे करेगा? एक व्यक्ति हृदय रोग से पीड़ित है वह ध्यान की गहराई में कैसे जा सकेगा? शरीर की बहुत सारी बीमारियां ध्यान में बाधक बनती हैं। हमें अनेक साधनों का चुनाव करना होगा, एक प्रयोग से काम नहीं चलेगा। हम एक ही प्रकार का ध्यान—आत्मा का ध्यान करें तो सीधा पहुंच नहीं पाएंगे। पहले जितनी सारी बाधाएं हैं, उन बाधाओं को निरस्त करेंगे तो हम आत्मा की स्थिति तक पहुंच पाएंगे।

एक व्यक्ति ने अपने मित्र से कहा—'मैं ऐसी महिला से शादी करूंगा, जो मेरी तीन शर्तें पूरी करें।'

'क्या शर्तें हैं तुम्हारी?'

'बुद्धिमती होनी चाहिए, रूपवती होनी चाहिए और मितभाषिणी होनी चाहिए।'

मित्र बोला—'बड़े मूर्ख हो तुम ! इस महंगाई के जमाने में तीन पत्नियों का भार कैसे वहन करोगे? एक भी महिला तुम्हें ऐसी नहीं मिलेगी, जो बुद्धिमती भी हो, रूपवती भी हो और मितभाषिणी भी हो। इस स्थिति में तीन का खर्चा कैसे उठा पाओगे?'

एक से काम नहीं चलता, अलग-अलग प्रयोग करना होता है। एक ऐसा क्यों नहीं मिलता? इसकी हम मीमांसा करें। आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है कषाय। कषाय के दो रूप हैं—राग और द्वेष। राग ने ममकार और अहंकार का जाल बिछा रखा है। द्वेष ने शत्रुता, अप्रियता और घृणा का जाल बिछा रखा है। इन सब जालों को तोड़े बिना सीधा कोई राजधानी पर आक्रमण करेगा तो क्या वहां पहुंच पाएगा?

चाणक्य यात्रा करते-करते एक गांव में पहुंचा। एक बुढ़िया ढाबा चला रही थी। चाणक्य को भूख लगी। वह भोजन के लिए ढाबे पर आया। बुढ़िया ने खिचड़ी परोसी। चाणक्य ने खिचड़ी के बीच सीधा हाथ डाल दिया। हाथ जल गया। बुढ़िया बोली—'भाई ! तू चाणक्य जैसा मूर्ख लगता है।' चाणक्य आश्चर्यचकित हो गया। चाणक्य बोला—'मां ! चाणक्य मूर्ख कैसे है?'

बुढ़िया बोली—'मूर्ख तो है ही। सीधा राजधानी पर आक्रमण करता है पर आस-पास के जनपदों को जीतता नहीं है। राजधानी में अपार शक्ति और सेना है। वह उसको पछाड़ देती है। अगर वह समझदार होता तो पहले छोटे-छोटे जनपदों पर विजय पाता, फिर शक्ति बटोरकर राजधानी पर आक्रमण करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाणक्य ने दोनों कान पकड़ लिए। सोचा—बुढ़िया ने कितनी अच्छी बात बताई। कभी-कभी हम भी ऐसी ही भूल कर जाते हैं, सीधे आत्मा को पकड़ने की बात करते हैं। राजधानी पर विजय पा लेना बहुत अच्छी बात है, गलत नहीं है। हमारा ध्येय खराब नहीं है किन्तु जो कठिनाइयां हैं, उन पर हम विचार करें। राग और द्वेष की कठिनाइयां, अहंकार और ममकार की कठिनाइयां। जब तक इनका पार न पाएं तब तक सीधी आत्मा की बात कैसे करें। एक आध्यात्मिक व्यक्ति का ध्येय है आत्मा की उपलब्धि, आत्मा का स्वास्थ्य। जैसे चिकित्सा का ध्येय है स्वास्थ्य वैसे ध्याता का ध्येय होना चाहिए आत्मिक स्वास्थ्य, आत्मा की अनुभूति या आत्मा का साक्षात्कार।

ध्येयतम है आत्मा

आचार्य रामसेन ने लिखा—

सति हि ज्ञातरि ज्ञेयं, ध्येयतां प्रतिपद्यते।
ततो ज्ञानस्वरूपोऽयं, आत्मा ध्येयतमः स्मृतः।।

आत्मा हमारा सबसे बड़ा ध्येय है। प्रश्न होता है—वह ध्येयतम क्यों है? सारा विश्व और विश्व के सारे पदार्थ हमारे लिए ज्ञेय हैं। ज्ञान का विषय है ज्ञेय। चेतन और अचेतन--सब ज्ञेय हैं। वे ध्येय कब बनेंगे? कोई जानने वाला है तो कोई ज्ञेय बनता है। कोई ध्याता है तो कोई ध्येय बनता है। पदार्थ पदार्थ है। जीव का अपना अस्तित्व है, पदार्थ का अपना अस्तित्व है। पदार्थ स्वयं ज्ञेय नहीं बनता। कोई जानने वाला होता है, ज्ञाता होता है तो वह ज्ञेय बनता है। कोई पदार्थ पर ध्यान करने वाला होता है तो पदार्थ ध्येय बनता है। आत्मा के होने पर पदार्थ ज्ञेय है और आत्मा के होने पर पदार्थ ध्येय है। आत्मा नहीं है तो कोई पदार्थ न ज्ञेय बनता है, न ध्येय। ज्ञेय और ध्येय—दोनों आत्मा के साथ जुड़े हुए हैं। इसलिए जो ज्ञाता है, ज्ञान-स्वरूप है, वह हमारा ध्येय होगा। ध्येय का आदि-बिन्दु है आत्मा। किन्तु ध्येय तक पहुंचने के लिए ध्याता और ध्येय के बीच जो दूरी है, उसे पाटना होगा।

लम्बी है यात्रा

ध्यान करने वाला है ध्याता और आत्मा है ध्येय। इन दोनों के बीच में काफी फासला है, दूरी है। ध्येय तक पहुंचने के लिए, उस दूरी को पाटने के लिए हमें बहुत लम्बी यात्रा करनी पड़ेगी, अनेक साधनाओं में से गुजरना होगा। आजकल की चिकित्सा कितनी लम्बी हो गई है? बीमार हॉस्पीटल में जाता है। सबसे पहले कहा जाता है—डायनोमेस्टिक टेस्ट होना चाहिए। कम्पाउंडर नब्ज देखता है, ब्लड लेता है, उसकी जांच होती है। वह ई.सी.जी कराता है, ई.ई.जी कराता है। कितने यंत्रों से उसे गुजरना पड़ता है। एक आदमी पूरे टेस्ट कराता है तो इतना बड़ा बिल आ जाता है कि वह उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखकर ही घबरा जाता है। पूरी जांच की पद्धति से गुजरने के बाद डॉक्टर दवा देगा। दवा की तालिका भी इतनी बड़ी होती है कि सामान्य व्यक्ति के लिए उसका बिल चुकाना भी मुश्किल हो जाता है।

डॉक्टर ने रोगी से पूछा—'कहो, कैसे हो?'

'वैसे ही चल रहा है।'

'क्या दवा से ठीक नहीं हुए।'

'ठीक तो हो गया।'

'फिर क्या हुआ?'

'पहले तो मैं आपकी दवा से ठीक हुआ था किन्तु जब आपका और दवा का बिल देखा तब फिर वैसा का वैसा बीमार हो गया।'

चिकित्सा के लिए बहुत लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, बहुत सारी समस्याएं और बाधाएं होती हैं। ठीक यही स्थिति ध्याता की होती है। ध्यान करने वाला व्यक्ति आत्मा तक पहुंचना चाहता है पर यह संभव नहीं है कि वह सीधा पहुंच जाए। पहले काफी जांच करानी होती है। पूरे शरीर की जांच करानी होती है, मन और भावना की जांच करानी होती है। उसे कराने में काफी समस्याएं आती हैं।

वह ध्यान कैसे करेगा?

एक भाई ने अपनी समस्या रखी—मुझे निषेधात्मक विचार बहुत आते हैं। दिन भर बुरे विचार आते हैं। किसी को देखता हूं तो बुरा विचार आता है। किसी को कुछ देता हूं तो विचार आता है कि कहीं धोखा न हो जाए। रात-दिन नकारात्मक विचार (नेगेटिव एटीट्यूड) बना रहता है। इससे कैसे छुटकारा मिलता है? व्यक्ति सम्पन्न था, कोई कमी नहीं थी पर यह मानसिक समस्या उसके लिए बहुत बड़ी बन गई। मन की समस्या का सम्बन्ध सम्पन्नता और विपन्नता से नहीं है। एक विपन्न आदमी भी बहुत खुश रहता है। एक सम्पन्न आदमी भी गंभीर और उदासीन रहता है। जिसके सामने यह निषेधात्मक विचारों की समस्या है, वह ध्यान करके कैसे आत्मा तक पहुंचेगा? जो व्यक्ति डिप्रेशन—अवसाद की बीमारी से ग्रस्त है, वह आत्मा का ध्यान कैसे करेगा? मन की पचासों समस्याएं हैं। वह आत्मा का ध्यान कैसे करेगा?

मुख्य ध्येय : गौण ध्येय

आत्मा तक पहुंचने के लिए, ध्येय को पाने के लिए, शारीरिक समस्याओं पर विजय पाना भी जरूरी है, मानसिक समस्याओं से निपटना भी जरूरी है। जितनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्याएं हैं, उतने प्रयोग हैं। इस प्रकार ध्येय अनेक बन जाते हैं। एक है मुख्य ध्येय, दूसरे हैं प्रासंगिक और गौण ध्येय। मुख्य और गौण–दोनों के बिना कभी काम नहीं चलता। एक व्यक्ति ने बंबई से लाडनूं के लिए प्रस्थान किया। उसका मुख्य ध्येय है बंबई से लाडनूं पहुंचना किन्तु बीच में गौण ध्येय और भी हो सकते हैं। जयपुर में किसी मित्र से मुलाकात करना, वस्तुओं का क्रय करना–ये सारे गौण ध्येय हैं। ध्यान के संदर्भ में एक गौण ध्येय है शारीरिक स्वास्थ्य। ध्यान का एक पहलू है–चिकित्सात्मक। बहुत सारे लोग प्रेक्षाध्यान के शिविरों में केवल आध्यात्मिक या आत्मोपलब्धि की भावना से नहीं आते। इस भावना से भी आते हैं कि शरीर स्वस्थ बन जाए। इतना विवेक अवश्य जागना चाहिए–ध्यान आत्मशुद्धि अथवा आत्मा की उपलब्धि के लिए है। शारीरिक स्वास्थ्य उसका प्रासंगिक फल है। जो व्यक्ति ध्यान करेगा, उसके निर्जरा होगी और साथ-साथ शरीर भी स्वस्थ बनेगा, किन्तु शारीरिक स्वास्थ्य को मुख्य न बनाएं। मुख्य बनाएं निर्जरा को, संस्कार-शुद्धि को। इससे काम भी हो जाएगा और निर्मलता भी बढ़ेगी।

आचार्य भिक्षु ने कहा–व्यक्ति खेती करता है, बाजरी बोता है, गेहूं बोता है, चावल बोता है। वह खेती करता है अनाज के लिए, साथ में पलाल, तूड़ी और भूसा भी होता है। वह प्रासंगिक फल है। प्रासंगिक फल अपने आप मिलेगा। हम ध्येय बनाएं निर्जरा को। कल्पना करें--एक व्यक्ति के सूगर की बीमारी है। बीमार को आसन सिखाए जाते हैं। वह आसनों का प्रयोग करे किन्तु साथ में यह जोड़ दे–मैं आसन करूंगा निर्जरा के लिए। आसन निर्जरा का ही एक प्रकार है। वह निर्जरा के लिए आसन करेगा तो साथ-साथ शरीर भी स्वस्थ होगा और दृष्टिकोण उदात्त बन जाएगा। निर्जरा मुख्य है और शारीरिक स्वास्थ्य प्रासंगिक, किन्तु वह प्रासंगिक होते हुए भी उपेक्षणीय नहीं होता। उसकी उपेक्षा कर हम आत्मा तक पहुंचने का बात नहीं कर सकते। महावीर की भाषा में ध्यान का अधिकारी वह है, जो उत्तम संहनन अर्थात् शारीरिक संस्थान–वज्रऋषभनाराच संहनन वाला है। जो व्यक्ति इस संहनन से सम्पन्न है, वह शुक्लध्यान तक पहुंच सकता है। जो शुक्लध्यान तक नहीं पहुंचता, वह आत्मध्यान तक भी नहीं पहुंच सकता। आज तक जितने भी केवली हुए हैं, जिन्होंने आत्मा का साक्षात अनुभव किया है, जो घातिकर्म से मुक्त हुए हैं, वे ऐसे व्यक्ति ही हुए हैं, जिनके शरीर का संहनन वज्रऋषभनाराच था। उससे कमजोर संहनन वाला वहां जा ही नहीं सकता। एक व्यक्ति शुक्लध्यान करना चाहता है, आत्मा की गहराइयों में जाना चाहता है, विशिष्ट शक्तियों का अवतरण करना चाहता है और उसका शरीर उसको झेलने में सक्षम नहीं है तो क्या होगा? वह उन्हें सह नहीं पाएगा। ध्यान करने वाले अनेक बार कहते हैं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिर में दर्द है, ध्यान नहीं हो सकता। शरीर में पीड़ा है, ध्यान करना संभव नहीं है।

शारीरिक स्वास्थ्य ध्यान में सहायक बनता है, कारक बनता है। हम आसन, प्राणायाम करेंगे, शरीर की निर्मलता बढ़ेगी, शरीर की क्षमता बढ़ेगी, ऊष्मा-ऊर्जा को सहन करने की क्षमता बढ़ेगी। इन सबका विकास होगा तो ध्यान सधेगा अन्यथा ध्यान की सिद्धि संभव नहीं होगी। दूसरा ध्येय है–मानसिक स्वास्थ्य। अवसाद आदि की जो समस्याएं हैं, उनसे मुक्ति पाए बिना आत्मानुभूति की बात कहीं रह जाती है। हम लोग भावना में बह जाते हैं। यदि यथार्थ की भूमिका पर आएं तो हमें काफी गहराई में जाना होगा। आत्मानुभूति या आत्मा का ध्यान कब हो सकता है? आत्मानुभूति का अर्थ क्या है? राग-द्वेष मुक्त क्षण की उपलब्धि है आत्मानुभूति। वह ज्ञान आत्मा का साक्षात्कार बन जाता है, जिस ज्ञान के साथ न राग है और न द्वेष। यह सूत्र बहुत सीधा है। इसका अर्थ भी सीधा है किन्तु इसकी यात्रा बहुत लम्बी है। ऐसे क्षणों को जीना सामान्य बात नहीं है।

निर्भर है प्रयोग पर

हमारे आचार्यों ने आत्मा के स्वरूप का विशद वर्णन किया है। आत्मा शुद्ध होता है, शरीर मुक्त होता है उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द होते हैं, वह अमूर्त है, शरीर-प्रमाण है आदि-आदि। बहुत विस्तार के साथ आत्मा की चर्चा हुई है किन्तु उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होना उस चर्चा पर निर्भर नहीं है। वह प्रयोग पर निर्भर है। यदि प्रयोग के द्वारा हमारी ऐसी भूमिका बन जाए, जिसमें शरीर भी साथ दे, मन और भावना भी साथ दे, कोई बाधा न आए, उस स्थिति में हम ध्यान करने बैठें और एक दूसरी स्थिति में चले जाएं तो ध्येय का साक्षात्कार संभव बन सकता है। उस भूमिका में गए बिना ऐसा होना संभव नहीं है। शायद इसीलिए बहुत सारे लोग ध्यान का प्रयत्न नहीं करते। वे सोचते हैं–जटिल मार्ग है, वहां तक पहुंचना भी मुश्किल है, वे इस दिशा में प्रस्थान ही नहीं करते। इस चर्चा का उद्देश्य किसी को निराश करना नहीं है, श्रम विमुख करना भी नहीं है, किन्तु बीच में आने वाली बाधाओं को पार करने के लिए क्या-क्या करना है? किन-किन उपायों का आलम्बन लेना है? उस ओर ध्यान आकर्षित करना है। अगर उस ओर ध्यान नहीं देंगे और सीधी आत्मा की बात करेंगे तो सफलता नहीं मिलेगी। व्यक्ति यही सोचेगा कि ध्यान को छोड़ देना अच्छा है।

'एक विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो गया। पिता ने कहा–'मैं तो जानता ही था कि तुम श्रम नहीं करते हो, अनुत्तीर्ण हो जाओगे।'

'पिताजी ! बहुत अच्छा हुआ?'

'अरे! क्या अच्छा हुआ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मैंने मेहनत नहीं की और फेल हो गया। अगर मैं मेहनत करता और फेल हो जाता तो मेरी सारी मेहनत बेकार चली जाती।'

कितना अन्तर है चिन्तन का। शायद इस प्रकार की मनःस्थिति का निर्माण हो जाता है कि इतनी मेहनत की और कुछ नहीं मिला। निराश हो जाते हैं। ध्यान का प्रयास शुरू किया, दस दिन का अभ्यास किया और आत्मानुभूति नहीं हुई, श्रम व्यर्थ चला गया। यह चिन्तन का सम्यक् कोण नहीं है। बहुत सारे लोग आते हैं, कहते हैं–महाराज! दो वर्ष से ध्यान कर रहे हैं, चार वर्ष से ध्यान कर रहे हैं। हमें अभी तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ। उन्हें ऐसा लगता है कि चार वर्ष तो हमारे फालतू ही चले गए। ऐसा सोचने वाले मूल सचाई से हट जाते हैं। चार वर्ष नहीं, चार जन्म लग सकते हैं, उससे भी अधिक लग सकते हैं। लक्ष्य के बीच में आने वाली बाधाएं और विघ्न हैं, उनको जब तक आप निरस्त नहीं करेंगे तब तक ध्येय का दर्शन संभव नहीं होगा। उन बाधाओं को मिटाने में अनेक जन्म लग सकते हैं।

बाधाओं को पार करें

हमें ध्यान के प्रयोगों को भी बांट देना चाहिए। एक प्रयोग वह है, जो मुख्यतः शरीर के लिए किया जा रहा है। ध्यान करने वाले व्यक्ति को आसन करना चाहिए, प्राणायाम करना चाहिए और इसीलिए करना चाहिए कि शरीर ध्यान करने में साथ दे सके। ध्यान का एक स्वरूप होगा स्वास्थ्यात्मक–व्याधि प्रतिकारात्मक। ध्यान करने वाले व्यक्ति के लिए शारीरिक स्वास्थ्य बहुत जरूरी है। अन्यथा वह आगे बढ़ नहीं सकेगा। दूसरा पहलू है मानसिक चिकित्सात्मक। वह ध्यान भी अपेक्षित है, जो मन की चिकित्सा करने में सहायक बने। कायोत्सर्ग चिकित्सात्मक प्रणाली की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राचीनकाल में कायोत्सर्ग की जो पद्धति थी, वह दोष-विशुद्धि की पद्धति थी।

एक मुनि ने कोई कार्य किया, साथ में थोड़ा अतिक्रमण हो गया। वह गुरु के पास गया और बोला–भंते ! यह अतिक्रमण हुआ है। गुरु कहते–सत्ताइस श्वास का कायोत्सर्ग करो। एक मुनि कहता–स्वप्न आ गया। गुरु कहते–सौ श्वास का कायोत्सर्ग करो। आठ, सत्ताइस, सौ, पांच सौ, हजार श्वासोच्छ्वास का प्रयोग करो। इस प्रकार के प्रायश्चित्त का विधान चलता रहा है, क्योंकि यह मन की समस्या को सुलझाने वाला प्रयोग है। जिस व्यक्ति को मानसिक उलझनों को मिटाना है, उसके लिए श्वासोच्छ्वास के साथ कायोत्सर्ग का प्रयोग करना जरूरी है।

आसन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग, ध्यान–ये सारे प्रयोग बाधाओं को पार करने के लिए हैं। जैसे-जैसे बाधाएं दूर होंगी, मंजिल स्पष्ट दिखाई देने लग जाएगी। कार चलती है। गत्यवरोधक सामने आता है, गति मंद हो जाती है। रेल्वे का फाटक बंद हो तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसको रुकना पड़ेगा। जब फाटक खुलेगा तब कार आगे बढ़ पाएगी। जितने फाटक बंद हैं, जितने स्पीड-ब्रेकर लगे हुए हैं, उन सबको पार करने के बाद रास्ता साफ होगा और हम अपने लक्ष्य तक पहुंच पाएंगे। साधना के क्षेत्र में लक्ष्य है आत्म-साक्षात्कार। छोटे ध्येय अनेक हो सकते हैं किन्तु सबसे बड़ा ध्येय है आत्मा की अनुभूति करना। मार्ग में अनेक स्पीड-ब्रेकर आएंगे, कहीं-कहीं बंद दरवाजे भी मिलेंगे, उन सबको पार कर वहां तक पहुंचने के लिए हमें अनेक साधनों, आलंबनों और कारकों का उपयोग करना पड़ेगा, करना चाहिए। वैसा करके ही हम अपने गंतव्य तक, महान लक्ष्य तक पहुंच पाएंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्येय का साक्षात्कार

हमारा ज्ञान अनेक आकारों में बंटा हुआ है। ज्ञान का एक प्रकार है—स्मृतिज्ञान। एक व्यक्ति ने किसी वस्तु को देखा है, किसी नगर को देखा है, घर को देखा है और आज उन सबसे दूर चला गया है। वे वस्तुएं उसके सामने नहीं हैं। उसे उनकी स्मृति होती है। स्मृति में पूरा चित्र सामने आ जाता है। किसी आदमी को देखा, स्मृति होते ही पता चल जाएगा—रंग कैसा है? कितना लम्बा और कितना चौड़ा है? कैसे बोलता है? कैसे देखता है? उसके सामने न होने पर भी पूरा चित्र सामने आ जाता है। अमुक घर का दरवाजा कहां है, कहां प्रवेश-द्वार और निर्गमन-द्वार है? कहां भोजन का स्थान है? ये सब सामने आ जाते हैं। स्मृति-चित्र बिम्ब का प्रतिबिम्ब है। दूसरा ज्ञान है साक्षात्कार का ज्ञान। वह ज्ञान, जिसमें स्मृति नहीं है, साक्षात्कार है। स्मृति और चिंतन—ये दोनों उससे पीछे रह जाते हैं।

ध्यान शिशु है या युवा

ध्यान की परिपक्वता के लिए ध्येय का साक्षात्कार होना जरूरी है। एक कसौटी होनी चाहिए—ध्यान परिपक्व हो गया है या शिशु अवस्था में चल रहा है? युवा बन गया है या शिशु है? यदि ध्यान युवा बन गया तो उसका स्वरूप दूसरा बन जायेगा। यदि ध्यान शिशु अवस्था में है तो उसका स्वरूप दूसरे प्रकार का होगा। प्रत्येक कार्य में चंचलता, विघ्न, बाधाएं आती हैं। बच्चा छोटा होता है, उस अवस्था में छोटी-मोटी बीमारियां भयंकर रूप ले लेती हैं। वह बड़ा हो जाता है तो स्थिति बदल जाती है। यह चंचलता की स्थिति ध्यान के शिशु काल में रहती है। जहां ध्यान का काल युवा बन गया, परिपक्व बन गया, वहां समस्याएं समाप्त हो जाती हैं।

द्रव्य ध्येय : भाव ध्येय

ध्यान के दो प्रकार निरूपित हैं—द्रव्य ध्येय का ध्यान और भाव ध्येय का ध्यान।

द्रव्यध्येयं बहिर्वस्तु, चेतनाचेतनात्मकम्।
भावध्येयं पुनर्ध्येयसन्निभध्यानपर्ययः।।

हमारे सामने कोई वस्तु है, ध्यान करना चाहा और उसे ध्येय बना लिया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह द्रव्य ध्येय है। सामने रखी घड़ी पर ध्यान करना चाहा तो घड़ी ध्येय बन गई। किसी भी चेतन-अचेतन वस्तु को ध्येय बनाया जा सकता है। वस्तु को ध्येय बनाना द्रव्य ध्येय है।

भाव ध्येय का अर्थ है—ध्येय पर्याय के समान ध्यान का हो जाना, ध्यान का ध्येय के रूप में परिणमन हो जाना। जैसे-जैसे ध्यान परिपक्व बनेगा वैसे-वैसे ध्यान ध्येय के रूप में परिणत होता चला जाएगा।

कुछ लोग कहते हैं--मुझे कृष्ण का दर्शन हो गया। कुछ लोग कहते हैं—मुझे राम का दर्शन हो गया। कुछ लोग कहते हैं—मुझे भिक्षु का दर्शन हो गया। जो अपना इष्ट है, उसका उसे दर्शन हो जाता है, साक्षात्कार हो जाता है। यह क्या है? सच है या झूठ? झूठ इसलिए नहीं मान सकते कि उसे साक्षात हुआ है, उसने देखा है। सच इसलिए नहीं मानते कि राम, कृष्ण आदि-आदि जो इष्ट हैं, वे कहां से आएंगे? एक उलझन पैदा हो जाती है। इस उलझन का समाधान यह है—ध्येय आता नहीं है। किन्तु ध्येय के आकार में अपनी मानसिक परिणति बन जाती है, ध्यान स्वयं ध्येय का रूप ले लेता है। उस अवस्था में ध्यान का पर्याय ध्येय के समान बन जाता है। परमाणु विज्ञान में इसे 'मेंटल प्रोजेक्शन' कहा जाता है। केवल आकार ही दिखाई नहीं देता, केवल व्यक्ति आता ही नहीं है, बात भी करता है। अपना इष्ट आ जाए तो वह काम भी कर देगा, बात भी करेगा। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत रामनाथ आदि के साथ इस प्रकार की बहुत सारी घटनाएं जुड़ी हुई हैं। इष्ट आ गया और संत ने अपना काम करा लिया। एक साधक कहता है—मेरा परमात्मा गाय दुहने बैठ गया। उसने गाय दुह दी। कोई साधक कहता है—मेरा इष्ट लड्डू ले आया। इस प्रकार बहुत बातें की जाती हैं। यह सारा मेंटल प्रोजेक्शन—मानसिक प्रक्षेपण है, ध्यान का ध्येय के रूप में परिणत हो जाना है।

स्थिरता की स्थिति

प्रश्न है—यह अवस्था कब बनती है? जब ध्यान स्थिरता को प्राप्त होता है, बहुत स्थिर बन जाता है तब उस अवस्था में ध्येय का रूप सामने स्पष्ट हो जाता है। ध्येय की सन्निधि न होने पर भी ध्येय सामने आलेखित सा प्रतीत होता है

ध्याने हि बिभ्रति स्थैर्यं, ध्येयरूपं परिस्फुटम्।
आलेखितमिवाभाति, ध्येयस्यासन्निधावपि।।

ध्येय हमारे सामने नहीं है किन्तु ध्येय का रूप सामने आता है और सारी क्रियाएं होने लग जाती हैं। जब तक ध्यान की स्थिरता नहीं आती, चंचलता समाप्त नहीं होती तब तक यह स्थिति नहीं बनती। जैसे ही चंचलता समाप्त हुई, एकाग्रता गहरी हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई, ध्येय का रूप स्थिर हो जाएगा। ऐसा लगेगा–जैसे सामने ही कुछ आलेखित है, सामने ही कोई चित्र बना दिया है। ध्येय सामने नहीं है, दूर है किन्तु सामने उसका चित्र स्पष्ट हो जाता है। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है–लेश्याध्यान। कहा जाता है–ज्योतिकेन्द्र पर चन्द्रमा का ध्यान करें। दर्शनकेन्द्र पर बाल सूर्य का ध्यान करें। यह चंद्र और सूर्य हमारा ध्येय बन गया। सूर्य को देखना है दर्शनकेन्द्र पर और चंद्र को देखना है ज्योतिकेन्द्र पर। पहले एक कल्पना की, ध्येय बना लिया फिर उस कल्पना का विकास करें और चलते-चलते गहरी एकाग्रता प्राप्त कर लें तो ज्योतिकेन्द्र पर चंद्रमा का साक्षात्कार हो जाएगा, दर्शनकेन्द्र पर बाल सूर्य का साक्षात्कार हो जाएगा, आलेखित चित्र जैसा स्पष्ट दिखने लग जाएगा।

यह एक कसौटी है, जिसके आधार पर माना जा सकता है–ध्यान परिपक्व हुआ है, युवा बना है। जब तक ऐसा न हो तब तक मानना चाहिए–अभी ध्यान बचपन में ही चल रहा है । जब तक यह स्थिति नहीं आती तब तक भ्रांतियां बनी रहती हैं और जब इस स्थिति का अनुभव होता है, भ्रांतियां टूटने लग जाती हैं।

जनक का सपना

ब्रह्मविद्या के ज्ञाता महाराज जनक सो रहे थे। सोते-सोते नींद में सपना आया। जनक ने देखा–राज्य में विद्रोह हो गया है। राज्य दूसरों ने हथिया लिया है। जनक वहां से निकल पड़े। राज्य से बाहर चले गये। कुछ भी पास नहीं रहा, सब कुछ लुट गया, राज्य छूट गया, सम्पदा भी छूट गई। अकेले ही जंगल में भटक रहे हैं। भूख लग गई। खाने को पास में कुछ भी नहीं है। विचित्र अवस्था हो गई। कुछ आगे चले। एक गांव में पहुंचे। वहां भिक्षुओं को कुछ दिया जा रहा था। जनक भिक्षुओं की पंगत में बैठ गए। एक पत्तल में खिचड़ी उनके सामने रख दी गई। जैसे ही जनक खिचड़ी खाने की तैयारी करने लगे, दूसरी दिशा से लड़ती-लड़ती दो गायें आईं और पत्तल को नीचे गिरा दिया। खिचड़ी नीचे रेत में गिर गई। अब क्या करे? बड़ी चिन्ता हो गई। खिचड़ी मुश्किल से मिली और वह भी चली गई। जनक इस चिन्ता में उलझते चले गए। सपना चलता रहा।

प्रातःकाल का समय। मंगलपाठकों ने मंगल ध्वनि की। जनक की नींद खुल गई। सपना पूरा हो गया। राजाओं के लिए मंगलपाठक नियुक्त होते थे। वे राजा को जगाने के लिए मंगल ध्वनियां गाते थे। वे मंगलपाठक उस समय गा रहे थे–महाराज जनक की जय-जयकार होगी। जनक आंख मसलते हुए खड़े हो गए। राजा के मन मे प्रश्न उठा–वह सही था या यह सही है? सच कौनसा है? यह सच है या वह सच है? इस प्रश्न में उलझे राजा राजसभा में गए। अनेक विद्वान सभासदों से यह प्रश्न पूछा पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई समाधान नहीं मिला। आखिर अष्टावक्र के सामने जनक ने प्रश्न रखा–महाराज! बताइए, यह सच है या वह सच है? अष्टावक्र ने कहा–'राजन्! न यह सच है और न वह सच है। दोनों भ्रांतियां हैं। सपना भी एक भ्रांति है और ये जो पदार्थ हैं, राज्य है, यह भी एक भ्रांति है। तुम भ्रांति का जीवन जी रहे हो। जो सच है, वह इन दोनों से परे है।'

तीसरा सच

जब ध्यान परिपक्व होता है तब ये भ्रांतियां टूटती हैं, न यह सच रहता है, न वह सच रहता है। एक तीसरा सच सामने आता है, जो न पदार्थ का सच है और न स्वप्न का सच है। एक यथार्थ सामने आ जाता है–द्रव्य सत्य है और पर्याय अपनी कालावधि में सत्य है किन्तु वह बाद में असत्य बन जाता है। मनुष्य जीवन क्या है? मनुष्य एक पर्याय है। वह आज है किन्तु यह पता नहीं है कि सौ वर्ष के बाद मनुष्य कहां होगा? जितने पदार्थ हैं, सब पर्याय हैं। हम द्रव्य को नहीं देख पाते। हमारे शरीर के अन्दर शक्ति नहीं है जिससे हम द्रव्य को देख सकें। हम पर्यायों को देखते हैं और पर्यायों में भी स्थूल पर्यायों को देखते हैं। सूक्ष्म पर्याय, अर्थ पर्याय अथवा स्वभाव पर्याय को हम नहीं देख सकते। जैसे-जैसे हमारा ध्यान परिपक्व बनेगा वैसे-वैसे हम सूक्ष्म पर्यायों को जानना शुरू करेंगे।

अन्तर है विश्लेषण का

पतंजलि ने समाधि का एक प्रकार बतलाया है–विचारानुगत। जब विचारानुगत समाधि का अभ्यास होता है, हम सूक्ष्म पर्यायों को जानना शुरू कर देते हैं। जब सूक्ष्म पर्याय हमारे सामने आते हैं तब ऐसा लगता है–जो मान रखा था, वह सारा भ्रम था। एक सामान्य व्यक्ति एक मनुष्य को देखता है, वह इन स्थूल बातों को जान लेता है–चमड़ी है, मांस है, हड्डी है, लोही है। जब एक वैज्ञानिक शरीर का विश्लेषण करता है, उसके सामने न चमड़ी होती है, न मांस होता है। उसके सामने होगा रासायनिक विश्लेषण। फॉस्फोरस कितना है? धातुएं कितनी हैं? कितनी धातुओं से यह शरीर बना है? सारी स्थिति बदल जाएगी। एक वैज्ञानिक का पदार्थ विश्लेषण और दर्शन तथा एक सामान्य व्यक्ति का दर्शन–दोनों में बहुत अन्तर आ जाएगा।

वैज्ञानिक सूक्ष्म पर्यायों को जानने में समर्थ हो सकता है। उसके पास ऐसे यंत्र हैं, उपकरण हैं कि वह सूक्ष्म पर्यायों को जान सकता है। इन चर्म चक्षुओं से सूक्ष्म पर्यायों को नहीं जाना जा सकता। जब सूक्ष्म पर्यायों का दर्शन होता है, व्यक्तित्व का रूप एक प्रकार का बन जाता है और स्थूल पर्यायों का दर्शन होता है तब व्यक्तित्व का रूप दूसरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार का बन जाता है। एक आदमी के देखने की शक्ति कमजोर हो गई। वह दूर से भी नहीं देख सकता और निकट से भी नहीं देख सकता। सामने कोई आदमी आया। हो सकता है वह उसे भींत मान ले और भींत को आदमी मान ले। दृष्टि ठीक हो गई अथवा चश्मा लगा लिया। इस स्थिति में उसके लिए आदमी आदमी बन जाता है, भींत भींत बन जाती है। उसे सब कुछ साफ दिखने लग जाता है। यह हमारी बहुत स्थूल दृष्टि है। हम स्थूल दृष्टि, स्थूल चिन्तन और स्थूल विचारों के आधार पर निर्णय करें तो वह सही नहीं होगा। जब सूक्ष्म दृष्टि का विकास होता है, हमारे सारे निर्णय बदल जाते हैं, सारे अवरोध हट जाते हैं।

अपना अपना दृष्टिकोण

एक चोर भूल से एक आश्रम में चला गया। कुटिया में एक संन्यासी बैठा था। संन्यासी जाग रहा था। चोर ने सोचा—गलत स्थान पर आ गया, मैंने समझा था कुछ और, आ गया कहीं और। बहुत बार भ्रांति हो जाती है, समझता है—बड़े सेठ का घर है और निकल जाता है गरीब का घर। समझता है गरीब का घर और निकल जाता है सेठ का घर। ऐसी भ्रांतियां होती हैं। चोर ने संन्यासी को प्रणाम किया। संन्यासी ने पूछा—भाई ! तुम कौन हो? चोर ने सोचा—यहां क्यों झूठ बोलूं? उसने कहा—महाराज ! मैं चोर हूं, चोरी करने आया हूं। संन्यासी बोला—तुम गलत स्थान पर आ गए। यहां तुम्हें क्या मिलेगा? पर आ गए हो तो निराश नहीं लौटने दूंगा। संन्यासी खड़ा हुआ। उसने देखा—एक कंबल टंगा हुआ है। उसने कम्बल उतारा और कहा—ये ले जाओ, सर्दी का मौसम है। काफी दूर जाना है। ठिठुरते जाओगे। यह कंबल साथ में ले जाओ, तुम्हारे काम आयेगा। चोर कंबल लेकर चला गया। संयोग ऐसा मिला—पुलिस ने चोर को पकड़ लिया। चोरी का जितना सामान था, सब बरामद कर लिया। घोषणा हो गई जिसका सामान हों, वे आकर ले जाएं। संन्यासी को पता चला, संन्यासी भी गया। सबने अपना-अपना सामान ले लिया।

संन्यासी ने कहा—'यह कंबल मेरी है।'

'क्या आपकी है।'

'पहले थी पर अब मेरी नहीं है।'

'इस चोर ने चुरा ली?'

'यह चोर नहीं है। बड़ा भला आदमी है, नेक है। इसने चोरी नहीं की, यह कंबल मैंने दी है। यह आदमी मेरी कुटिया में आकर खाली जा रहा था। मैंने कहा—'भाई ! खाली क्यों जाते हो, कम से कम इतना तो ले जाओ, तुम्हारे काम आएगा। मैंने यह दान दिया है, इसने चोरी नहीं की है, इसलिए मैं वापिस ले नहीं सकता।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब आश्चर्य में डूब गए। चोर ने संन्यासी के पैर पकड़ लिए। उसने गद्गद् स्वर में कहा—'एक तुम ही हो, जो भला आदमी कहते हो, दूसरा कोई मुझे भला कहने वाला नहीं है।'

क्या चोर भला आदमी है? सबकी दृष्टि में बुरा और संन्यासी की दृष्टि में भला। अपना-अपना दृष्टिकोण है। कोई भी आदमी नितांत बुरा नहीं होता और कोई भी आदमी नितांत भला नहीं होता। जिसको हम भला मानते हैं, उसके मन में न जाने कितने चोर छिपे बैठे हैं और जिसको चोर मानते हैं, उसके मन में न जाने कितने साहूकार छिपे बैठे हैं। प्रश्न है—हमारी दृष्टि कहां तक पहुंचती है? अगर हमारी दृष्टि सूक्ष्म पर्याय तक पहुंचती है तो चोर भी हमारे सामने भला हो जाता है और दृष्टि केवल स्थूलस्पर्शी रहती है तो साहूकार भी चोर बन जाता है।

जरूरी है सूक्ष्म दृष्टि का विकास

सूक्ष्म पर्यायों को जानने के लिए सूक्ष्म दृष्टि का विकास जरूरी है और वह होता है विचारानुगत ध्यान या पर्याय ध्यान से। जब हम पर्याय का ध्यान करेंगे तब वह विकसित होगा। यदि व्यक्ति एक दिन के बच्चे से लेकर एक वर्ष का बच्चा हो जाए तब तक प्रतिदिन उसके पर्यायों का सूक्ष्मता से अध्ययन करे तो अच्छा ध्यानी बन जाए। उसे फिर प्रेक्षाध्यान के शिविर में भाग लेने की जरूरत नहीं है, पदार्थ का आलम्बन लेने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिदिन कैसा पर्याय बदल रहा है? प्रतिदिन नहीं, प्रति मिनट कैसा पर्याय बदल रहा है? अगर इतनी सूक्ष्म दृष्टि बन जाए, हम एक दिन के चौबीस घण्टों में होने वाले पर्यायों का अध्ययन कर सकें तो इतने महान ध्यानी हो जाएं कि ध्यान के लिए कहीं जाने की आवश्यकता ही नहीं रहे। पर्याय ध्यान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। लोग आनन्दकेन्द्र पर ध्यान करते हैं और कहते हैं—आज ध्यान में बड़ा आनन्द आया। एक ज्ञान को विकसित करने वाला ध्यान है, जिसके द्वारा सचाइयां प्रकट हो जाती हैं। एक वह ध्यान है, जो आनन्द को प्रकट करता है।

दिल्ली में प्रेक्षाध्यान का शिविर था। अनेक विदेशी लोग भाग ले रहे थे। उनमें एक थे हवाई युनिवर्सिटी के प्रोफेसर डॉ. ग्लेन. डी. पेज। वे पहले योद्धा थे, सेना में थे। उनको हिंसा से ग्लानि हो गई, अहिंसा में गहन आस्था हो गई। युनिवर्सिटी में प्रोफेसर बने। उनका विषय था पोलिटिकल साइंस का। उन्होंने उसके साथ अहिंसा को जोड़ दिया। रात्रि का समय। उन्हें सारे चैतन्य केन्द्रों का एक श्रृंखला में चक्रात्मक प्रयोग कराया गया। प्रयोग के बाद आए, बोले--'आज मुझे जिस आनन्द और जिस शान्ति का अनुभव हुआ है, हम अमेरिकन लोग सपने में भी नहीं सोच सकते कि अपने भीतर इतना आनन्द और इतनी शान्ति है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम कहते हैं–अनन्त आनन्द भीतर है। शास्त्रों में पढ़ा है कि अपने भीतर अनन्त आनन्द है। पढ़ा है इसलिए कह देते हैं। यह उधार का व्यापार है, इसमें अपनी पूंजी कुछ नहीं है। आपने कभी आनन्द का अनुभव किया? जब तक पर्याय में गहरे नहीं जाएंगे तब तक पता नहीं चलेगा कि अपने भीतर भी आनन्द है। हम कहते हैं, हमारे भीतर बहुत ज्ञान है। जब तक दर्शनकेन्द्र पर गहरा ध्यान नहीं करेंगे, अन्तर्दृष्टि का जागरण नहीं होगा तब तक हम सुनी-सुनाई, पढ़ी-पढ़ाई बात ही करेंगे। हमारे भीतर अनंत ज्ञान है। किन्तु जब उसका विकास होता है, सूक्ष्म पर्यायों को जानने की क्षमता जागती है तब यह साक्षात बोध होता है कि अपने भीतर कितना ज्ञान है। बिना पढ़े-लिखे ज्ञान का स्रोत फूट पड़ता है।

समय प्रौढ़ता का

ध्यान के लिए हमने एक आलम्बन लिया पर वह हमारे साथ ज्यादा रह नहीं पाएगा। उसके साथ दोस्ती नहीं होती। यदि दोस्ती होती तो लम्बे समय तक टिक जाता। वह आया और चला गया। चित्त की एक अवस्था है यातायात। ध्यान किया, एक मिनट या आधा मिनट ध्यान रुका और फिर चला गया। फिर आया, फिर चला गया। जब तक यह यातायात की स्थिति रहती है तब तक ध्यान का बचपन रहता है। वह यातायात की स्थिति न रहे, ध्यान स्थिर बन जाए, पांच मिनट तक कोई दूसरा विचार–विकल्प न आए, दस-बीस मिनट तक न आए, आधा घण्टा तक न आए तो समझना चाहिए कि अब ध्यान युवा बन रहा है। प्रौढ़ बनने में अभी देरी है। प्रौढ़ बनने का सामान्य समय माना जाता है–चार घड़ी तक एक आलम्बन पर टिकना। प्राचीन भाषा में कहें तो चौबीस मिनट की एक घड़ी होती है। चार घड़ी यानि डेढ़ घण्टा तक एक आलम्बन पर ध्यान टिक जाए तो मान लेना चाहिए कि ध्यान प्रौढ़ बन गया, अनुभव बहुत परिपक्व हो गया। वहां तक पहुंचना है किन्तु वहां तक वे ही पहुंच पाएंगे, जिनमें सत्य को जानने की रुचि पैदा हो गई है, जिज्ञासा जाग गई है। जिनके मात्र इतना प्रयोजन है कि बस थोड़ी शांति मिले, थोड़ा सा आनंद का अनुभव हो, मानसिक तनाव न रहे, शांति के साथ जी सकें और बीमारियां न सताए, उनका ध्यान सदा शिशु ही रहेगा, आगे नहीं बढ़ पाएगा। उस ध्यान की आयु लम्बी नहीं हो सकती।

ध्यान का प्रयोजन

ध्यान का मूल प्रयोजन है–सत्य की खोज। प्राचीन काल में सत्य की खोज का साधन था–ध्यान। आज सत्य की खोज का साधन है उपकरण। सूक्ष्म को आंखों से नहीं देखा जा सकता किन्तु माइक्रोस्कोप आदि सूक्ष्मवीक्षण यंत्रों के द्वारा देखा जा सकता है। दूर की वस्तुओं को जिन आंखों से नहीं देखा जा सकता, उन वस्तुओं को यंत्रों से देखा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा सकता है। ध्यान के द्वारा भी सत्य तक पहुंचा जा सकता है। जिस व्यक्ति में यह जिज्ञासा जाग जाती है, वह वास्तव में परिपक्व ध्यान को उपलब्ध होता है। वह उस भूमिका तक पहुंच जाता है, शेष बीच में ही अटक जाते हैं।

एक व्यक्ति ने नदी पार की, तट पर आया। तट पर अनेक लोग खड़े थे। सामने गांव था। उसने पूछा–मैं कब तक गांव में पहुंच जाऊंगा। सूरज ढलने को था। उत्तर देने वाले ने बड़ा अजीब उत्तर दिया–जल्दी चलोगे तो रात गहरी हो जाएगी और धीरे-धीरे चलोगे तो शाम तक पहुंच जाओगे।

बड़ी विचित्र बात है। ये उलट पहेलियां हमारी दुनिया में बहुत चलती हैं। उसने सोचा–उत्तर देने वाला कोई नासमझ है इसीलिए इतनी उलटी बात कहता है। वह खूब दौड़ा, तेज चला। नदी के तट पर गहरी चट्टानें थीं। एक चट्टान से टकराया, लड़खड़ाया और गिर पड़ा। चलते-चलते रात के बारह बज गए।

जिज्ञासा जागे

दौड़ने की जरूरत नहीं है, धीमे-धीमे चलें किन्तु यह लक्ष्य रहे–गांव तक पहुंचना है, सत्य को खोजना है। यह लक्ष्य बन गया तो पहुंचा जा सकता है। यात्रा लम्बी हो, गति मन्द हो तो भी पहुंचा जा सकता है। जिसने लक्ष्य ही छोटा बना लिया, उसके पैर रुक जाएंगे। लक्ष्य बड़ा रखें–सत्य को खोजना है, आत्मा और पदार्थ को खोजना है। दोनों सत्य हैं–परमाणु भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है। जैन दर्शन की परिभाषा में, सत्य में कोई अन्तर नहीं है। जिसका अस्तित्व है, वह सत्य है और उस सत्य को पाना है। वहां तक हमारी यात्रा चले और साथ में यह देखते रहें कि जिज्ञासा कितनी है। उपलब्धि जिज्ञासा पर निर्भर है। जिसके जितनी जिज्ञासा है, लक्ष्य उसके उतना ही पास है।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

सम्भव है आत्मा का साक्षात्कार

'आत्म-साक्षात्कार प्रेक्षाध्यान के द्वारा'–यह प्रेक्षा गीत का ध्रुवपद है। आत्मा का साक्षात्कार बहुत कठिन लगता है, पर असंभव नहीं है। प्रश्न हो सकता है–आत्मा अमूर्त्त है। इन्द्रियां एवं मन मूर्त्त को जानते हैं, साक्षात्कार कैसे संभव होगा? हमारे पास जानने के जो साधन हैं, वे न मूर्त्त को जानने वाले हैं, न अमूर्त्त को जानने वाले हैं। इन चर्म चक्षुओं से मूर्त्त परमाणु का साक्षात्कार नहीं हो सकता। सूक्ष्म स्कंध का भी नहीं हो सकता। अनंत प्रदेशी स्कन्ध हैं, अनन्त परमाणु इकट्ठे हुए हैं किन्तु परिणति सूक्ष्म है। हम इन आंखों से उन्हें नहीं देख पाते। हम इन्द्रियों और मन से बहुत कम चीजों को जानते हैं। यह कहा जा सकता है–विश्व का नब्बे प्रतिशत भाग हमारे लिए अदृश्य और अगम्य है। दस प्रतिशत भाग मुश्किल से गम्य बनता है। इस स्थिति में जो अमूर्त्त है, सूक्ष्म है, क्रियातीत, मनोतीत और बुद्धि से परे है, उसका साक्षात्कार कैसे संभव है? इस विषय में अनेक आचार्यों ने चिन्तन किया और एक रास्ता खोजा। उन्होंने कहा–आत्मा का साक्षात्कार न हो तो ध्यान करने वाला निराश हो जाएगा।

चार तत्त्व

ध्यान करने वाले व्यक्ति को चार तत्त्वों पर पहले निर्णय करना होता है–१. लक्ष्य, २. शक्यता, ३. दृष्ट फल, ४. अदृष्ट फल।

ध्यान का लक्ष्य क्या है? लक्ष्य बहुत बड़ा है तो फिर अपनी शक्ति को देखें–मेरे पास कितने साधन हैं? लक्ष्य के अनुरूप शक्यता का बोध–यह दूसरा तत्त्व है। तीसरा तत्त्व है–दृष्ट फल। ध्यान का एक फल ऐसा होता है जो तत्काल सामने आ जाता है। कायोत्सर्ग का प्रयोग किया, तनाव कम हो गया। श्वास प्रेक्षा का प्रयोग किया, भारीपन कम हो गया। यह दृष्ट फल है। चौथा तत्त्व है अदृष्ट फल। व्यक्ति ध्यान करता चला गया पर फल का अनुभव नहीं हुआ, आत्मा का दर्शन नहीं हुआ, पता नहीं कब होगा? यह अदृष्ट फल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेद्य और वेदक

प्रश्न है क्या आत्म-दर्शन की हमारे भीतर शक्यता है? चिन्तन किया गया तो उत्तर मिला–शक्यता है। हम आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं। साक्षात्कार की अनेक कोटियां बन जाती हैं। साक्षात्कार का एक हेतु है–वेद्य और वेदकभाव। वेदक वह है, जो अनुभव करने वाला है। वेद्य वह है, जिनका अनुभव किया जाए। आत्मा ज्ञाता है, वह दूसरे का वेदन करता है। वस्तु वेद्य बन जाती है। जब आत्मा स्वयं पर ध्यान केन्द्रित करता है, अनुभव को जानना चाहता है, तब वहां वही वेदक और वही वेद्य बन जाता है, वही ज्ञाता और वही ज्ञेय बन जाता है, वही ध्याता और वही ध्येय बन जाता है। वेद्य और वेदक, ज्ञाता और ज्ञेय, ध्याता और ध्येय–दोनों एक ही बन जाते हैं। वेद्य और वेदक–दोनों के बीच कोई दूरी नहीं रहती। जब इस स्थिति का निर्माण हो जाता है, तब आत्म-साक्षात्कार की भूमिका हमारे सामने आती है।

वेद्यत्वं वेदकत्वं च, यत् स्वस्य स्वेन योगिनः।
तत् स्वसंवेदनं प्राहुः, आत्मनोऽनुभवं दृशाम्।।

उपाय साक्षात्कार का

यह आत्म–साक्षात्कार कब होता है? इसका उपाय खोजा गया। उपाय के बिना कोई सिद्धि नहीं होती। कहा गया–

उभयेस्मिन् निरुद्धे तु, स्याद् विस्पष्टमतीन्द्रियम्।
स्वसंवेद्यं हि तद् रूपं, स्वसंवित्त्यैव दृश्यताम्।।

इन्द्रियों को रोको और मन को रोको। जब दोनों का निरोध होगा, तब उस अवस्था में आत्मा का जो रूप है, वह प्रकट होगा। आत्मा का द्वार बन्द है और मन का द्वार खुला है, आत्मा का बोध नहीं हो सकता, साक्षात्कार नहीं हो सकता। जब इन्द्रिय और मन का संवर होता है, तब उस अवस्था में अतीन्द्रिय तत्त्व कुछ स्पष्ट होना शुरू होता है। जब इन्द्रिय राज्य की सीमा समाप्त होती है, तब अतीन्द्रिय राज्य की सीमा में प्रवेश मिलता है।

मनोविज्ञान की भाषा है–जब चेतन मन काम करता है, तब अचेतन मन सोया रहता है और जब चेतन मन सो जाता है, तब अचेतन मन भीतर से जागना शुरू करता है। आत्मा छोटे की सीमा में आना नहीं चाहता। शायद यही कारण है कि देवता मनुष्य की सीमा में आना कम पसन्द करते हैं। देवता छोटे की सीमा में कैसे आएगा? मन का राज्य है छोटा और अतीन्द्रिय चेतना का राज्य है बड़ा। बड़ा राज्य छोटे राज्य में कैसे आएगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक राजा के मन में अपनी सत्ता को देखकर अहं जाग गया। उसके मन में प्रश्न उभरा–इन्द्र स्वर्ग का राजा होता है, पर क्या वह मेरे सामने टिक पाएगा? राजा ने अपने सभासदों से पूछा–बोलो, मैं बड़ा हूं या इन्द्र? राजा के सामने सभासद क्या कहते? सबने एक स्वर में कहा–राजन्! आप बड़े हैं, इन्द्र छोटा है।

मैं बड़ा कैसे हूं? इन्द्र छोटा कैसे है? इसका न्याय क्या है? राजा को इस प्रश्न का समाधान नहीं मिला। राजा ने घोषणा करवा दी–जो नागरिक इस प्रश्न का समाधान देगा, उसे आधा राज्य दे दूंगा। राजा भी बड़े विचित्र होते थे। उत्तर देने के लिए बहुत सारे लोग आए। आधा राज्य मिले तो किसका मन नहीं ललचाए।

एक युवक ने कहा–'महाराज ! मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे सकता हूं।'

'बोलो ! कौन बड़ा है–मैं या इन्द्र?'

'राजन् ! आप बड़े हैं, इन्द्र छोटा है।'

'इसका हेतु क्या है?'

'महाराज एक दिन ऐसा हुआ कि विधाता आपका भाग्य लिख रहा था। उस समय इन्द्र भी सामने आ गया। विधाता ने देखा–यह भी तो अच्छा है। विधाता के मन में विकल्प उठा–किसको राजा बनाऊं? इसको बनाऊं या उसको बनाऊं? विधाता ने निर्णय लिया–न्याय करना चाहिए। उसने एक तराजू मंगाया। एक पल्ले में आपको बिठा दिया, दूसरे पल्ले में इन्द्र को बिठा दिया। इन्द्र हल्का था इसलिए वह ऊपर चला गया। आप भारी थे इसलिए नीचे रह गए। ऊपर का राज्य इन्द्र को मिल गया और नीचे का राज्य आपको मिल गया। आप भारी हैं, इसलिए आप बड़े हैं।'

राजा को यह समाधान मान्य हो गया। युवक ने आधा राज्य पा लिया।

संवेदन है आत्मानुभव

महत्त्वपूर्ण प्रश्न है–कौन-सा राज्य छोटा है और कौन-सा बड़ा है। मन का राज्य छोटा है। वह नीचे रहता है। अतीन्द्रिय चेतना का राज्य बड़ा है, वह सूक्ष्म में चला गया, ऊपर चला गया। उसके लिए इन्द्रिय और मन के राज्य की सीमा को लांघना पड़ता है। इन्द्रिय और मन के राज्य की सीमा को लांघे बिना अतीन्द्रिय तक नहीं पहुंचा जा सकता।

जो आत्म-साक्षात्कार करने की भावना रखता है, उसे सबसे पहले इन्द्रिय और मन का संवर करना होगा। जब इन्द्रिय और मन की चंचलता समाप्त होती है, तब अतीन्द्रिय का बोध शुरू होता है और उसका नाम है–स्वसंवदेन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग अथवा ध्यान में तीन शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं–आत्मानुभव, आत्मानुभूति या आत्मदर्शन। तीनों का तात्पर्य है–स्वसंवेदन। हमारा एक संवेदन पदार्थ से जुड़ा हुआ होता है। किसी वस्तु को जानते हैं तो इन्द्रिय का वेदन पदार्थ के साथ जुड़ा रहता है। हमारा ज्ञान वस्तु को जानने में व्यापृत रहता है। मन किसी विषय का चिन्तन करता है, स्मृति अथवा कल्पना करता है तो मन का वेदन पदार्थ के साथ जुड़ा रहता है।

इन्द्रिय और मन का निरोध करें

बाह्य जगत् में सारा व्यापार इन्द्रिय और मन के माध्यम से होता है। पहला स्रोत बनता है इन्द्रिय और दूसरा स्रोत बनता है मन। जब इन्द्रिय और मन दोनों का निरोध हो जाता है, उस अवस्था में अतीन्द्रिय प्रकट होता है। वह है हमारी स्वसंवेदन की अवस्था। इसी का नाम है–आत्मा का साक्षात्कार।

कोई भी व्यक्ति ध्यान के आधार पर, श्रुत ज्ञान के आधार पर, तत्त्वचर्चा के आधार पर, आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता, स्व-संवेदन की भूमिका तक नहीं जा सकता। स्व-संवदेन की भूमिका में वही व्यक्ति पहुंच पाएगा, जिसने इन्द्रियों और मन का निरोध करना सीख लिया है। ध्यान का सारा उपक्रम इसलिए है कि इन्द्रियों की चंचलता कम हो, हमारी एकाग्रता बढ़े, लम्बी बने। उसके लिए दीर्घकालीन साधना करना आवश्यक है। उस अवस्था में जो अज्ञात है, वह ज्ञात होगा।

संभव है मन का निरोध

ध्यान के विषय में सारे दार्शनिक मत एक नहीं हैं। एक मत है–जहां मन नहीं है, इन्द्रियों का व्यापार नहीं है, वहां उस अवस्था में अभाव की स्थिति बन जाती है। साक्षात्कार में यह बात सम्भव नहीं है। दर्शन में कुछ अभाव में कुछ तो मानते हैं किन्तु जहां ज्ञान का अभाव है, वहां ध्यान नहीं होगा, जड़ता हो जाएगी। ज्ञान का अभाव है जड़ता, किन्तु ध्यान होने का मतलब है, स्वसंवेदन का जागना। यह जड़ता नहीं है। यह इन्द्रिय और मन का अभाव जड़ता नहीं है, विशेष शक्ति का जागरण है।

मन का निरोध जैन साधना की प्रक्रिया में संभव है, पतंजलि की साधना में संभव है, किन्तु बौद्ध परम्परा में संभव नहीं है। इसका कारण यह है–जैन दर्शन आत्मा को मानता है, चित्त को स्वीकार करता है। चित्त आत्मा की एक रश्मि है। मन न आत्मा है, न चित्त है। बौद्ध दर्शन में मन ही सब कुछ है, तो निरोध किसका करेंगे। मन का निरोध करने पर कुछ नहीं बचेगा।

जैन परिभाषा में मन का अर्थ है–मनोवर्गणा। जीव के द्वारा मनोवर्गणा के आधार पर जब मनन किया जाता है, तब मन का निर्माण होता है। मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई स्थायी तत्त्व नहीं है। आत्मा स्थायी तत्त्व है। मन उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है। हम इस स्थिति में चले जाएं, मन को समाप्त कर दें, मन को उत्पन्न न होने दें। वह हमारी अमन की अवस्था है। अमन की अवस्था अतीन्द्रिय ज्ञान के प्रकट होने की अवस्था है। उस अवस्था में अतीन्द्रिय ज्ञान प्रकट होता है, हमारी चेतना जागती है। बौद्ध दर्शन में यह संभव नहीं है। वहां सारी धारणा ही मन के साथ जुड़ी हुई है। आत्मा नाम का कोई तत्त्व नहीं है।

अमन होना, मन को समाप्त कर देना, यह स्व-संवेदन की, आत्म-साक्षात्कार की भूमिका है। इस भूमिका में पहुंचकर व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि आत्मसाक्षात्कार हो रहा है। जब इन्द्रिय का ज्ञान नहीं है, मन का ज्ञान नहीं है, उस स्थिति में केवल दो ही बातें हो सकती हैं या तो ज्ञान समाप्त हो गया अथवा मन चेतन से अचेतन बन गया। इन्द्रिय और मन के अभाव में भी अनुभव होता है और वह अनुभव स्व-संवदेन के क्षण में पैदा होता है।

बुद्धि और अनुभव

एक व्यक्ति ने पूछा—क्या बुद्धि और अनुभव एक हैं? मैंने कहा—दोनों अलग-अलग हैं। बुद्धि अलग है, अनुभव अलग है। बुद्धि का काम है—निर्णय करना, विवेक करना। वह हमारी निर्णयात्मक चेतना है। एक है संवेदनात्मक चेतना, जहां न कोई निर्णय होता है, न कोई विवेक होता है। वहां केवल अपने अस्तित्व का अनुभव होता है-'मैं हूं' और 'मैं ज्ञानमय हूं' इस अवस्था का अनुभव होता है। यह स्व-संवेदन आत्म-साक्षात्कार है। जहां मूर्त्त को जानने वाले ज्ञान से छुटकारा पा लिया, वहां अमूर्त्त भीतर से झलकने लग जाता है, उसका भान होने लग जाता है। यह स्पष्ट बोध होने लग जाता है—'स्वयं को मैं जान रहा हूं, किसी दूसरे को नहीं जान रहा हूं।' केवल अपना ही ज्ञान भीतर सक्रिय हो रहा है। यह एक विचित्र अनुभव का क्षण है

शक्यता और विवेक

हमारा लक्ष्य बने—आत्मा का साक्षात्कार करना। फिर हम विवेक करें शक्यता का। मुझमें इन्द्रियों को निरुद्ध करने की शक्यता कितनी है। हम उस शक्यता का उपयोग करें। शक्ति का प्रयोग निरोध में करें। विवेक के बिना शक्ति का उपयोग नहीं होता। विवेक शून्य शक्ति का उपयोग लाभप्रद नहीं होता।

एक सेठ के पास ग्राहक आया, उसे घी लेना था। सेठ घी तौलने बैठा। पास में एक कारीगर बैठा था। घी तौलते-तौलते थोड़ा-सा नीचे गिर गया। सेठ ने अंगुली भरकर उठाया और उसे चाट लिया। ग्राहक चला गया। कारीगर ने सोचा—सेठ मकान तो बड़ा बना रहा है, लेकिन कंजूस लगता है। थोड़ा-सा घी नीचे गिरा, उसे उठाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाट लिया। यह क्या मकान बनायेगा? मकान बनाने की इतनी बड़ी बात कर रहा है, कहीं धोखा न हो जाए। बातचीत शुरू हुई। सेठ ने कहा–'मकान बनाना शुरू करना है।'

कारीगर बोला–'सेठ साहब ! मैं आपका मकान बना दूंगा, पर एक बात का ध्यान दें–जिस दिन मकान की नींव की खुदाई पूरी होगी, उस दिन नींव में एक मन घी की आहुति देनी होगी। उससे नींव मजबूत बन जाएगी, अन्यथा नींव मजबूत नहीं बनेगी।'

सेठ ने कहा–'ठीक है।'

काम शुरू हुआ। सेठ ने कारीगर के सामने एक मन घी का पात्र रख दिया। कारीगर चक्कर में पड़ गया। सेठ बोला–'यह लो घी।'

'सेठ साहब ! अब विश्वास हो गया है कि मकान बन जाएगा।'

'संदेह क्यों हुआ? कब हुआ?'

'सेठ साहब ! दो-चार बूंदें घी की नीचे गिरी और आपने घी को चाट लिया। मैंने सोचा–सेठ इतना कंजूस है, मकान कैसे बनाएगा। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मकान बन जाएगा।'

सेठ ने सोचा–यह कारीगर है, कर्मकर है, लेकिन विवेकी नहीं है, विवेक करना नहीं जानता। सेठ ने कहा–'अनावश्यक दो-चार बूंदें भी खराब नहीं होनी चाहिए, बेकार नहीं जानी चाहिए और यदि आवश्यकता है, तो एक मन के स्थान पर दस मन घी भी डाला जा सकता है।

विवेक यह होना चाहिए–हम शक्ति का उपयोग करें, किसी वस्तु का व्यय करें तो कहां करें। एक प्रश्न होता है–बहुत सारे लोग अपव्यय करते हैं। अपव्यय का मतलब क्या है? एक व्यक्ति ने दस हजार मनुष्यों को भोजन कराया और कहा जाता है कि पुण्य कर दिया। यह अपव्यय है। यदि उतना स्कूल के मकान बनाने में लगा दिया, हॉस्पिटल में लगा दिया, अतिथि गृह में लगा दिया तो वह समाज के उपयोग का प्रश्न है। अपव्यय वह होता है, जिसका लाभ प्रतिलाभ के रूप में न मिले, स्थाई और व्यापक रूप में न मिले। जहां शक्ति लगे, पैसा खर्च हो और जिससे समाज को कोई लाभ मिले, वह अपव्यय नहीं कहलाता।

कारीगर की आंखें खुल गई। उसने सोचा, यह बिल्कुल ठीक बात है। शक्ति का अपव्यय नहीं होना चाहिए। उसका निरर्थक खर्च नहीं होना चाहिए। खर्च की सार्थकता होनी चाहिए।

हम पहले विवेक करें–शक्यता क्या है? क्या मैं अपनी इन्द्रिय का निरोध कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता हूं। मन को अमन बना सकता हूं? इस शक्यता के आधार पर शक्ति का नियोजन करें। आत्म-साक्षात्कार के दोनों रूप हमारे सामने आ जाएंगे। दृष्ट फल भी मिलेगा और अदृष्ट फल भी मिलेगा। दृष्ट फल का तात्पर्य है कि स्व-संवेदन जाग जाए। आत्म-दर्शन की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति ने जैसे ही इन्द्रिय और मन का निरोध किया, दृष्ट फल उसके सामने आ गया। यदि स्व-संवेदन की मात्रा बढ़ती चली जाए तो एक दिन अमूर्त्त को जानने वाला ज्ञान प्रकट होगा, आत्मा का साक्षात्कार हो जाएगा। यह अदृष्ट फल है किन्तु निरन्तर प्रयत्न से इसकी उपलब्धि भी संभव है।

आरोहण करें

लक्ष्य, शक्यता, दृष्ट फल और अदृष्ट फल—इन चार बिन्दुओं की ठीक मीमांसा कर ध्यान का प्रयोग करें। आत्मा का साक्षात्कार असंभव नहीं है। साक्षात्कार की अलग-अलग कोटियां बनेंगी। एक व्यक्ति ऊपर चढ़ना चाहता है। अभी एक सीढ़ी पर चढ़ा है, बीस सीढ़ियों को पार करना शेष है। हम क्या कहेंगे? वह ऊपर चढ़ा या नीचे उतरा? वह दो सीढ़ी पर चढ़ा तब ऊपर चढ़ा है और बीसवीं सीढ़ी पर चढ़ा है तब लक्ष्य तक पहुंचा है। आत्मा का साक्षात्कार पहली सीढ़ी है। किन्तु बीस सीढ़ियां चढ़ना अभी शेष है। चढ़ते-चढ़ते बीसवीं सीढ़ी भी आ जाएगी और अमूर्त्त का साक्षात्कार हो जाएगा। हम इन्द्रिय और मन का संवरण करें, स्व-संवेदन का अनुभव होगा। इसका अर्थ है—हमारा आरोहण हो गया, हम आत्म-साक्षात्कार की निकट भूमिका में पहुंच गए। पूरे संकल्प के साथ हम ध्यान की साधना प्रारम्भ करें, प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करें तो इस पांचवें आरे में भी, वज्रऋषभनाराच संहनन के अभाव में भी, आत्म-साक्षात्कार का सपना सच बन जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान कब सधेगा?

आज पूरे विश्व में ध्यान का वातावरण है। पश्चिम हो या पूर्व–विश्व के हर कोने में ध्यान की चर्चा है, ध्यान के आयोजन हैं और ध्यान करने वालों की भीड़ भी है। यह वातावरण किसी परमात्मा ने नहीं बनाया है, मनुष्य ने बनाया है और अपने हाथों बनाया है। यदि मनुष्य प्रवृत्तिमूलक नहीं होता तो ध्यान का यह वातावरण नहीं बनता। युग इतना प्रवृत्तिमय हो गया, इतनी व्यस्तता और इतना तनाव है कि वह आखिर क्या करे? कोई उपाय ही नहीं है इसलिए ध्यान की शरण में जाना अनिवार्य हो गया।

गुरुदेव यात्रा करते-करते पटना पहुंचे। पटना विश्वविद्यालय में स्वागत का कार्यक्रम। राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर ने कहा–आचार्यवर! आपने जो अणुव्रत आंदोलन का प्रारंभ किया है, उसको आज मैं बहुत उपयोगी मानता हूं। इस प्रवृत्ति के युग में निवृत्ति की बहुत आवश्यकता है। अगर निवृत्ति नहीं आएगी तो कोरी प्रवृत्ति आदमी को लील जाएगी, उसे विक्षिप्त बना देगी। इसलिए आज निवृत्ति की बहुत आवश्यकता है, श्रमण परम्परा ने इसी निवृत्ति पर अधिक बल दिया है।

प्रवृत्ति को छोड़ा नहीं जा सकता। यह आवश्यक है, किन्तु निवृत्तिशून्य प्रवृत्ति बहुत खतरनाक है। ध्यान एक निवृत्ति है। ध्यान की साधना मनुष्य को अपने भीतर ले जाती है। वह संकुचित हो जाता है। वह बाहर फैला हुआ है, संकोच होना जरूरी है यह संकोच और विकोच की प्रक्रिया है। कभी संकुचित होना और कभी फैलना। योग मे अश्विनी मुद्रा को शक्ति-विकास के लिए बहुत जरूरी माना जाता है। उस मुद्रा का रूप है संकोच करना और विकोच करना, सिकुड़ना और फैलना। ऐसा होता है तभी शक्ति का जागरण होता है।

ध्यान का प्रयोजन है प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जाना। निवृत्ति के लिए चार बातें बहुत आवश्यक हैं–१. गुरु का उपदेश २. श्रद्धा ३. सदा अभ्यास ४. मन की स्थिरता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानस्य च पुनर्मुख्यं, हेतुरेतच्चतुष्टयम्।
गुरुपदेशः श्रद्धानं, सदाभ्यासः स्थिरं मनः।।

गुरु का उपदेश

पहली बात है गुरु का उपदेश। प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है। प्रशिक्षण के बिना निवृत्ति या ध्यान की बात सधती नहीं है। प्रशिक्षण होना चाहिए। शरीर का प्रशिक्षण, शरीर के मुख्य-मुख्य घटकों–नाड़ी तंत्र, श्वसन तंत्र, ग्रन्थि तंत्र आदि का प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है। आज कोई व्यक्ति ध्यान करे और इनका प्रशिक्षण न ले तो मानना चाहिए–वह अंधेरी कोठरी में ढेला फेंक रहा है। यह आज की सचाई नहीं है, हजारों वर्ष पुरानी सचाई है। हठयोग के प्राचीन आचार्यों ने कहा–जो नाड़ी को नहीं जानता, वह ध्यान या योग करना नहीं जानता। नाड़ी का अर्थ है प्राणप्रवाह का पथ। आज का नाड़ी तंत्र नर्वस सिस्टम से सम्बन्ध रखता है। हठयोग के संदर्भ में नाड़ी का ज्ञान है प्राण प्रवाह का ज्ञान। शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां मानी गई हैं। हमारे शरीर में बहत्तर हजार प्राणप्रवाह के पथ हैं। जो इन प्राण-प्रवाह के पथों को नहीं जानता, वह क्या ध्यान की साधना करेगा?

एक योग की एनाटोमी है और एक मेडिकल साइंस की एनाटोमी है। ध्यान करने वाले को दोनों का सामान्य ज्ञान तो अवश्य होना चाहिए। वह नहीं जानता है तो समुचित लाभ नहीं ले पाता। ध्यान से जो होना चाहिए, वह नहीं हो सकता। मन की चंचलता को कम करना है। प्राण के प्रवाह का पता नहीं है तो कैसे कम करेगा? यदि यह प्रशिक्षण मिला–दाएं स्वर का सम्बन्ध अनुकम्पी नाड़ी तंत्र के साथ है, हठयोग की भाषा में पिंगला के साथ है। बाएं स्वर का संबंध परानुकम्पी नाड़ी तंत्र के साथ है, हठयोग की भाषा में इड़ा के साथ है। पिंगला का काम है चंचलता बढ़ाना, सक्रियता को कम करना। यदि ध्यान के समय बाएं स्वर को बंद कर लेता है और दाएं को चला देता है, सूर्य भेदन प्राणायाम कर लेता है तो उल्टा काम हो जाएगा। सूर्य भेदन में बायां बंद रहता है और दायां सक्रिय रहता है। एकाग्रता करनी है तो बायें नथुने से काम लेना होगा। शरीर में सक्रियता लानी है तो दाएं नथुने से काम लेना होगा। यह प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है।

संदर्भ श्वास का

प्रेक्षाध्यान के बारे में कहा जाता है कि यह वैज्ञानिक पद्धति है। इसका तात्पर्य यह है कि इस पद्धति में हठयोग का जो शरीर विज्ञान है और मेडिकल साइंस का जो शरीर विज्ञान है, उसका पूरा उपयोग किया गया है। उसके साथ पूरा तादात्म्य एवं सामंजस्य स्थापित किया गया है और वैसे ही प्रयोग विकसित हुए हैं। एक व्यक्ति को ध्यान का प्रयोग करना है। ध्यान में मंद श्वास होना चाहिए और उसने श्वास को तेज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर लिया तो प्रयोग वांछित परिणाम नहीं लाएगा। मंद श्वास और गहरा श्वास दो हैं। एक होता है छोटा श्वास, जिसको हम सहज श्वास मानते हैं। छोटा श्वास होगा तो एकाग्रता में बाधा आएगी। मंद श्वास होगा तो एकाग्रता अच्छी सधेगी।

मन्द श्वास का लक्षण है—श्वास लेते समय पेट फूलेगा और छोड़ते समय पेट सिकुड़ेगा। यह हमारी एकाग्रता के लिए बहुत उपयोगी है। दीर्घ श्वास की बात आज विज्ञान सम्मत है। गहरे श्वास की एक परिभाषा कर दी गई भस्त्रिका का श्वास। वह ध्यान के लिए उपयोगी नहीं, बाधक बनता है। इन सब बातों का सामान्य ज्ञान ध्यान की साधना करने वाले को होना चाहिए। इसके लिए प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है।

संदर्भ प्राणायाम का

हम प्राणायाम का संदर्भ लें। हठयोग के आचार्य ने लिखा—

प्राणायामेन युक्तेन, सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन, सर्वारोगसमुद्भवः।।

अगर युक्त ढंग से, सही ढंग से प्राणायाम करते हैं तो सर्व रोग का क्षय होता है। अगर अयुक्त ढंग से प्राणायाम होता है तो सब रोगों का उद्भव हो सकता है। यदि पूछा जाए—प्राणायाम से रोग मिटता है या होता है तो उत्तर होगा—प्राणायाम से रोग होता भी है, मिटता भी है। अगर विधियुक्त करते हैं तो प्राणायाम से रोग का नाश होता है और अविधि से करते हैं तो रोग का उद्भव होता है। इसलिए गुरु का उपदेश आवश्यक है। गुरु के उपदेश का अर्थ हम संकुचित न लें। इतना ही नहीं है कि एक व्यक्ति आया और गुरु ने उसे कुछ बताया। वह भी गुरूपदेश है किन्तु आज के संदर्भ में गुरूपदेश का अर्थ करें तो वह होगा प्रशिक्षण।

संदर्भ मुद्रा का

ध्यान का प्रशिक्षण होना चाहिए। ध्यान के लिए कैसे बैठना है? किस मुद्रा में बैठना है? अंगुली कैसे रखना है? अंगुली की बात सामान्य प्रतीत होती है किन्तु बहुत उपयोगी है। ध्यान के समय हमारा बायां हाथ नीचे, दायां हाथ ऊपर रहे, हाथ की अंगुलियां आकाश की ओर रहे अथवा ज्ञानमुद्रा में रहे। व्यक्ति ने ध्यान किया, हाथों की अंगुलियों को धरती की ओर नीचे कर दिया तो शक्ति का ह्रास होगा। इन अंगुलियों से ऊर्जा बाहर जाती है। ध्यानकाल में अंगुलियों को नीचे की ओर कर दिया तो बहुत सारी ऊर्जा व्यर्थ चली जाएगी। अंगुलियों को इस प्रकार रखना चाहिए, जिससे ऊर्जा का क्षय न हो। अंगुलियां ऊपर की ओर रहे, नीचे लटकती हुई न रहे, यह आवश्यक है। हमें खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करना है। हाथ लटके हुए हैं, घुटनों के साथ सटे हुए नहीं हैं तो ऊर्जा का नाश नहीं होगा। इन आवश्यक बातों का प्रशिक्षण होना बहुत जरूरी है। अगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह आवश्यक प्रशिक्षण नहीं है तो ध्यान करने वाला व्यक्ति कभी-कभी पागल ही बन जाता है, बनता है।

अहमदाबाद से समागत एक व्यक्ति ने कहा—मेरे पास अमुक पद्धति से ध्यान करने वाले दसों व्यक्ति आ गए। वे प्रायः विक्षिप्त होकर आए हैं। कारण यही माना गया—सम्यक् प्रशिक्षण नहीं है। डॉ० नथमल टाटिया ने बताया—उनका भतीजा और भतीजे की पत्नि अमुक ध्यान केन्द्र में गए और वहां से पागल होकर आए। ऐसा होता है क्योंकि ध्यान से ऊष्मा बहुत बढ़ती है। व्यक्ति ध्यान करेगा तो गर्मी तो बढ़ेगी ही। उसका शमन कैसे करना चाहिए? क्या पद्धति होनी चाहिए? इन सब बातों का प्रशिक्षण नहीं होता है तो लाभ के स्थान पर नुकसान हो जाता है। ध्यान शिविर में कोरा प्रशिक्षण ही चले, यह आवश्यक नहीं है पर प्रशिक्षण बिल्कुल न हो, यह अच्छा नहीं है। नया-नया व्यक्ति ध्यान शिविर में आए, केवल ध्यान में बैठ जाए, शिविर पूरा होते ही चला जाए तो मानना चाहिए—उसके साथ न्याय नहीं हुआ। उसने केवल ध्यान करना जाना किन्तु उसके पहले कुछ भी नहीं जाना है। जिसका आदि ज्ञात नहीं, जिसका अन्त ज्ञात नहीं केवल मध्य को जान लिया तो क्या मिलेगा? ध्यान में कैसे बैठना चाहिए, यह नहीं जाना और केवल ध्यान को जान लिया तो ध्यान कितना सधेगा? ध्यान तब अवतरित होता है जब उसके लिए उपयुक्त मुद्रा का आलंबन लिया जाता है। इन सबके बोध के लिए आवश्यक है प्रशिक्षण, आवश्यक है गुरु का उपदेश।

श्रद्धा

दूसरा तत्त्व है श्रद्धा। ध्यान के प्रति हमारी श्रद्धा होनी चाहिए, आकर्षण होना चाहिए। श्रद्धा को व्यापक संदर्भ में देखें तो श्रद्धा का अर्थ होगा—सम्यक् दृष्टिकोण और कषाय का विसर्जन। ये दोनों बातें श्रद्धा के साथ जुड़ी हुई हैं। कषाय बहुत तेज है तथा कलह, कदाग्रह, चुगली, दोषारोपण, ईर्ष्या आदि से युक्त विचार दिमाग में उमड़ रहे हैं, ध्यान कैसे होगा? जिसका ध्यान में आकर्षण है, उसे कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद आदि अठारह पापों से विरत होकर आना होगा। दोनों बातें हैं—पहले विरत होकर आएं तो ध्यान अच्छा सधेगा और ध्यान सधेगा तो फिर विरति अपने आप दृढ़ होती चली जाएगी। व्यक्ति ध्यान भी करता है और लड़ाई-झगड़े में, दोषारोपण और ईर्ष्या करने में रस लेता है तो फिर ध्यान कैसे होगा? श्रद्धा का होना आवश्यक है, आवेश को शांत करना आवश्यक है। कषाय के इन प्रकारों से बचना जरूरी है। किसी के बारे में मिथ्या बात न करें, किसी पर मिथ्या आरोप न लगाएं, किसी के बारे में मिथ्या बात न करें, किसी को जाल में फंसाने की बात न सोचें, मायाजाल न बिछायें। यदि ये सब बातें चलती रहें और ध्यान शिविर में भी भाग लेते रहें तो कुछ नहीं मिलेगा। दुनियाभर की पद्धतियों में ध्यान का अभ्यास कर लें तो भी ध्यान नहीं सधेगा। ध्यान तभी सधेगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब पहले हम कषाय के अल्पीकरण का अभ्यास शुरू कर दें। ध्यान अकेला नहीं आता। वह अपने परिकर के साथ आता है।

संन्यासी बनने की जरूरत क्या है?

एक राजा संन्यासी के पास गया। उसने देखा– संन्यासी बड़ा तेजस्वी है। राजा संन्यासी का भक्त बन गया। राजा के मन में आया–संन्यासी को कुछ भेंट करना चाहिए। उसने कहा–महाराज! आपको एक घोड़ा भेंट करना चाहता हूं। बहुत बढ़िया घोड़ा है। आपकी सवारी के लिए काम आएगा। संन्यासी गंभीर मुद्रा में बोला–'राजन्! तुम मुझे घोड़ा दोगे?'

'हां,. देना चाहता हूं।'

'तो पहले एक घर और दे दो। घर के बिना घोड़ा कहां रखूंगा?'

'महाराज! घर भी दे दूंगा।'

'घर दे दोगे तो घर और घोड़े की परिचर्या करने वाला सेवक भी चाहिए।'

'वह सेवक भी दे दूंगा।'

'फिर घर को चलाने के लिए, घोड़े को खिलाने के लिए पैसा चाहिए।'

'वह भी दे दूंगा।

संन्यासी बोला--'तब फिर मैं तुम्हारे जैसा ही बन जाऊंगा। मुझे संन्यासी बनने की जरूरत ही क्या है?'

पक्का पाहुना है तनाव

अगर आप ध्यान लाना चाहते हैं तो ध्यान के पीछे ये सारी बातें आनी चाहिए। ध्यान आए तो कषाय कम हो। ऐसा होगा तो ध्यान आएगा। ध्यान केवल मानसिक तनाव मिटाने का उपक्रम नहीं है। यदि तनाव बनाने वाले कारक आपके भीतर विद्यमान हैं और आप ध्यान करके उसे मिटाना चाहते हैं तो वह शराब पीने वाली बात हो जाएगी। तनाव आया, शराब पी ली, तनाव मिट जाएगा। शराब का नशा उतरा, तनाव फिर तैयार है। तनाव पक्का पाहुना है। कहा जाता है–कच्चा पाहुना तो चला जाता है किन्तु पक्का पाहुना कभी खाए बिना नहीं जाता। जब सारे शत्रु भीतर विद्यमान हैं, ध्यान क्या करेगा? आधा घण्टा ध्यान के लिए बैठे, थोड़ी शांति मिली, तनाव कम हुआ फिर घर में गए तो वही कथा शुरू हो जाएगी। वही घोड़ा और वही मैदान–सब कुछ तैयार है। व्यक्ति सामायिक करता है, ध्यान करता है तब तक बड़ी शांति रहती है। जब वह घर के वातावरण में जाता है, फिर वैसा का वैसा बन जाता है। इसका अर्थ यही है कि ध्यान का सही उपयोग या अर्थ समझा नहीं गया। उसका सही अर्थ तब होगा जब आप ध्यान में बाधा डालने वाले सारे कारक तत्त्वों का उपशमन करना भी सीखें, उन्हें कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना भी सीखें। ऐसा होने पर ही ध्यान का कोई अर्थ होगा।

निरन्तर अभ्यास चले

तीसरा तत्त्व है सदा अभ्यास। अभ्यास निरंतर चले। आपने प्रशिक्षण भी पा लिया और उपशमन करने का प्रयोग भी किया किन्तु अभ्यास सदा नहीं चलेगा तो ध्यान सधेगा नहीं। हमारे पास जो आध्यात्मिक शक्ति है, उसका नाम है क्षयोपशम। उसकी प्रकृति बड़ी विचित्र होती है। कुरान में एक दृष्टांत है--आदमी नदी पर स्नान करने गया। उसमें डुबकी ली। नदी के जल पर शैवाल छाई हुई थी। शैवाल इतनी मोटी होती है कि उसे हटाए बिना कुछ दिखाई नहीं देता। आदमी के ऊपर शैवाल आ गई। आदमी ने हाथ हिलाया, शैवाल को हटाया, उसे आकाश दिख गया, चांद दिख गया। जैसे ही फिर उसने हाथ हिलाना बन्द किया, शैवाल फिर आड़े आ गई, कुछ भी दिखाई नहीं दिया। हाथ हिलाओ, शैवाल को हटाओ तो आकाश दिखेगा। हाथ हिलाना बंद करो तो आकाश का दर्शन बंद हो जाएगा।

यही है क्षयोपशम की प्रकृति। पुरुषार्थ करो, प्रयत्न करो तो आकाश का दर्शन या आत्मा का दर्शन होगा। हाथ हिलाना बंद करो, फिर शैवाल आ जाएगी, आकाश-दर्शन या आत्म-दर्शन बंद हो जाएगा। इतना कमजोर साधन है क्षयोपशम। यदि क्षायिक भाव आ जाए तो फिर कोई जरूरत नहीं है, किन्तु हम क्षयोपशम में जी रहे हैं, हमारा साधन बड़ा दुर्बल है। आइंस्टीन ने कहा–'हम वैज्ञानिक लोग बहुत अभिमान करते हैं कि हम सचाइयों को जानते हैं किन्तु हम इस बात को भूल जाते हैं कि हमारे पास जानने के साधन दो हैं–इन्द्रियां और मन। ये कितने दुर्बल हैं? उनके आधार पर हम यह कहें कि हमने पूरा सत्य जान लिया, यह कितना मिथ्या भ्रम है।' इसलिए उन्होंने कहा–'जिस सत्य को हम जानते हैं, वह निरपेक्ष है, ऐसा हम नहीं कह सकते। हम सापेक्ष सत्य की बात कह सकते हैं। एकांगी या पारमार्थिक सत्य की बात हम नहीं सोच सकते

हमारी भी यही स्थिति है। हमारे पास क्षयोपशम है। उसका उपयोग करें। अभ्यास रोज चलेगा तो ध्यान सधता चला जाएगा। अभ्यास छोड़ेंगे तो शैवाल आ जाएगी, आत्म-दर्शन बंद हो जाएगा। निरन्तर अभ्यास चले, अभ्यास बंद न हो तो ध्यान सध पाएगा।

मन की एकाग्रता

चौथी बात है–मन की एकाग्रता। हम मन को एकाग्र कर लें। प्रेक्षाध्यान के बहुत सारे प्रयोग एकाग्रता को साधने के लिए हैं। एकाग्रता ध्यान का परिकर्म है। एक व्यक्ति कुश्ती लड़ता है तो पहले परिकर्म करता है। वह कुश्ती दंगल में लड़ता है किन्तु कुश्ती लड़ने से पहले तेल मालिश करता है, जल से स्नान करता है और थकान को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिटा लेता है। यह सारा परिकर्म है। लम्बा श्वास लो, शरीर को देखो, चैतन्य केन्द्रों को देखो, यह हमारा परिकर्म है। हम इतनी साज-सज्जा कर लेते हैं, इतनी तैयारी कर लेते हैं कि ध्यान में बैठते ही एक मिनट में मन से परे चले जाते हैं। वह हमारी ध्यान की भूमिका होगी। मन की एकाग्रता का परिकर्म अच्छा हो गया तो ध्यान में स्थायित्व आएगा। परिकर्म अच्छा नहीं हुआ है तो स्थायित्व नहीं आएगा।

महाराज रणजीतसिंह राजसभा में बैठे थे। एक अंग्रेज व्यापारी कांच का बढ़िया फूलदान लाया। उसने कहा–'महाराज ! आप यह भेंट स्वीकार करें। मेरे पास ऐसी बहुत सामग्री है, आप उसको खरीदें। 'बड़े चतुर और विलक्षण थे महाराजा रणजीतसिंह। उन्होंने फूलदान हाथ में लिया और उसे फेंक दिया। वह फूलदान टूट गया। अब उसका मूल्य एक कौड़ी भी नहीं रहा। अंग्रेज देखता रह गया, सब लोग देखते रह गए। सोचा–इतना बढ़िया फूलदान था, महाराज ने यह क्या किया? महाराज ने तत्काल अपना फूलदान उठाया। वह पीतल का बना हुआ था। अपने सेवक से कहा–हथोड़ा लाओ। सेवक हथोड़ा ले आया। महाराज ने निर्देश दिया–इस फूलदान को तोड़ो। सेवक ने फूलदान को पीट-पीटकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। महाराज ने कहा–'बाजार में जाओ और दोनों के टुकड़े बेचकर आओ। आदमी बाजार गया। उसे कांच के टुकड़ों का कोई मूल्य नहीं मिला। वह पीतल के टुकड़ों को बेचकर मूल्य ले आया।' महाराज रणजीतसिंह बोले–'महाशय ! हम उस चीज को नहीं चाहते, जो एक झटके से टूट जाए, फट जाए और अपना मूल्य खो बैठे। हम ऐसी चीज चाहते हैं, जिसका टूटने पर भी मूल्य समाप्त न हो। पीतल का मूल्य समाप्त कहां होगा? वह बिक जाएगा। हम ऐसी स्थायी वस्तु चाहते हैं, जिसका मूल्य सदा बना रहे।'

यदि हमारी एकाग्रता अच्छी बन जाती है, परिकर्म अच्छा हो जाता है तो ध्यान में स्थायित्व आएगा। अन्यथा कांच के फूलदान की तरह टूट-फूट कर वह अपना मूल्य गंवा देगा। ध्यान शिविर में ध्यान किया और घर जाकर भुला दिया तो स्थायित्व नहीं आएगा।

गुरु का उपदेश, श्रद्धा, अभ्यास और मन की एकाग्रता–ध्यान की गहराई में जाने के लिए इन चारों तत्त्वों का पर्यालोचन और अनुशीलन आवश्यक है। ध्यान की सिद्धि का पथ यही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९

ध्यान की दिशा बदलने के लिए

मनुष्य और पशु के बीच एक भेदरेखा खींची जा सकती है और वह यह है–जो मौलिक वृत्तियों के आधार पर जीता है, वह पशु है। जो मौलिक वृत्तियों का परिष्कार करता है, वह मनुष्य है।

मनोविज्ञान की भाषा में भूख, प्यास, सेक्स, संघर्ष आदि-आदि मौलिक मनोवृत्तियां हैं। पशु प्रकृति का जीवन जीता है। इसका अर्थ है कि वह मौलिक वृत्तियों के अनुसार चलता है। भूख लगती है तो खाने का प्रयत्न करता है। प्यास लगती है तो पानी पीने का प्रयत्न करता है। काम-वासना जागती है तो उसका सेवन कर लेता है। नींद आती है तो नींद ले लेता है किन्तु किसी पशु ने नींद का अतिक्रमण किया हो, उपवास किया हो, ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, यह कभी सुनने में नहीं आया। मौलिक वृत्तियों मे परिष्कार मनुष्य ही कर सकता है। मनुष्य इसलिए कर सकता है कि उसके पास विवेक चेतना है, रीजनिंग माइण्ड है। वह अपने विवेक से निर्णय करता है कि कब खान चाहिए, कब नहीं खाना चाहिए। वह जानता है–उपवास भी करना आवश्यक है, कष्ट सहना भी आवश्यक है, ब्रह्मचर्य भी आवश्यक है। इन मौलिक वृत्तियों का परिष्कार करना आवश्यक है। यह चेतना केवल मनुष्य में ही होती है। यदि यह भेदरेखा न हो, मनुष्य केवल मौलिक वृत्तियों के आधार पर चले तो फिर मानना होगा–वह आकार मे मनुष्य है किन्तु प्रकृति में पशु। वृत्ति-परिष्कार तभी संभव है, जब भीतर की सचाइये को समझने की क्षमता जाग जाए।

हमारे सामने दो दिशाएं हैं–बाहर की दिशा और भीतर की दिशा। बाहर कं ओर हमारा ध्यान बहुत जाता है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा, जो बाहर का ध्यान न करता हो। एक छोटे बच्चे के सामने टी.वी. आई और एकदम ध्यान खिंच गया। क्रिकेट मैच हो रहा है, कमेन्ट्री आ रही है, उसमें इतना ध्यान चला जाता है कि खाने को भूल जाता है। ध्यान कौन नहीं करता? जिसमें रुचि है, वह हर व्यक्ति ध्यान करता है ध्यान का एक कारक तत्त्व है–आकर्षण। संस्कृत साहित्य का रूपक है–एक आदमी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खाने को रोटी नहीं मिली। वह बहुत भूखा था। पूनम का चांद उगा। उसने गोल-गोल देखा तो तत्काल ध्यान चला गया, सोचा—रोटी उगी है। चांद में भी रोटी का आरोपण हो गया क्योंकि उसका ध्यान रोटी पर टिका हुआ था। चांद उसके लिए दृश्य नहीं था। उसके लिए दृश्य थी रोटी। जो गोल चीज देखता, तत्काल उसमें रोटी का आरोपण कर लेता। प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट होता है रुचि के आधार पर। रुचि एक प्रकार की नहीं होती। जिसकी जैसी रुचि होती है, उसका ध्यान उसी में अटक जाता है।

शिविर की आयोजना क्यों?

हमें यह सचाई स्वीकार करनी चाहिए कि हर व्यक्ति ध्यान करता है। ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है, जो ध्यान न करे। प्रश्न हो सकता है—फिर ध्यान के शिविर की आयोजना क्यों? सब ध्यान कर ही रहे हैं तो उसकी आवश्यकता क्या है? उसकी आवश्यकता है ध्यान की दिशा को बदलने के लिए । जब तक ध्यान की दिशा नहीं बदलेगी तब तक ध्यान आगे बढ़ाने वाला नहीं होगा, एक सीमा में बंधा हुआ होगा।

बाजार में एक नई पुस्तक आई बायोलॉजी की। स्टॉल पर एक ज्योतिषी ने उस पुस्तक को देखा और सोचा—यह मेरे कोई काम की नहीं है। एक दर्शनशास्त्री ने उसे देखा और कहा—यह निकम्मी है, मेरे लिए आवश्यक नहीं है। एक बायो-लॉजिस्ट ने उसे देखा, तत्काल ध्यान उस पर केन्द्रित हो गया। उसने पुस्तक उठाई और खरीद ली। दो ने पुस्तक को छोड़ दिया, एक ने खरीद लिया। कारण क्या है। कारण है रुचि। जिस विषय में जिसकी रुचि है, वह उसके काम की है और जिसकी रुचि नहीं है, उसके लिए निकम्मी है।

एक बार शहर में प्रख्यात नर्तकी आई। शहर के लोगों ने नृत्य का आयोजन किया। उसका काफी प्रचार किया, विज्ञापन किया। काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। एक बूढ़ा आदमी जाने में सक्षम नहीं था, वह खाट पर पड़ा था इसलिए जा नहीं सका। उसके मन में बड़ी छटपटाहट थी—मैं भी जाता और देखता तो कितना अच्छा होता। नृत्य का आयोजन सम्पन्न हुआ। उसने एक युवक से पूछा—बोलो, कैसा रहा आयोजन? उसने कहा—बहुत सुन्दर रहा, मजा आ गया। आयोजन स्थल से एक छोटा बच्चा बाहर आया। उससे पूछा—बोलो कैसा लगा? उसने कहा—मैं तो समझ ही नहीं सका। लोगों ने एक स्त्री को खड़ा कर दिया। वह तो ऐसे अंगों को मरोड़ रही थी, मानो उसके शरीर में गहरी पीड़ा हो। यह रुचि की विचित्रता का द्योतक है।

राजा देखता रह गया

आगम साहित्य की एक कहानी है। एक बार जंगल में राजा भटक गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक भील ने राजा की काफी परिचर्या की। राजा को पानी पिलाया, खाना खिलाया, विश्रान्त राजा को पलंग पर सुलाया। राजा प्रसन्न हो गया। राजा ने कहा—कभी तुम मेरे राज्य की राजधानी में आना और मेरी सभा में आना। वह भील पूछता-पूछता एक दिन राजसभा में पहुंच गया। राजा ने सोचा—यह जंगल का उपकारी मनुष्य यहां आया है। मैं इसके लिए कुछ करूं। राजा ने उसके लिए नृत्य का आयोजन कर दिया। राजा ने सोचा—इसका मनोरंजन हो जाएगा। बेचारे ने कभी राजधानी नहीं देखी, कभी नृत्य नहीं देखा, यह सब देखकर खुश हो जाएगा। मनोरंजन की सारी व्यवस्था कर दी गई।

नर्तकी का नृत्य शुरू हुआ। वह भील दस-बीस मिनट तक देखता रहा और फिर बीच में ही उठ गया। उसके पास लोहे का एक चिमटा था। वह उसको गरम कर वापस राजसभा में आया। वह सीधा नाचती हुई नर्तकी के पास पहुंचा और उसके शरीर पर चिमटा दाग दिया। नर्तकी चिल्लाई। सभा में सन्नाटा छा गया। यह क्या हुआ? राजा भी देखता रह गया। राजा ने उस भील को बुलाकर पूछा—'अरे! तुमने यह क्या किया?'

भील ने उत्तर दिया—'महाराज ! मुझे ऐसा लगता है कि आपके राज्य में कोई चिकित्सक ही नहीं है। बेचारी शरीर को मरोड़ रही थी, पीड़ा भोग रही थी। मैंने देखा—दागने के सिवाय इसका कोई दूसरा इलाज नहीं है। इसको धनुष-टंकार की बीमारी हो गई है। यह बीमारी बिना दागने के मिटती नहीं है। मैंने अब इसका इलाज कर दिया है। आप देखिये—अब यह बिल्कुल शांत होकर बैठ गई है।

राजा के आकर्षण और भील की रुचि की भिन्नता का यह एक निदर्शन है।

समान नहीं है रुचि

आकर्षण, रुचि और ध्यान—सब में समान नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति में एक रुचि है, ध्यान की वृत्ति है किन्तु हमें बदलना है रुचि को, आकर्षण की दिशा को। वह बदलेगी तो ध्यान की दिशा बदलेगी। जिस व्यक्ति ने ध्यान करके देखा, उसका अनुभव यह है कि ध्यान किया, दो मिनट नहीं हुए, उससे पूर्व ही दूसरी बात याद आ गई। मन की एकाग्रता टिकती नहीं है। प्रश्न होता है—हम आत्मा का ध्यान करते हैं, माला जपते हैं, उस समय ऐसी बातें क्यों याद आती हैं जो कभी याद नहीं आतीं? केवल उसी समय वे बातें याद आने लग जाती हैं। व्यक्ति को बड़ा अटपटा-सा लगता है। वह सोचता है ऐसा नहीं होना चाहिए। मैं सोचता हूं—ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए? जब आपके भीतर रुचि वही है, आकर्षण वही है तो ध्यान में भी वही बात याद आएगी, दूसरी कौनसी बात याद आएगी? जिस ओर रुचि है, आकर्षण है, उसी ओर ध्यान जाएगा। एकदम आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसको बदलना चाहते हैं, यह कैसे संभव है? आकर्षण है व्यापार में, पैसा कमाने में, मनोरंजन में, टी.वी. और सिनेमा देखने में, आकर्षण है राग और द्वेष में।

सबसे पहले रुचि की ओर ध्यान दें। आकर्षण की दिशा को पकड़ें—मेरा आकर्षण कहां है? बाहर है या भीतर? अगर बाहर आकर्षण है तो इसका मतलब है—आकर्षण पदार्थ के प्रति है। इसलिए आपका ध्यान बार-बार पदार्थ की ओर जाएगा। यदि आकर्षण भीतर है, अपनी चेतना के प्रति है, आत्मा के प्रति है तो ध्यान आत्मा के प्रति जाएगा। प्रश्न है रुचि और आकर्षण का। जब तक रुचि नहीं बदलेगी, आकर्षण नहीं बदलेगा, जो कारक तत्त्व है, उसमें परिवर्तन नहीं होगा तब तक ध्यान की दिशा में परिवर्तन नहीं हो सकता। दिशा का परिवर्तन तब होगा जब रुचि का परिष्कार होगा।

सम्यग् दर्शन

रुचि-परिष्कार का प्रधान तत्त्व है—सम्यग्, दर्शन, दृष्टिकोण का परिष्कार। जब तक दर्शन सही नहीं होता तब तक रुचि का परिष्कार संभव नहीं होता। रुचि-परिष्कार के बिना ध्यान की दिशा का बदलना संभव नहीं है। भगवान महावीर ने आचार को पहला स्थान नहीं दिया, पहला स्थान दिया सम्यक् दर्शन को। आचार उसका परिणाम है। सम्यक् दर्शन है तो आचार अपने आप सम्यग् हो जाएगा। यदि सम्यक् दर्शन नहीं है तो चाहते हुए भी व्यक्ति सम्यक् आचार नहीं कर पाता किन्तु वह आचार करते-करते अतिचार कर लेगा। दर्शन ही सम्यग् नहीं है तो आचार सही कैसे होगा? सबसे पहले दर्शन सम्यग् होना चाहिए। ध्यान क्यों करें? ध्यान करने का उद्देश्य क्या है? ध्यान के साथ हमारा दृष्टिकोण क्या बने? यह दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए।

इस दुनिया में मूल पदार्थ दो हैं—चेतन और अचेतन, जीव और अजीव। ये दो हैं तो फिर प्रश्न होगा—मैं क्या हूं। इसका निर्णय करना होगा। मैं जड़ नहीं हूं, मैं चेतन हूं। मैं अजीव नहीं हूं, मैं जीव हूं, आत्मा हूं। यह आस्था या विश्वास अटल हो तो फिर आगे गति होगी। अगर यह आस्था नहीं है तो न रुचि का परिष्कार होगा, न सम्यग् दृष्टिकोण होगा और न ध्यान की दिशा बदलेगी।

प्रेक्षा : आधारभूत तत्त्व

प्रेक्षाध्यान का आधारभूत तत्त्व है आत्मा। जहां आत्मा में विश्वास नहीं है, वहां 'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें', का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मा का साक्षात्कार है, यह दृढ़ आस्था बनेगी तो प्रेक्षा की बात प्राप्त होगी। बहुत सारी ध्यान की पद्धतियां मन के आधार पर चलती हैं। श्रमण परम्परा का एक सम्प्रदाय है—बौद्ध दर्शन। उसमें ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की पद्धति विकसित हुई पर उसका आधार आत्मा नहीं रहा। क्योंकि बौद्ध दर्शन में मन पर ही सारा बल है। आत्मा मूल तत्त्व के रूप में स्वीकृत नहीं है। बुद्ध ने आत्मा को सीधी स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने कहा–दुःख है, दुःख का हेतु है। दुःख मुक्ति हो सकती है, दुःख मुक्ति का हेतु है। इस आर्य-चतुष्टयी पर बल दिया। बुद्ध ने कहा–तुम आत्मा की बात को छोड़ दो, वह बहुत गूढ़ बात है। आत्मा अव्याकृत है। उसका व्याकरण नहीं किया जा सकता।

महावीर ने आचार का प्रतिपादन किया तो सबसे पहले बतलाया–'मैं कौन हूं?' 'कहां से आया हूं?' 'मैं आत्मा हूं' इस आधार पर सारे आचारशास्त्र का या ध्यान का विधान किया गया। यह मौलिक आधार का महत्त्वपूर्ण अन्तर है–एक ध्यान की पद्धति चलती है आत्म दर्शन के आधार पर और एक ध्यान की पद्धति चलती है केवल मन के आधार पर। मैं मानता हूं–मन के आधार पर ध्यान होता है। मन की एकाग्रता की बात भी हम करते हैं किन्तु वास्तव में जब तक हम मन से परे न चले जायें तब तक ध्यान की सिद्धि नहीं होती। हमें मन की समस्याओं में उलझे नहीं रहना है किन्तु ध्यान करते-करते मन से परे जाना है, मनोतीत बनना है, विकल्पातीत और निर्विकल्प भूमिका में जाना है।

गंतव्य है निर्विकल्प चेतना

मन की भूमिका विचार की भूमिका है। जब तक हम निर्विचार की भूमिका में नहीं जाएंगे, निर्विकल्प नहीं बनेंगे तब तक पूरा मार्ग सही नहीं होगा। विकल्प का सहारा लेना पड़ता है। इस संदर्भ में उपाध्याय यशोविजयजी ने बहुत सुन्दर लिखा–**विकल्परूपा मायेयं विकल्पेनैव नश्यति**–यह सारा मायाजाल विकल्परूप है। विकल्प को विकल्प से ही काटना होगा। **'विषस्य विषमौषधम्'**–यह चिकित्सा का सिद्धांत है। विकल्प को विकल्प से काटना प्रारम्भिक अवस्था है। जब हमारा बोध परिपक्व बन जब जाए तब विकल्प की भूमिका का अतिक्रमण कर देना है, निर्विकल्प ध्यान की अवस्था में जाना है। यद्यपि इस विषय पर भी दार्शनिक मतभेद रहा है। कुछ दर्शन ऐसे हैं, जो विकल्प को प्रमाण मानते हैं। कुछ दर्शन ऐसे हैं, जो विकल्प को प्रमाण नहीं मानते, निर्विकल्प को ही प्रमाण मानते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष उसी अवस्था में होता है। निर्विकल्प अवस्था में चेतना का जागरण होता है। जब तक हम इन्द्रिय चेतना की भूमिका पर रहेंगे तब तक निर्विकल्प चेतना नहीं जागेगी, अतीन्द्रिय पदार्थों का साक्षात्कार नहीं होगा। निर्विकल्प चेतना तक जाने का अर्थ है–मन से परे जाना, मन की समस्याओं में उलझे हुए नहीं रहना और मन का खेल नहीं खेलना। प्रारम्भ में मन के साथ भी ध्यान करना होता है, एकाग्रता की साधना भी करनी होती है। एकाग्रता आवश्यक भी है किन्तु एकाग्रता हमारा अन्तिम लक्ष्य नहीं है। वह भी एक मध्यवर्ती पड़ाव है। अनेकाग्रता और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकाग्रता–ये दोनों मन की भूमिकाएं हैं। जहां ये दोनों समाप्त हो जाती हैं, मन रहता नहीं है, विचार समाप्त हो जाते हैं और केवल चेतना ही जहां काम करती है, वह हमारा गंतव्य है। जहां केवल चेतना है वहां मन नहीं है। मन का कार्य वहीं होता है जहां चेतना का विकास कम है।

सातवीं भूमिका

हम एकेन्द्रिय–एक इन्द्रिय वाले जीवों को जानते हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रिय वाले जीवों को जानते हैं। उससे आगे संज्ञी–समनस्क–मानसिक विकास की भूमिका को जानते हैं। इन छह भूमिकाओं के विकास के क्रम से हम परिचित हैं किन्तु सातवीं भूमिका से हम परिचित नहीं हैं, जहां अमनस्क स्थिति आ जाती है, मन समाप्त हो जाता है। ध्यान की उस भूमिका का नाम है–अमनस्क भूमिका। वहां मन नहीं है, केवल चेतना काम करती है। इन भूमिकाओं को पार करने के लिए सबसे पहले आवश्यक है–सम्यक् दर्शन। हमारा दृष्टिकोण यह बने–मैं आत्मा हूं, मुझे अपने स्वरूप का साक्षात्कार करना है। यह आस्था बनेगी तो रुचि में परिवर्तन आएगा। इस स्थिति में रुचि केवल पदार्थ के प्रति नहीं होगी, आकर्षण केवल धन के प्रति नहीं होगा। एक नई रुचि पैदा होगी, आत्मा की रुचि पैदा होगी, आत्म-साक्षात्कार की रुचि पैदा होगी।

अमृतत्त्व की भावना

उपनिषदों में गार्गी और मैत्रेयी का प्रसंग आता है। मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से कहा–जिससे मैं अमृत नहीं बनती, उसे लेकर क्या करूं? जो अमृतत्व का साधन हो, वही मुझे बताओ।

येनाहं नामृता स्यां, किं तेन कुर्याम्।
यदेव भगवान् वेद, तदेव मे ब्रूहि।।

यह अमृतत्व की भावना है–जहां न जन्म हो, न मृत्यु हो, वैसा बनना है। जिसमें यह रुचि पैदा हो गई, उसे धन भी निकम्मा लगता है। आज किसी पुरुष से कहा जाए–भाई! यह धन तुम्हें देता हूं। क्या वह धन को अस्वीकार करेगा? किसी महिला से कहा जाए–यह बहुमूल्य साड़ी ले लो। क्या वह कहेगी कि मुझे बहुमूल्य साड़ी नहीं चाहिए? किन्तु जिसमें अमृतत्व की रुचि जाग गई, उसके लिए धन, आभूषण और साड़ियां–सब मूल्यहीन बन जाते हैं। उसका ध्यान दूसरी दिशा में लग जाता है। उसे ये सब चीजें बहुत सामान्य लगने लग जाती हैं। जिस व्यक्ति की रुचि पदार्थ परक है, वह केवल पदार्थ की दृष्टि से देखता है। उसका सारा ध्यान उसी ओर जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकर्षण पैसे का

एक आदमी बड़ा लोभी था। केवल पैसा ही उसके लिए सब कुछ था। किसी ने सूचना दी–'आग लग गई।'

उसने पूछा–'कहां लगी है आग।'

'अरे ! तुम्हारा मकान जल रहा है, जल्दी जाओ।'

'कोई चिन्ता की बात नहीं है।'

'तुम्हारा मकान जल जाएगा, रक्षा करो।'

'मकान का बीमा किया हुआ है, कोई चिंता की बात नहीं है।'

'पर भीतर तुम्हारी पत्नी है। उसकी तो रक्षा करो।'

'कोई चिन्ता नहीं है, उसका भी बीमा किया हुआ है।'

जब सारी रुचि पैसे के प्रति हो जाती है तब न कोई मकान की चिन्ता होती है और न पत्नी की चिन्ता सताती है। केवल पैसे की चिन्ता सताती है।

बहुत सारे परिवारों में झगड़े चलते हैं। पिता-पुत्र में, भाई-भाई में और पति-पत्नी में वैमनस्य हो जाता है। कोर्ट में मुकदमे चलते हैं। एक कारण बनता है धन-संपत्ति का बंटवारा। अमुक ने इतना कम दिया, अमुक ने इतना ज्यादा ले लिया, इस बात को लेकर इतना तनाव हो जाता है कि एक-दूसरे से आंखें भी नहीं मिला पाते। पैसे के आकर्षण में उलझा आदमी यह नहीं सोचता कि यह मेरा बड़ा भाई है। क्या फर्क पड़ा, यदि इसने दस-बीस हजार ज्यादा ले लिए। रुपये इधर रहे या उधर रह गए, एक ही तो बात है। यह प्रश्न ही नहीं आता। सम्बन्ध गौण हो जाते हैं, पैसा मुख्य बन जाता है। इसका हेतु है आकर्षण। जिसके प्रति सबसे ज्यादा आकर्षण हो गया, वही काम्य रहेगा, शेष अकाम्य बन जाएगा।

विश्लेषण करें रुचि का

ध्यान करने वालों को सबसे पहले अपनी रुचि का विश्लेषण करना चाहिए, अपने दर्शन का विश्लेषण करना चाहिए। मेरा दृष्टिकोण क्या है? दर्शन क्या है? आकर्षण का केन्द्र क्या है? जब तक इसका विश्लेषण नहीं करेंगे, ध्यान की बहुत सार्थकता नहीं होगी। ध्यान की सार्थकता तभी संभव है जब अपने दर्शन का, रुचि अथवा आकर्षण का यथार्थ विश्लेषण किया जाए। जो लोग ध्यान करने आते हैं, उन्हें दस-बीस मिनट एकांत में, अकेले में आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। उन क्षणों में अपने दर्शन का और अपनी रुचि का विश्लेषण करना चाहिए। आकर्षण का केन्द्र पदार्थ है और प्रेक्षा का ध्यान करने आए हैं तो आत्मा को देखने में सफलता नहीं मिलेगी, बार-बार वही पदार्थ दिखेगा। देखना चाहेंगे आत्मा को और दिखेगा पदार्थ। आकर्षण में बदलाव के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबसे पहले यह चिंतन करना चाहिए–धन और पदार्थ, संयोग और सम्बन्ध–ये सारे उपयोगी हैं किन्तु हमारे आकर्षण के केन्द्र नहीं बन सकते। मैं चेतनावान् हूं तो धन या पदार्थ मेरे आकर्षण का केन्द्र कैसे हो सकता है? मैंने भ्रांतिवश उसे आकर्षण का केन्द्र मान रखा है। वह मेरे लिए सहयोगी हो सकता है, उपयोगी हो सकता है, पर आकर्षण का केन्द्र नहीं हो सकता।

एक आदमी कमजोर है, बूढ़ा है, वह लाठी लेकर चलता है। लाठी सहायक हो सकती है किन्तु आकर्षण का केन्द्र नहीं। लाठी खराब हो गई तो उसकी चिकित्सा करने की जरूरत नहीं है। एक खराब हो गई तो दूसरी आ जाएगी। यदि वह भी टूट गई तो फिर नई आ जाएगी। ध्यान कहां रहता है? आकर्षण का विषय बनता है कि पैर कैसे ठीक हों? पैर में ताकत कैसे आए? अपने पैरों के बल पर चल सकें, इसलिए व्यक्ति पैरों की चिकित्सा करता है, दवा लेता है और उसे ठीक करना चाहता है। पहला स्थान है पैर का। लाठी का पहला स्थान कभी नहीं हो सकता। उसका स्थान गौण रहेगा। जहां सहारे की जरूरत होगी वहां उसका उपयोग होगा। पदार्थ एक बूढ़े की लाठी है। जहां जरूरत होगी वहां उसका उपयोग किया जा सकता है किन्तु वह हमारे आकर्षण का केन्द्र नहीं बन सकता। हमने भ्रमवश उसको आकर्षण का केन्द्र मान लिया है, प्रथम स्थान दे दिया है।

दृष्टिकोण सही बने

आजकल प्रशासन के क्षेत्र में यह होता है कि प्रमोशन किसी का होना होता है और प्रमोशन किसी का कर दिया जाता है। जो जूनियर था, उसका प्रमोशन कर दिया गया और जो सीनियर था, वह बेचारा ऐसा ही रह गया। ये गड़बड़ियां बहुत चलती हैं प्रशासन के क्षेत्र में। ऐसा लगता है कि हमने भी महत्त्व किसी को देना था और महत्त्व किसी दूसरे को दे दिया। गलत स्थान पर किसी गलत व्यक्ति को बिठा दिया। महत्त्व देना था चेतना को और महत्त्व दे दिया पदार्थ को। हमारा दृष्टिकोण मिथ्या बन गया और इस मिथ्या दृष्टिकोण से हमारी रुचियां भी मिथ्या बन गईं, गलत बन गईं। जब रुचि गलत बन गई तब ध्यान का विषय सही कैसे होगा? इस स्थिति में व्यक्ति ध्यान की बात सोचे तो उसे पहले अपने दर्शन और रुचि का विश्लेषण करना होगा, फिर रुचि का परिवर्तन करना होगा। उसके बाद आत्मा की प्रेक्षा करने की बात आएगी और तभी ध्यान सार्थक होगा।

अनेक व्यक्ति यह शिकायत करते हैं–ध्यान करते-करते दस वर्ष हो गए पर अभी कुछ मिला नहीं। मैं उनसे पूछता हूं–यह बताओ, रुचि बदली या नहीं? उत्तर मिलता है–रुचि तो नहीं बदली। मैं उनसे कहता हूं–फिर दस पर एक शून्य और लगा दो। पूरा शतक बीत जाएगा तो भी तुम्हारी शिकायत बराबर बनी रहेगी कि मुझे कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिला नहीं। तुम्हें तभी कुछ मिलेगा जब सबसे पहले इन भूमिकाओं को पार करो, दर्शन और रुचि का विश्लेषण करो।

ऐसा लगता है—आज ध्यान को व्यवसाय बना दिया—आओ और सीधे ध्यान में बैठ जाओ। यह व्यवसाय की बात बहुत सार्थक नहीं है इसीलिए ध्यान आज भय का एक हेतु बन गया है। समण रूस और स्वीट्जरलैण्ड गये। एक विद्यालय में प्रेक्षाध्यान के प्रयोग की बात चली। लोग बहुत घबराए। वे इस बात से घबराए—भाई ! बहुत बड़ी फीस देनी होगी। भय का दूसरा कारण यह था—ध्यान तो आज का पाखण्ड है। हम पाखण्ड को पोषण देना नहीं चाहते। जब उनको समझाया गया तब उन्होंने प्रयोग किए। प्रयोग करने के बाद इतना आकर्षण बढ़ा, यह मांग हो गई—एक मास तक हमें प्रयोग कराएं।

चेतना आत्मलक्षी बने

जो भी ध्यान करने आते हैं, उन्हें सबसे पहले ध्यान के दर्शन को आत्मसात् करना है। उन्हें संकल्प करना है कि जो चेतना आज तक पदार्थ-लक्षी रही है, उसे आत्म-लक्षी बनाना है। इतनी बात स्पष्ट हो जाए तो ध्यान सही दिशा में आगे बढ़ेगा, विकल्प अपने आप कम होने लग जाएंगे। पदार्थ-लक्षी विचार पदार्थ की दिशा में चलते हैं, पदार्थ-लक्षी चेतना की दिशा में जाते हैं। चेतना आत्म-लक्षी हो गई, पदार्थ-लक्षी विचार आने में अपने आप संकोच करेंगे, वे भीतर नहीं आएंगे। यह दिशा का परिवर्तन बहुत आवश्यक है। आप यह लक्ष्य लेकर ध्यान में बैठेंगे—मुझे आत्मा का साक्षात्कार करना है, चित्त को निर्मल बनाना है तो आपका ध्यान एक दूसरे प्रकार का होगा। यदि केवल इस बात को लेकर ही ध्यान करेंगे—पैरों का दर्द ठीक हो जाए, बीमारी मिट जाए तो दृष्टिकोण पदार्थपरक ही रहेगा, अगर दृष्टिकोण देहपरक रहा तो हम शरीर की चिंता से आगे कभी नहीं बढ़ पाएंगे।

स्कूल का समय हुआ। मां ने बेटे से कहा—जाओ, स्कूल जाओ।
बच्चे ने कहा—'मैं तो नहीं जाता।'
'क्या तुम्हारे पास पुस्तकें और पेंसिल नहीं है?'
है !'
'क्या तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है?'
'स्वास्थ्य भी ठीक है।'
'अरे ! जब तुम्हारे पास सब कुछ है फिर क्यों नहीं जाते?'
'मम्मी ! मैं जाना ही नहीं चाहता।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न पेंसिल है, न कॉपी है, न पुस्तकें है, तो स्कूल में जाने का अर्थ क्या होगा? ये सब कुछ हैं और इच्छा नहीं है तो भी स्कूल जाने का क्या अर्थ होगा? न आत्मा के प्रति रुचि है, न आकर्षण का केन्द्र बदला है तो फिर ध्यान की स्कूल में जाने का अर्थ ही क्या होगा?

हम ध्यान करने में अपना मूल्यवान समय लगाएं, उससे पहले यह अवश्य सोचें। आज का आदमी इतना व्यस्त है कि उसे मरने की भी फुर्सत नहीं है। एक बार मौत भी आए तो वह कहेगा–'दो घण्टा ठहर जाओ। दो नम्बर के खातों की ठीक व्यवस्था कर देता हूं, जिससे पीछे वालों को कठिनाई न हो।' इतना व्यस्त आदमी ध्यान में समय लगाये तो उसका उपयोग ठीक होना चाहिए। वह तभी सम्भव है जब हम इन सारे पहलुओं को समझकर ध्यान में प्रवेश करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान कोई जादू नहीं है

मनुष्य की चिर आकांक्षा है--मस्तिष्क बदल, चिन्तन बदल, व्यक्तित्व बदल। उसके लिए ध्यान बहुत उपयोगी है, किन्तु ध्यान कोई जादू का डंडा नहीं है, जिसे सिर पर घुमा दो और एक क्षण में सब कुछ बदल जाए। कभी नहीं होता। प्रत्येक परिवर्तन के पीछे दीर्घकालीन साधना होती है। दुनिया में जो भी परिवर्तन होता है, वह दीर्घकालीन साधना के बाद होता है। यदि अल्पकाल में कुछ परिवर्तन हो भी जाता है तो टिकाऊ नहीं होता अथवा जैसा होना चाहिए वैसा सुन्दर और रमणीय नहीं होता। वही वस्तु स्थाई, रमणीय और आकर्षक होती है, जिसके पीछे साधना बोलती है।

संदर्भ शिक्षा का

शिक्षा का संदर्भ लें। छात्र ने आज विद्यालय में प्रवेश पाया और आज ही वह उत्तीर्ण हो गया, क्या यह संभव है? ऐसा कभी नहीं होता। एक व्यक्ति को प्रथम कक्षा से एम.ए. तक पहुचने में कितने वर्ष लगते हैं? उसके लिए कितना बड़ा पाठ्यक्रम होता है, कितना व्यय होता है। दस-बारह वर्ष लगते हैं तब वह व्यक्ति स्नातकोत्तर परीक्षा में उत्तीर्ण होता है। यदि विशेषज्ञ बनना है, पी.एच.डी. करना है तो एम.ए. के बाद भी अनेक वर्ष लग जाते हैं। एक व्यक्ति को अपने बौद्धिक विकास के लिए, उच्च शिक्षा पाने के लिए सोलह वर्ष, बीस अथवा पचीस वर्ष तक लगाने पड़ते हैं। बौद्धिक विकास के लिए पचीस वर्ष लगाने में भी व्यक्ति को ऐसा नहीं लगता कि बहुत लम्बा समय हो गया है। किन्तु ध्यान के लिए पांच वर्ष का समय भी लगाना पड़ता है, तो ऐसा लगता है--इतना लम्बा समय हो गया है, अभी कुछ मिला ही नहीं।

व्यक्ति नहीं सोचता--आज ही साधना के क्षेत्र में प्रवेश किया है, पहला शिविर पूरा नहीं हुआ है, उससे पहले ही कुछ मिलने की बात कैसे संभव है? क्या ध्यान कोई जादू है? लोग कहते हैं--ध्यान शिविर में आए, अभी तो कुछ बदला ही नहीं। वे यह नहीं सोचते--यह कैसे संभव है कि आज ही पहली कक्षा में प्रवेश पाया और आज ही बदल जाएगा, स्नातकोत्तर में चला जाएगा? प्रथम कक्षा के विद्यार्थी को कभी एम.ए. का कोर्स नहीं पढ़ाया जाता। प्रथम कक्षा के ध्यानार्थी को भी निर्विकल्प समाधि की साधना नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कराई जाती। एक चरण के बाद दूसरा चरण रखना होता है, क्रमिक विकास करना होता है। जैसे-जैसे चरण आगे बढ़ते हैं, साधना आगे बढ़ती है, व्यक्तित्व का बदला हुआ रूप हमारे सामने आने लगता है।

हम इस सचाई को मानकर चलें—ध्यान के द्वारा व्यक्तित्व में परिवर्तन होता है किन्तु यदि जादुई डंडे की कल्पना से चलेंगे तो भ्रांति और निराशा बढ़ जाएगी। यह विकल्प उभरेगा—तीन वर्ष ध्यान किया, कुछ भी नहीं मिला, इसे छोड़ देना चाहिए। व्यवहार के क्षेत्र में आदमी निराश नहीं होता। अध्यात्म का ऐसा सूक्ष्म जगत है कि निराशा जल्दी आती है। लौकिक विद्या के अध्ययन में व्यक्ति कभी अनुत्तीर्ण हो जाता है तो पुनः परीक्षा देता है अथवा पूरक परीक्षा देता है, किन्तु निराश नहीं होता। धर्म के क्षेत्र में थोड़ी-सी असफलता मिलती है तो वह उसे छोड़ने की बात सोच लेता है। इसका कारण यही लगता है कि स्थूल जगत को आदमी शीघ्र पकड़ता है, सूक्ष्म जगत को नहीं। उसे जानने में कठिनाई होती है। ध्यान के द्वारा परिवर्तन होता है किन्तु दीर्घकालीन साधना के बाद होता है। यदि साधना लम्बे समय तक चले, निरतंर चले तो परिवर्तन निश्चित आयेगा। ध्यान की निष्पत्तिं असंदिग्ध है, इसमें संदेह करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो नियम होता है, वह अपने ढंग से काम करता है। हम नियम को जल्दी खींचकर लाना चाहें, यह संभव नहीं है। कहीं-कहीं अपवाद हो सकता है किन्तु सामान्य नियम यह है—दीर्घकालीन साधना ही सिद्धि की जननी है।

ध्यान और मन की शान्ति

ध्यान समग्र व्यक्तित्व के विकास का उपक्रम है। एक सामाजिक प्राणी का जीवन केवल कर्म से नहीं चलता। उसे रोटी की जरूरत है तो वह कृषि करता है, व्यापार करता है, किन्तु एक सामाजिक प्राणी का जीवन पैसे से अच्छा नहीं बनँता। जीवन चलाना और जीवन अच्छा बनाना—दोनों बातें हो तो समग्र जीवन बनता है। धन से सुविधाएं मिल सकती हैं पर मन की शांति नहीं। साधना के द्वारा मन की शांति मिलती है पर धन नहीं। एक सामाजिक व्यक्ति को दोनों की जरूरत होती है। धन की जरूरत है सुविधा पाने के लिए, जीवन यात्रा को चलाने के लिए और धर्म की जरूरत है मन की शांति के लिए। वह जीवन अनुकरणीय होता है, जिसके पास जीवन चलाने के साधन भी हैं और मन की शांति भी है। आज का व्यक्ति टूटा हुआ-सा लगता है। कहीं धन बहुत है, मन की शांति नहीं है और कहीं मन की शांति है तो सुविधा के पर्याप्त साधन नहीं हैं। वह समाज स्वस्थ समाज माना जाता है, जहां जीवन चलाने के साधनों का अभाव भी न हो, धन का प्रभाव भी न हो, मन की अशांति भी न हो। दोनों का संतुलन होना चाहिए—आदमी जीवन की समस्या में भी उलझा न रहे और मन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांति के अभाव में मरने की बात भी न सोचता रहे। सुविधा के साधन और मन की शांति–दोनों आवश्यक हैं, किन्तु सुविधा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है मन की शांति। बहुत बार मन की शांति के अभाव में आदमी जीवन को भी दांव पर लगा देता है।

जिन्दगी दांव पर न लगाएं

एक गांव में मल्ल-कुश्ती का आयोजन था। एक ओर बहुत पुराना मल्ल था, दूसरी ओर बहुत हट्टा-कट्टा नौजवान मल्ल था। पुराना मल्ल बूढ़ा हो चला था। गांव के लोगों ने कहा–आज तो बड़ी समस्या है। जो दूसरे गांव से मल्ल आया है, वह नौजवान है और तुम बूढ़े हो गये हो। कहीं ऐसा न हो कि गांव की बदनामी हो जाये, तुम हार जाओ। मल्ल बोला–तुम चिंता मत करो, मैं सब दांव जानता हूं। गांव के लोग आश्वस्त हो गये। कुश्ती के समय से पूर्व वृद्ध मल्ल नौजवान मल्ल के पास गया, उसके कान में मृदु स्वर में बोला–देखो, कुश्ती में जो जीतता है, उसे पचास रुपया मिलता है। जो हारता है, उसे कुछ भी नहीं मिलता। तुम अभी नौजवान हो, नए-नए कुश्ती में उतरे हो, तुम्हारी आजीविका का स्रोत यही है। मैं तो पुराना हो गया हूं, मैंने बहुत कमा लिया है। मुझे पचास रुपये नहीं मिलेंगे तो कोई बात नहीं है, किन्तु तुम्हारे पचास से क्या होगा? यदि तुम मुझे जिता दो तो मैं तुम्हें पांच सौ रुपये दूंगा। नौजवान मल्ल ने सोचा–यह तो अच्छा प्रस्ताव है। जीत जाऊंगा तो पचास मिलेगा और इसको जिता दूंगा तो पांच सौ रुपये मिलेंगे। शर्त तय हो गई। नौजवान मल्ल ने उसे जिताने का वादा कर लिया। कुश्ती शुरू हुई। थोड़ी देर तक नौजवान मल्ल लड़ा, कुछ दांव-पेंच खेले और फिर उसने जानबूझकर ऐसे दांव खेले कि वृद्ध मल्ल जीत गया। कुश्ती की प्रतियोगिता समाप्त हो गई। चारों ओर गांव की वाह-वाही हो गई। दूसरे गांव से आने वाले निराश हो गए। संध्या का समय। जवान मल्ल पुराने मल्ल के पास गया, बोला–लाओ, पांच सौ रुपये। वृद्ध मल्ल ने कहा–कौन-से पांच सौ रुपये? नौजवान मल्ल यह सुनकर विचलित हो उठा। उसने कहा–अरे! तुमने ही शर्त रखी थी कि यदि मुझे जिता दो तो तुम्हें पांच सौ रुपये दूंगा।

वृद्ध मल्ल ने मुस्कुराते हुए कहा–'तुम मल्ल बने, इतना भी नहीं जानते कि मल्ल-कुश्ती में बहुत सारे दांव-पेंच होते हैं। वह प्रस्ताव भी मेरा एक दांव ही था।'

नौजवान मल्ल यह सुनकर अवाक् रह गया।

यह जिन्दगी दांव-पेंच की जिन्दगी है। प्रत्येक व्यक्ति दांव और पेंच से घिरा है, मल्ल-कुश्ती खेल रहा है। यदि दांव के साथ जिन्दगी चले, तो क्या मिलेगा? मनुष्य अपने जीवन को भी सुविधा पाने के लिए, केवल धन पाने के लिए, पदार्थ पाने के लिए दांव पर लगा दे तो पांच सौ भी नहीं मिलेंगे। यह विवेक जरूरी है कि शांति के मूल्य पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुविधा को एकाधिकार न दें। इसका सम्यक् अंकन करें–मूल्य सुविधा का ज्यादा है या शांति का? यदि शांत मन से व्यक्ति सोचेगा तो पता चलेगा–सुविधा का जीवन में मूल्य है, किन्तु शांति को बेचकर सुविधा का कोई मूल्य नहीं है। एकांगी दृष्टि से यह न सोचें–भाई ! धन ही सब कुछ है, सत्ता और अधिकार ही सब कुछ है, धर्म और ध्यान कुछ नहीं है, कोरी बकवास है। एकांगी दृष्टि से सोचने वाले धर्म के लोग भी ऐसा कहते हैं–बस सारा जीवन धर्म में लगा दो, और कुछ मत करो। यथार्थ यह है–केवल धर्म से जीवन नहीं चलेगा और केवल धन से मन को शांति नहीं मिलेगी। दोनों का संतुलन और सामंजस्य होता है तभी जीवन अच्छा लगता है।

समग्र व्यक्तित्व की भाषा

हम अनेकांत के इस निष्कर्ष को स्वीकार करें–एक सामाजिक प्राणी कभी भीख मांगकर अपना जीवन नहीं चला सकता और एक सामाजिक प्राणी अशांति में झुलस-झुलस कर अपने जीवन को व्यर्थ नहीं गंवा सकता। यदि धन-सुविधा और मन की शांति–दोनों में सामंजस्य होता है तो एक समग्र व्यक्तित्व बनता है। ध्यान की शिक्षा के द्वारा ऐसे समग्र व्यक्तित्व का विकास होता है, जिसमें सुविधा के साथ-साथ मन की शांति का अटूट संबंध हो। यह ध्यान की एक उपलब्धि है। मैंने देखा–जिन लोगों के जीवन में ध्यान उतरा है, वे बड़े प्रसन्न रहते हैं, तनावमुक्त रहते हैं, तनाव की स्थिति होने पर भी तनाव में नहीं जाते। यह एक भ्रांति है कि तनाव की स्थिति में तनाव न आए, यह सम्भव नहीं है। वस्तुतः ध्यान के द्वारा जीवन की वह कला सीखी जा सकती है कि व्यक्ति काम करे, किन्तु तनाव न आए। वह खाए किन्तु खाने के साथ तनाव पैदा न हो। खाना भी तनाव का बहुत बड़ा कारण बनता है। भोजन में नमक थोड़ा ज्यादा हो गया, तनाव आ गया। नमक नहीं डाला गया तो तनाव आ गया। रसोई बनाने वालों को न जाने इन सबके लिए कितना सुनना पड़ता होगा। मनुष्य खाते समय शायद ज्यादा परेशान होते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि मन के अनुकूल खाना नहीं मिलता है तो थाली के ठोकर लग जाती है और लड़ाई-कलह भी हो जाती है। रसोई घर केवल पेट भरने का ही नहीं, कलह का भी छोटा-मोटा घर है। जैसे रसोई भोजन का आलय है, वैसे ही उसे कलह का आलय भी कहा जाए तो शायद अत्युक्ति नहीं होगी। ध्यान के द्वारा इस स्थिति का निर्माण हो सकता है कि खाना तनाव का हेतु न बने। व्यक्ति बात करे किन्तु तनाव का हेतु न बने। समस्या यह है–मन के अनुकूल बात होती है तो भी तनाव आता है और मन के प्रतिकूल बात होती है तो भी तनाव आता है। स्वास्थ्य के लिए जरूरी है कि बात में निहित सचाई को जान सकें, तनाव न आये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन प्रकार के व्यक्ति

प्रश्न है—इस चेतना का निर्माण कैसे हो सकता है? क्या ऐसी चेतना का निर्माण संभव है? इस समस्या पर विचार करें तो व्यक्तियों को तीन वर्गों में विभक्त करना होगा। एक प्रकार के वे लोग हैं, जो अपने व्यक्तिगत अहं का पोषण करते हैं। दूसरे प्रकार के वे लोग हैं, जो व्यक्तिगत अहं को सामाजिकता और संगठन में विलीन कर देते हैं। तीसरे प्रकार के वे लोग हैं जो अपने व्यक्तिगत अहं को आत्मा या परमात्मा में विलीन कर देते हैं। पहले वर्ग के व्यक्ति केवल व्यक्तिगत अहं का पोषण करते हैं। वे स्वार्थी आदमी होते हैं। ऐसे स्वार्थी लोगों की भीड़ आज के समाज में बहुत ज्यादा है। दूसरी कोटि के वे लोग हैं, जो अपने व्यक्तिगत अहं को सामाजिक विकास या संगठन में विलीन कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति नेतृत्व करने के योग्य बनते हैं। वास्तव में ऐसे लोगों का नेतृत्व होना चाहिए, जिससे समाज का विकास हो, संगठन अच्छा चले, समस्याएं पैदा न हों। समाज और राजनीति के क्षेत्र में जो उलझनें आती हैं, उनका एक कारण यह है कि नेतृत्व उन हाथों में है, जिनका व्यक्तिगत अहं प्रखर है। जिन लोगों ने अपने अहं को समाज-विकास, राष्ट्र-विकास या संगठन में विलीन नहीं किया, उनके हाथों में जब समाज या राष्ट्र की बागडोर होती है, तब कलह और कदाग्रह के सिवाय और कुछ नहीं होता। जो अपने अहं को आत्मा या परमात्मा में विलीन कर देते हैं, वे आध्यात्मिक पुरुष या संत होते हैं। तीसरे कोटि के व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ होते हैं, किन्तु समाज के लिए दूसरी कोटी के लोगों का उपयोग अधिक है।

व्यक्तिगत अहं की चेतना कैसे सोए? व्यक्तिगत अहं को समाज विकास में लगाने की चेतना कैसे जागे? इसका साधन क्या है? साधन पर विचार करें। चेतना-परिवर्तन और व्यवहार-परिवर्तन—दोनों का साधन है मस्तिष्कीय प्रशिक्षण। मस्तिष्क का प्रशिक्षण हो और वह दीर्घकालीन हो तो ऐसी चेतना का जागरण संभव बन सकता है। इस संदर्भ में तेरापंथ के संगठन को उद्धृत किया जा सकता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विचारक जैनेन्द्र कुमार ने अपनी विदेश यात्रा के संस्मरण सुनाते हुए कहा—'आचार्यश्री ! मैं विश्व के अनेक देशों की यात्रा करके आया हूं। समाजिक और धार्मिक संगठनों को बहुत निकटता से देखा किन्तु जैसा संगठन तेरापंथ का है, वैसा संगठन कहीं देखने को नहीं मिला।'

यह है परम्परा का वैशिष्ट्य

पूज्य गुरुदेव गुजरात यात्रा के दौरान पालनपुर में प्रवास कर रहे थे। एक जैन सम्प्रदाय के आचार्य गुरुदेव से मिले। वार्तालाप के दौरान उन्होंने पूछा—'आचार्यजी! आपके शिष्य कितने हैं?' गुरुदेव ने कहा—'सात सौ से अधिक हैं।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'क्या आपके सात सौ से अधिक शिष्य हैं?'

'हां !'

'क्या आपको नींद आ जाती है?'

'मुझे तो बहुत अच्छी नींद आती है।'

आचार्यजी ने विस्मय से कहा—'बहुत अच्छी नींद आती है। मैं इसे नहीं मानता।

उन्होंने इस संदर्भ में काफी बातें की, किन्तु विश्वास नहीं हुआ। आचार्यजी सुबह फिर आए और वही प्रश्न पूछा—'आपको नींद आती है?'

गुरुदेव ने कहा—'आप यह प्रश्न क्यों कर रहे हैं?' उन्होंने कहा—'मेरे पांच-सात शिष्य हैं फिर भी नींद हराम हो जाती है और आपके सात सौ शिष्य हैं फिर आप मस्ती की नींद लेते हैं।' गुरुदेव ने कहा—'इसमें मेरा नहीं, मेरी परम्परा का वैशिष्ट्य है। मेरे पूर्वज आचार्यों ने ऐसा शिक्षण का क्रम बनाया, ऐसी शिक्षा दी और वह शिक्षा निरन्तर चल रही है इसलिए हमें कभी सोचना नहीं पड़ता। एक परम्परा बन गई, मानसिकता बन गई, शिष्य इतने प्रशिक्षित हो गए कि पांच सौ एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं, किन्तु आचार्य को कभी यह कहना नहीं पड़ता कि तुम वहां जाओ और यह काम करो। सारा काम विधिवत् और नियमबद्ध चलता है। सब अपने-अपने कार्यों के प्रति, दायित्वों के प्रति जागरूक रहते हैं।'

आचार्य ने कहा—'यह तो बड़ी विचित्र बात है। मैं आपका संविधान देखना चाहता हूं।'

गुरुदेव ने कहा—'आप उसे देखें। उसका आप अध्ययन करें। आचार्य भिक्षु ने साधु संस्था के लिए जो विधान बनाया और जयाचार्य ने जिस मनोवैज्ञानिक स्तर पर साधुओं और साध्वियों को प्रशिक्षित किया, प्रशिक्षण पाते-पाते आज दो सौ बरसों के बाद यह स्थिति बन गई है कि वह संविधान हृदयंगम हो गया है, प्राकृतिक और सहज बन गया है।

संविभाग का निदर्शन

एक उदाहरण है आहार का। पहले ऐसा होता था—भिक्षा में जो आहार लाते, जितना जरूरी होता, पहले साधु ले लेते, बचा हुआ साध्वियों को दे देते। प्रश्न उठा—यह क्यों? सबको बराबर हिस्सा मिलना चाहिए। साधु हो या साध्वी—आहार का संविभाग होना चाहिए। जयाचार्य ने नियम बना दिया—भिक्षा में जो भी आहार आयेगा, उसमें साधु-साध्वी दोनों का संविभाग होगा, प्राथमिकता किसी की नहीं होगी। वर्षों से परम्परा चल रही थी—भिक्षा में जो आए, उसमें से पहले साधु ले और शेष बचा साध्वियों को दे। यकायक इस परम्परा को बदलना कैसे मान्य होता? इस नियम को स्वीकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने में बहुत कठिनाई हुई। नियम बना दिया गया पर केवल नियम बनाने से काम नहीं होता। उस स्थिति में जयाचार्य ने प्रशिक्षण देने के लिए साहित्य रचा, गीतिकाएं बनाई। जब साधु आहार करने बैठते तब एक मुनि खड़ा होकर टहुका पढ़ता। उसमें जयाचार्य ने बताया है—जो संविभाग से आहार नहीं करता, वह कितना अपराध करता है। भगवान महावीर ने कहा है—**असंविभागी न हु तस्स मोक्खो**—असंविभागी होता है, उसे मोक्ष नहीं मिलता। जो संविभागी होता है, उसे मोक्ष की साधना सुलभ होती है। जो अपने विभाग में संतुष्ट रहता है, वह मुनि अगंज हो जाता है, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता। जो संविभाग में संतुष्ट नहीं होता और कहता है—मुझे यह दो, वह दो, वह अवहेलना का पात्र बनता है, अनेक दोषों का भागी बनता है। जयाचार्य ने इस प्रकार का मानसिक प्रशिक्षण गीतों द्वारा बार-बार दिया। पांच-दस वर्ष में ही संत असंविभाग की बात भूल गये, संविभाग परम धर्म हो गया। आज स्थिति यह है—यदि दस साधु हैं और भिक्षा में पांच रोटियां हैं तो सबको आधी-आधी रोटी मिल जाएगी। आज संविभाग की चेतना इतनी प्रतिष्ठित हो गई है कि असंविभाग की चर्चा नहीं होती।

महत्त्व दें प्रशिक्षण को

यह सचाई है कि व्यक्ति को बदला जा सकता है, समाज को बदला जा सकता है लेकिन वह तभी संभव है, जब मस्तिष्क का प्रशिक्षण हो। हम केवल कानून बना दें, मस्तिष्क को बदलने की कोई प्रक्रिया न दें तो फिर डंडा ही चलेगा, आदमी नहीं बदलेगा। आज कुछ ऐसा ही समाज के क्षेत्र में हो रहा है, जिससे परिवर्तन की बात समझ में नहीं आती। समाज को बदलना है, व्यक्ति को बदलना है तो उसे मानसिक और भावानात्मक स्तर पर प्रशिक्षित करना होगा। केवल शरीर के स्तर पर प्रशिक्षित करने की बात विद्यार्थी को मुर्गा बना देने जैसी है। अध्यापक भी विद्यार्थी को मुर्गा बनाता है, पुलिस भी मुर्गा बनाती है। क्या मुर्गा बनते-बनते व्यक्ति मुर्गा ही नहीं बनेगा? आदमी को आदमी बनाना है तो प्रशिक्षण की बात को महत्त्व देना होगा। आज ऐसा लगता है—मस्तिष्क के प्रशिक्षण की बात हटा दी गई है। अन्य क्षेत्रों की बात छोड़ दें, धर्म के क्षेत्र में भी शायद प्रशिक्षण की बात नहीं चल रही है, केवल रूढ़ि चल रही है। व्यक्ति साधुओं के पास आता है, उनके चरणों में सिर टिकाता है और समझता है—धन्य हो गया। मंदिर में जाने वाला व्यक्ति समझता है—पाठ कर लिया, आरती कर ली, धन्य हो गया। वस्तुतः ये हमारी श्रद्धा को टिकाने के माध्यम मात्र हैं। मूल है मस्तिष्क का प्रशिक्षण, जिससे हमारा आचरण बदले, व्यवहार बदले।

विसंगति धर्म के क्षेत्र में

धर्म के क्षेत्र में एक विसंगति आ गई। एक ओर कर्मकाण्ड चलता है, दूसरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओर आदमी वैसा का वैसा बना रहता है। पचास वर्ष के बाद भी पूछा जाए—क्या बदलाव आया? क्रोध कम हुआ? अहंकार कम हुआ? लोभ और वासनाएं कम हुईं? इसका उत्तर सकारात्मक नहीं होगा। पचास वर्ष तक धर्म की साधना करे और आदमी न बदले तो फिर धर्म करने का अर्थ क्या है? आज का युवक कहता है—मेरे पिताजी को सामायिक, पूजा-पाठ करते हुए इतने वर्ष हो गए हैं। वे घर में सबसे ज्यादा धर्म करते हैं और घर में सबसे ज्यादा लड़ाई भी वे ही करते हैं। यदि आप चाहें—पढ़ा-लिखा युवक साधुओं के पास जाए, मन्दिर में जाये तो क्या वह जाएगा? यदि उसे यह लगेगा—धर्म से यह परिवर्तन आता है तो कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी, वह अपने आप संतों के पास चला जायेगा। व्यक्ति दुकान पर बैठा, रुपया आ रहा है, यह देखता है इसलिए वह दुकान पर अपने आप बैठ जाता है।

मैंने कुछ युवकों से पूछा—'पढ़ाई करते हो?'

'पढ़ाई छोड़ दी।'

'क्यों छोड़ दी पढ़ाई?'

'नौकरी लग गई।'

'अरे! अभी दसवीं कक्षा तक पढ़े और धंधे में लग गये?'

'हमारा कमाने में आकर्षण हो गया। पिताजी ने प्रेरणा नहीं दी, किंतु दुकान पर देखा—पिताजी रुपये कमा रहे हैं, हमारा कमाने में आकर्षण हो गया।

व्यक्ति नहीं, आचरण बोले

व्यक्ति स्वतः धंधे में लग जाता है। क्या कभी बच्चे को कहना पड़ता है—नाश्ता करना है तो आओ, बैठो। वह पहले से ही तैयार रहता है। प्रश्न है—धर्म के मामले में यह क्यों कहना पड़े कि चलो, साधुओं के पास चलो, यह करो, वह करो। यदि वास्तव में धर्म करने वाले का आचरण बोले तो शायद कहना नहीं पड़े। आज की समस्या है—धर्म करने वाला बोलता है, उसका आचरण नहीं बोलता, इसीलिए आज के युवक के मन में एक प्रतिक्रिया होती है। वह सोचता है—यदि धर्म करने से जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता है तो मैं धर्म क्यों करूं? यह बहुत स्वाभाविक चिंतन है। यद्यपि कोई भी व्यक्ति एक ही छलांग में वीतराग नहीं बनता, किन्तु कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिए कि घर में सामंजस्य रहे, शांतिपूर्ण वातावरण रहे, बार-बार क्रोध न आए, अधिक लोभ न सताए। एक युवक कहता है—मैं दहेज नहीं लूंगा और पिता कहता है—तुम मूर्ख हो। कुछ जानते ही नहीं, चुप रहो। शादी किसकी है? युवक की है या उसके पिता की? पर लोभ इतना हो जाता है कि व्यक्ति कुछ सोच नहीं पाता। युवक का मन प्रतिक्रिया से भर जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेह भी बरसेगा, खेती भी होगी

हम इन सारी समस्याओं के संदर्भ में सोचें। जब तक मस्तिष्क प्रशिक्षण की बात आगे नहीं बढ़ेगी, परिवर्तन की बात सोची नहीं जा सकेगी। केवल लौकिक शिक्षा के आधार पर समाज को बदला जा सके, यह संभव नहीं है। उसके साथ कुछ नई बातें जोड़नी चाहिए। अध्यात्म, परमार्थ का चिंतन, एकाग्रता, संकल्प-शक्ति—इन सब साधनों को जोड़ेंगे तो व्यक्तिगत अहं समाज के लिए उपयोगी बनेगा, मनोविज्ञान की भाषा में उसका उदात्तीकरण–'सब्लीमेशन' होगा। वह अहं विशाल बन जाएगा, उसके दोष काफी धुल जाएंगे।

प्राचीन कहानी है। कहा जाता है—किसी कारणवश इन्द्र क्रुद्ध हो गया। उसने घोषणा कर दी—अब बारह वर्ष तक मेह नहीं बरसेगा। एक वर्ष भी बरसात न बरसे तो हाहाकार हो जाता है। बारह वर्ष की घोषणा सुन जनता मायूस हो गई। बरसात का समय। किसान हल और बैलों को लेकर खेतों में गये। भूमि को साफ किया। हल जोते। इन्द्र ने देखा, उसने सोचा—मेरी स्पष्ट घोषणा है कि बारिश नहीं होगी, फिर ये क्यों खेती कर रहे हैं? वेश बदलकर इन्द्र नीचे आया। किसान इकट्ठे हो गये। इन्द्र बोला—क्या तुमने इन्द्र की यह घोषणा नहीं सुनी कि बारह वर्ष तक मेह नहीं बरसेगा। लोगों ने कहा—हमने सुना है। इन्द्र ने पूछा—फिर यह व्यर्थ का प्रयत्न क्यों कर रहे हो? क्यों भूमि को साफ कर रहे हो? क्यों बैलों को तकलीफ दे रहो हो? क्यों बुआई की तैयारी कर रहे हो? मेह तो बरसेगा नहीं। किसान बोले—मेह बरसे या न बरसे, हम तो भूमि की सफाई भी करेंगे और हल भी चलायेंगे। यदि हम प्रयत्न करना छोड़ देंगे तो हमारी भावी पीढ़ी बिल्कुल बेकार हो जायेगी, कृषि करना भूल जाएगी। बारह वर्ष के बाद वे क्या खाएंगे? हम यह कार्य प्रतिवर्ष बराबर करते रहेंगे। मेघ बरसे या नहीं बरसे, यह उसकी इच्छा है, किन्तु हम अपना धंधा नहीं छोड़ेंगे, कृषि करते चले जाएंगे। ऐसा करते-करते एक दिन अवश्य आएगा—मेह भी बरसेगा, खेती भी होगी। आखिर इन्द्र हारेगा, हम नहीं हारेंगे।

दृढ़ संकल्प होता है परिवर्तन का, प्रशिक्षण का तो इन्द्र हार सकता है, किसान कभी हार नहीं सकता। हम इस सचाई पर ध्यान दें कि ध्यान के द्वारा, मस्तिष्क के प्रशिक्षण के द्वारा परिवर्तन हो सकते हैं, पर कभी जादुई डंडे में विश्वास न करें, एक झटके में बदलने की बात न सोचें। जो साधना है, उसकी दीर्घकालीन साधना करें, तो एक दिन निश्चित ही मेह भी बरसेगा और खेती भी होगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तित्व निर्माण और ध्यान

व्यक्ति जैसा है, वैसा ही रहना नहीं चाहता, आगे बढ़ना चाहता है, नया निर्माण करना चाहता है, रूपान्तरण करना चाहता है, किन्तु केवल चाह मात्र से कुछ घटित नहीं होता। रूपांतरण के कुछ उपाय हैं। उन उपायों को जान लें तो व्यक्ति चाहे जैसा बन सकता है और न जाने तो चाह केवल चाह रह जाती है।

कल्पना

रूपान्तरण का पहला चरण है–कल्पना। जब तक कल्पना स्पष्ट नहीं होती तब तक आगे का काम हो नहीं सकता। कार्य की सफलता के लिए सबसे पहले जरूरी है स्पष्ट कल्पना। यदि कल्पना स्पष्ट है तो मानना चाहिए, पच्चीस प्रतिशत काम हो गया।

मुझे क्या होना है? इसकी स्पष्ट कल्पना नहीं है तो आगे कोई गति नहीं हो सकती। एक छोटा बच्चा भी कुछ सपने संजो लेता है। अनेक बच्चों से पूछा–क्या बनना चाहते हो? एक ने कहा–डाक्टर बनना चाहता हूं। दूसरे ने कहा–इंजीनियर बनना चाहता हूं। तीसरे ने कहा–वैज्ञानिक बनना चाहता हूं। एक पांच-दस वर्ष का बच्चा इतना समग्र नहीं समझता किन्तु वह अपने स्तर पर यह कल्पना करता है कि मुझे यह बनना है। फिर उस दिशा में उसके चरण आगे बढ़ने लग जाते हैं। कोई कल्पना ही नहीं है तो फिर आगे बढ़ने का प्रश्न ही नहीं हो सकता।

मानसिक चित्र का निर्माण

कल्पना का अगला चरण है–मानसिक चित्र का निर्माण। जो कल्पना की है, उसका एक मानसिक चित्र बना लें। जो व्यक्ति मकान बनाना चाहता है, उसके दिमाग मे एक पूरा चित्र होता है मकान का। मकान यथार्थ में बाद में बनता है, दिमाग में पहले बन जाता है। जब तक दिमाग में मकान नहीं बनेगा, यथार्थ में मकान बन नहीं पाएगा। कल्पना चित्र पर उतर आए तो मानना चाहिए–हम पच्चीस प्रतिशत और आगे बढ़ गए। जो स्पष्ट मानसिक चित्र बनाया है, उसे देखें। मस्तिष्क पर ध्यान करें और उस चित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का साक्षात्कार करें।

प्रकृति का नियम है—सूक्ष्म जगत में चित्र पहले बन जाता है और स्थूल जगत में वह बाद में व्यक्त होता है। लन्दन में कुछ वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने एक फूल की कली का फोटो लिया। कली का फोटो लिया और फोटो आ गया एक फूल का। वे बड़े आश्चर्य में थे कि यह कैसे हुआ? कली में फूल का चित्र कैसे आया? जब वह कली विकसित हुई, फूल बना, तब वह वैसा ही फूल बना, जैसा चित्र में था। वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला—सूक्ष्म जगत में घटना पहले घटित हो जाती है, स्थूल जगत में वह बाद में अभिव्यक्त होती है। हमारे जीवन में भी ऐसा ही होता है। शरीर में रोग होता है तब व्यक्ति को पता चलता है कि रोग हो गया, किन्तु उससे महीनों पहले सूक्ष्म शरीर में वह रोग हो जाता है, पता बाद में चलता है। मेडिकल साइन्स में ऐसी तकनीक का विकास हो रहा है, जिससे तीन महीने पहले ही रोग की घोषणा की जा सकेगी। यह बताया जा सकेगा—तीन महीने बाद शरीर में यह रोग होने वाला है। यह तकनीक है बॉयोलोजी की, सूक्ष्म शरीर-विज्ञान की। आभामण्डलीय ज्ञान के विकास से भी यह क्षमता उद्‌भूत होती है। जैसे आभामण्डल का ज्ञान विकसित होता चला जाएगा, यह घोषणा की जा सकेगी।

सूक्ष्म जगत में जो घटना घटित होती है वह स्थूल जगत में बाद में आती है। निश्चय नय में वह घटना पहले घट जाती है, व्यवहार नय में बाद में आती है। निश्चय का सत्य और व्यवहार का सत्य एक नहीं होता। निश्चय का सत्य सूक्ष्म होता है। वह बहुत सूक्ष्म चेतना के द्वारा जाना जा सकता है। व्यवहार नय का सत्य स्थूल होता है। वह इन्द्रियों के द्वारा जाना जा सकता है। इन्द्रिय चेतना गम्य और अतीन्द्रिय चेतना गम्य सत्य की प्रकृति एक नहीं होती। अनेक वैज्ञानिकों ने, जो गहन उलझन में थे, सपने में कोई मानसिक चित्र देखा और समस्या का समाधान हो गया। बहुत बार स्वप्न अवस्था में समस्या का समाधान मिलता है। इसका तात्पर्य है—मानसिक चित्र समस्या को समाधान दे देता है।

तीन शर्तें

कल्पना, मानिसक चित्र का निर्माण और चित्र पर एकाग्रता की सिद्धि—ये तीन चरण संपन्न होते हैं तब चाह साकार होती है, कल्पना यथार्थ बन जाती है। आदमी बहुत कल्पनाएं करता है। उसकी अनेक कल्पनाएं अधूरी रह जाती हैं इसीलिए बहुत बार कहा जाता है—सपना अधूरा रह गया। हजारों-हजारों लोगों ने इस स्वर को दोहराया कि मन की मन में रह गई। कल्पना अधूरी क्यों रहती है? इसलिए कि व्यक्ति कल्पना करना तो जानता है, किन्तु कल्पना के अनुरूप चित्र बनाना नहीं जानता। कल्पना, मानसिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र और एकाग्रता—ये तीन शर्तें पूरी नहीं होती हैं तो कल्पना अधूरी रह जाती हैं।

साठ गांव बकरी चर गई

प्राचीन घटना है। राजा जंगल में आखेट के लिये गया। अनेक सैनिक साथ थे। सब घोड़ों पर सवार थे। जिस घोड़े पर राजा चढ़ा हुआ था, वह वक्र वृत्ति का था। वह राजा को विपरीत दिशा में ले गया। राजा जंगल में भटक गया। सब लोग बिछुड़ गए, अलग-अलग हो गए। राजा अकेला था। बहुत तेज प्यास लगी। प्राण निकलने जैसी स्थिति बन गई। उस समय एक चरवाहा दिखाई दिया। राजा ने कहा—भाई ! पानी पिलाओगे? उसने पानी पिलाया, आसन बिछाकर बिठा दिया। अच्छी परवरिश की। राजा प्रसन्न हो गया। राजा ने कहा—देखो, मैं राजा हूं। लो, मैं तुम्हें साठ गांव का पट्टा देता हूं। चरवाहा होशियार था। उसने कहा—महाराज ! मैं ऐसे नहीं मानता, आप मुझे लिखकर दें। राजा किस पर लिखता। कुछ और था ही नहीं, वृक्ष का पत्ता था। उस पत्ते पर राजा ने लिख दिया—'मैं तुम्हें साठ गांव का पट्टा बख्शीस करता हूं।' चरवाहा बड़ा खुश हो गया। राजा चला गया। मध्याह्न का समय। बकरियां इधर-उधर चर रही थीं। चरवाहा को नींद आने लगी। पत्ते को पास में सिरहाने रखा और वह सो गया। घूमते-घूमते एक बकरी उधर आई और उस पत्ते को खा गई, चर गई। उसे क्या पता था, वह कोई गांव का पट्टा है। उसके लिए वह गांव का पट्टा नहीं, खाने का पत्ता था और वह उसे खा गई। चरवाहा जगा, देखा—गांव का पट्टा गायब है। वह व्यथा से बोल उठा—मन की मन में रह गई, साठ गांव बकरी चर गई।

केवल कल्पना करने और सपना लेने से काम नहीं चलता। कल्पना को साकार करने की विधि का बोध भी जरूरी है। जब कल्पना को साकार करने का गुर हाथ लग जाता है तब कोई कल्पना अधूरी नहीं रहती। कल्पना को यथार्थ तक ले जाने के लिए जितनी यात्रा करनी होती है, वह यात्रा पूरी हो तो कल्पना यथार्थ में बदल जाती है। यात्रा पूरी न हो, बीच में कोई बकरी आ जाए तो कल्पना कल्पना ही रह जाती है. यथार्थ तक पहुंचने के लिए मानसिक चित्र बनाना और उस पर एकाग्र होना बहुत आवश्यक है।

प्रश्न है बनने का

प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय करना चाहिए कि मुझे क्या बनना है? शिक्षा के क्षेत्र में आदमी यह निर्णय करता है कि मुझे क्या बनना है? किन्तु वह किस संदर्भ में यह निर्णय करता है, इसकी ओर ध्यान देना भी अपेक्षित है। संदर्भ को समझे बिना किसी भी वस्तु की व्याख्या नहीं की जा सकती। आज संदर्भ है आजीविका का। आजीविका के संदर्भ में हर व्यक्ति कल्पना करता है—मझे व्यापारी बनना है, उद्योग में जाना है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशासन अथवा राजनीति में जाना है, डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक अथवा शिक्षाविद् बनना है। हर व्यक्ति जीविका के क्षेत्र में एक कल्पना करता है और उस कल्पना को यथार्थ तक ले जाता है। अगर यथार्थ तक कल्पना नहीं पहुंचती तो आज कोई डॉक्टर, नहीं बनता, इंजीनियर या वैज्ञानिक नहीं बनता। इसके साथ हम इस यथार्थ को भी स्वीकार करें–इन कल्पनाओं के साथ केवल जीविका का संदर्भ जुड़ता है, शेष सारे संदर्भ छूट जाते हैं। अच्छा आदमी बनना है, यह संदर्भ बिल्कुल नहीं है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि अच्छे आदमी बनने की कल्पना नहीं की जाती। बहुत अच्छे-अच्छे लोग हैं। कल्पना तो करते ही हैं पर यथार्थ तक बहुत कम लोग पहुंच पाते हैं। इसका एक कारण स्पष्ट है–शिक्षा के क्षेत्र में यह विषय उपेक्षित सा ही रहा है। आज शिक्षा केवल जीविका का एक क्षेत्र तैयार करने तक सीमित हो गई है। जीवन निर्माण के विषय की उपेक्षा होगी तो अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण कैसे होगा?

दिल्ली में शिक्षामंत्रियों की एक गोष्ठी हुई। आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में गठित समिति की रिपोर्ट पर विचार-विमर्श करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने देश के शिक्षामंत्रियों की वह संगोष्ठी आयोजित की थी। राजस्थान के शिक्षामंत्री ने कहा–'यह रिपोर्ट अच्छी है। नैतिक शिक्षा अनिवार्य है किन्तु नैतिक शिक्षा के साथ जीवन विज्ञान को जोड़ना बहुत आवश्यक है। वह चरित्र-निष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण का प्रायोगिक उपक्रम है।

जीविका और जीवन

पहला संकल्प होना चाहिए–अच्छा आदमी बनना है। दूसरा संकल्प होना चाहिए–इंजीनियर, डॉक्टर या वैज्ञानिक बनना है। पहला यह संकल्प होगा कि अच्छा मनुष्य बनना है तो फिर अगली बात और अधिक सार्थक बन जाएगी। अच्छा आदमी बनने का संदर्भ सामने नहीं है और केवल जीविका का संदर्भ सामने है तो जीविका अच्छी मिल जाएगी, पर जीवन अच्छा नहीं बनेगा। जब तक हम जीविका और जीवन–दोनों को एक साथ नहीं समझेंगे, अखण्ड व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होगा। मनोविज्ञान की भाषा में डिवाइडेड पर्सनेलिटि–विभक्त व्यक्तित्व बहुत खतरनाक होता है। जब तक व्यक्ति अखण्ड और अविभाजित नहीं होता तब तक समाज में अच्छा काम नहीं हो सकता। अखण्ड व्यक्तित्व तभी बन सकता है, जब हम पहले केवल व्यक्तित्व की कल्पना करें। अच्छा आदमी बनना है, यह कल्पना करें तो पूरी बात होगी। अच्छा आदमी बनने की बात नहीं है तो बात अधूरी रह जाएगी।

ऐसा लगता है आज एक विभाजन हो गया है। शिक्षा ने यह काम संभाल लिया है कि अच्छी जीविका कमाने वाला बनाना है। यह भी गारन्टी नहीं है कि नौकरी मिल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाए। केवल भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में लाखों व्यक्ति बेरोजगार हैं। हिन्दुस्तान में तो करोड़ों हैं। पढ़ाई भी यह गारन्टी नहीं देती कि तुम जीविका के लिए पढ़ रहे हो, तुम्हें जीविका मिल जाएगी। जीविका का साधन मिल भी जाए किन्तु जब तक 'अच्छा जीवन बनेगा', यह आश्वासन नहीं होता तब तक जीविका भी पूरा साथ नहीं देती।

कल्पना अच्छे जीवन की

कुछ लोगों को नि:सर्ग से अच्छा जीवन मिल जाता है किन्तु सबको नहीं मिलता। अच्छे जीवन की कल्पना भी स्पष्ट होनी चाहिए। अलग-अलग कल्पनाएं हो सकती हैं। प्रेक्षाध्यान या जीवन विज्ञान के संदर्भ में अच्छे जीवन की कल्पना प्रस्तुत की जाए तो वह पांच सूत्र से समन्वित होगी। वे पांच सूत्र ये हैं–

१. स्वस्थ शरीर २. स्वस्थ मन

३. स्वस्थ भाव ४. बौद्धिक विकास

५. कार्यक्षमता या कार्यकौशल

ये पांच अच्छे जीवन की कल्पना के सूत्र हैं। अच्छा आदमी या अच्छा जीवन वह होता है, जहां ये पांच सूत्र साकार बनते हैं। यह एक समग्र कल्पना है। इसमें जीवन और जीविका–दोनों की कल्पना है, अखंड व्यक्तित्व की कल्पना है। दो सूत्र जीविका से जुड़े हुए हैं। बौद्धिक विकास और कार्यक्षमता या कार्यकौशल–ये दोनों जीविका के लिए जरूरी हैं। ये दोनों नहीं होते हैं तो जीविका भी अच्छी नहीं चलती। स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और स्वस्थ भाव–ये तीनों जीवन के लिए जरूरी हैं। भाव स्वस्थ है तो ऐसा नहीं हो सकता कि जब चाहो आवेश को उभार दो और चाहे जितनी हिंसा करवा दो। भाव इतना स्वस्थ हो जाए कि हर कोई व्यक्ति भाव को बिगाड़ नहीं सके। बार-बार समाचार पत्रों में यह विज्ञापन आता है कि अफवाहों पर विश्वास मत करो। यह कभी सम्भव है क्या? चूल्हे में आग डाल दें और यह चाहें–पानी गर्म न हो, दूध गर्म न हो, कैसे सम्भव होगा? उत्तेजना आवेश को इतना उभार दो, प्रचुर ईंधन आग में डाल दो, और वह भभके नहीं, आग आगे न बढ़े, अफवाहों पर विश्वास न हो, यह कभी नहीं होगा। यह सम्भव तभी बनेगा, जब आवेश पर कंट्रोल करना सिखाया जाए।

केवल धन कमाना, जीविका चलाना, बौद्धिकता, कार्यक्षमता और कार्यकौशल का केवल जीविका के लिए उपयोग करना, यह अच्छे व्यक्तित्व का लक्षण नहीं है। व्यावसायिक या कर्मजा बुद्धि है, हाथ में शिल्प है, कला है तो व्यक्ति बहुत कुछ कमा लेता है। इससे जीविका का पक्ष तो बहुत समर्थ बन जाता है पर जीवन का पक्ष अच्छा नहीं रहता। जीवन अच्छा और जीविका अच्छी–दोनों का योग होता है तो इसे मणिकांचन योग कहा जा सकता है। सोना भी मिला और मणि भी मिली। दोनों को जड़ दिया तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बढ़िया आभूषण बन गया। यह मणिकांचन योग आज टूट गया।

जीवन की बात जुड़े

जीवन विज्ञान का मुख्य सूत्र रहा—शिक्षा के क्षेत्र में जीविका के लिए जितना कुछ चल रहा है, उसके साथ जीवन की बात और जोड़ दें। शिक्षा के क्षेत्र में जीवन और जीविका—ये दोनों बातें जुड़ेंगी तो शिक्षा समग्र बन जाएगी। यदि शिक्षा के साथ केवल जीविका की बात जुड़ी रही तो समग्र व्यक्तित्व का नहीं, खंडित व्यक्तित्व का निर्माण ही सम्भव होगा। जहां व्यक्तित्व खंडित होता है वहां कोई भी बात पूरी नहीं बनती। आज हिंसा बहुत बढ़ रही है, उत्तेजना है, अपराध है, काफी कुछ अवांछनीय चल रहा है। कारण यही है—समाज को जीविका के बारे में बहुत जागरूक बना दिया गया किन्तु जीवन के बारे में नहीं बनाया गया। इसीलिए समाज को जैसा शिष्ट, सभ्य और शालीन होना चाहिए, वह नहीं हो पा रहा है। क्या वह भी कोई समाज होता है जहां भिन्न विचार वाले को मार दिया जाए, भिन्न विचार वाले पर अतिक्रमण और अत्याचार किया जाए? क्या ऐसा समाज शालीन समाज है? एक ओर वैचारिक स्वतंत्रता का उद्घोष दूसरी ओर भिन्न विचार की हत्या। आज ऐसे लोगों की दुनिया में संख्या अधिक है, जो भिन्न विचारों को सहन नहीं करते। ऐसे राष्ट्र हैं, जहां अमुक सम्प्रदाय के सिवाय दूसरे सम्प्रदाय का प्रचार नहीं किया जा सकता।

सहिष्णुता की संस्कृति

विदेशों में रहने वाले कुछ लोग दर्शन करने आए। हमने पूछा—वहां तुम प्रार्थना करते हो? अर्हत् वंदना करते हो? उन्होंने विवश स्वर में कहा—वहां हम चाहते हुए भी नहीं कर सकते। वहां दूसरे धर्म की प्रार्थना करना वर्जित है। यदि यह पता लग जाए—हम धार्मिक भजन गा रहे हैं तो कठोर दण्ड भुगतना पड़े। इतने नियंत्रण की शायद हिन्दुस्तान के लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। भारत की संस्कृति सहिष्णुता और समावेश की संस्कृति रही है। उसने सबको स्वतंत्र अधिकार दिया है वैचारिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता दी है किन्तु कुछ परम्पराएं और संस्कृतियां ऐसी हैं जो अपने विरोधी विचार को सहन ही नहीं करतीं। यह बड़ी समस्या है और उसका प्रभाव भारतीय संस्कृति पर भी आ रहा है। भारतीय संस्कृति में सबको समाया गया हूण आए, यवन आए—न जाने कितने आए, सबको पचा लिया। कहीं किसी को मार नहीं, काटा नहीं, सबका समावेश कर लिया किन्तु शायद अब बाहर का प्रभाव यह भी आ रहा है। इस प्रभाव को तभी रोका जा सकेगा जब शिक्षा समग्र व्यक्तित्व के निर्माण का उपक्रम बने। जब तक शिक्षा में उदारता की बात, सहिष्णुता की बात नहीं आएगी तब तक शिक्षा की सार्थकता नहीं होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम शिक्षा के संदर्भ में ऐसी कल्पना करें, जिससे अखंड व्यक्तित्व के निर्माण का सपना साकार बन जाए। उस कल्पना के अनुरूप मानसिक चित्र तैयार करें। जब तक मानसिक चित्र परिपक्व नहीं होगा, उसके साथ सम्यक् दृष्टिकोण नहीं जुड़ेगा तब तक कल्पना कल्पना ही बनी रहेगी। चित्र बनाने के लिए कुछ बातें जोड़नी पड़ती हैं। एक आर्टिस्ट मकान की कल्पना करता है किन्तु जब तक इंजीनियर उस कल्पना को एक चित्र का रूप नहीं देता, मकान नहीं बनता। आर्टिस्ट ने नक्शा बना दिया, मॉडल बना दिया। उसके बाद इंजीनियर उसमें अपेक्षित काट-छांट करता है। कितनी सामग्री चाहिए, कितना मेटिरियल जरूरी होगा, यह आर्चिटेक्ट का नहीं, एक इंजीनियर का काम होता है। उसे इन सबका यथार्थ अनुमान न हो तो गड़बड़ हो जाती है।

दूरी है कल्पना और यथार्थ में

चार व्यक्तियों ने निश्चय किया–परदेश चलें, कुछ कमाई करें। वे चारों विचित्र प्रकार की प्रकृति के थे। एक ज्योतिषी था, एक वैद्य था, एक तर्कशास्त्री था और एक वैयाकरण था। वे चारों एक गांव में पहुंचे। गांव के बाहर ठहर गए। एक ने कहा–खाना पकाना है। परस्पर काम बांट लें तो रसोई जल्दी बन जाएगी। चारों बैठ गए। ज्योतिषी से कहा गया–ज्योतिषी का काम यह है कि वह अच्छा मुहूर्त्त बता दे–रसोई के लिए चोका कब लगाना है, कौनसा नक्षत्र शुभ है आदि।

वैद्य से कहा गया–तुम इस गांव जाकर साग-सब्जी खरीद लाओ। क्योंकि वैद्य अच्छी तरह जानता है कि कौनसा शाक स्वास्थ्यकर होता है और कौनसा अस्वास्थ्यकर, कौनसा खाना चाहिए और कौनसा नहीं खाना चाहिए? कहीं यह न हो कि बहुत वायुकारक शाक आ जाए अथवा पित्त और कफ वर्धक शाक आ जाए। वैद्य स्वास्थ्य के लिए जो उत्तम होगा, वही शाक खरीदेगा।

तर्कशास्त्री से कहा गया–तुम जाओ, घी-तेल आदि ले आओ। तर्कशास्त्री पूरे तर्क के साथ काम करेगा। वह ऐसा नहीं करेगा कि घी कम आए और रुपया ज्यादा दे दे। वह पूरा घी लायेगा और उचित मूल्य पर लाएगा।

वैयाकरण से कहा गया–तुम रसोई पकाओ। शब्दशास्त्री शब्दों को सिद्ध करने में कुशल होता है। जब तक व्याकरण में शब्द सिद्ध नहीं होता तब तक काम नहीं बनता। यह रसोई को सिद्ध करने में होशियार होगा।

क्षमता के अनुरूप काम का विभाजन हो गया।

ज्योतिषी ने मुहूर्त्त बता दिया। उसका काम हो गया। शब्दशास्त्री को रसोई बनानी थी, वह वहीं बैठ गया। वैद्य और तर्कशास्त्री बाजार में चले गए। वैद्य सब्जी-मण्डी में पहुंचा। उसने एक स्थान पर मूली देखी, सोचा–मूली बहुत वायुकारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है। करेला देखा, सोचा–करेला तो बहुत पित्तवर्द्धक होता है, बहुत उष्ण होता है। एक-एक सब्जी को देखता गया और वैद्य-शास्त्र के अनुसार विश्लेषण करता गया। कोई भी शाक उसे उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। वह खाली झोला लेकर लौटने लगा। रास्ते में सोचा–खाली झोला लेकर जाऊंगा तो कैसे काम होगा। नीम का वृक्ष दिखाई दिया। नीम को देखते ही उसे आयुर्वेद का वाक्य याद आ गया–**सर्वरोगहरो निम्बः**। सब रोगों को मिटाने वाला है नीम। उसने नीम की पत्तियां तोड़ीं, झोला पूरा भर लिया।

तर्कशास्त्री घी से भरा बर्तन ले आया। आते-आते मन में तर्क पैदा हो गया–मैं जो घी ले जा रहा हूं उसका आधार पात्र है या पात्र का आधार घी है–**घृताधारं पात्रं पात्राधारं घृतम्**। मन में तर्क पैदा हो गया। जब तर्क उभर आता है तब आदमी के वश की बात नहीं रहती। वह यथार्थ को भूल गया और तर्क में उलझ गया। इतना उलझ गया कि सचाई को जानने के लिए पात्र को उलटा कर दिया। घी नीचे गिर गया, पात्र खाली हो गया।

वैद्य और तर्कशास्त्री दोनों आए। वैद्य को पूछा–क्यों शाक नहीं लाये? वैद्य ने कहा–मैं शाक कैसे लाता, कोई भी स्वास्थ्यप्रद सब्जी मिली ही नहीं। केवल नीम ही ऐसा था, जो सब रोग का हरण करने वाला है। उससे झोला भरा हुआ है।

तर्कशास्त्री से पूछा–घी नहीं लाए? तर्कशास्त्री ने कहा–मैं घी लाया तो था पर वह बीच में रह गया। मैं क्या करूं? मुझे तो यह परीक्षण करना था कि आधार कौन है? पात्र का आधार घी है या घी का आधार पात्र है? जब वैज्ञानिक परीक्षण होता है तब बहुत सारी चीजें नष्ट हो जाती हैं। परीक्षण में तो यह सब चलता है।

ज्योतिषी, वैद्य और तर्कशास्त्री–तीनों एक ओर बैठ गए। शब्दशास्त्री ने कहा–'और कुछ तो है नहीं, अपने पास चावल और दाल है। मिट्टी की हांडी में खिचड़ी पकाकर खा लेंगे।' उसने चूल्हा जलाया, मिट्टी की हांडी में खिचड़ी चढ़ा दी। खिचड़ी पकने लगी। जैसे-जैसे पानी गर्म हुआ, खिचड़ी उबलने लगी, खदखद की आवाज होने लगी, शब्दशास्त्री इसको कैसे सहन करता। वह बोला–"**अशुद्धं न वक्तव्यं, अशुद्धं न वक्तव्यं।**" तुम तो बिलकुल अशुद्ध बोल रही हो, अशुद्ध नहीं बोलना चाहिए। एक शब्दशास्त्री अशुद्ध को कैसे सहन कर सकता है? खिचड़ी की खदखद चलती रही शब्दशास्त्री ने सोचा–क्या करना चाहिए? जो गलत बोले, उसे एक लाठी जमा देनी चाहिए। कहा गया है–जो खण्डिकाचार्य होता है, पाठ और घोष की शुद्धि कराने वाला आचार्य होता है, वह अशुद्ध बोलने वाले छात्र को प्रताड़ित करे। शब्दशास्त्री ने तत्काल पास में पड़ी लाठी को उठाया और हांडी को पीट दिया। हांडी फूट गई। चावल-दाल बिखर गए, मिट्टी में मिल गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल कल्पना न करें

हम इस कथा का सार समझें। ज्योतिषी, वैद्य, तर्कशास्त्री और शब्दशास्त्री चारों मिले। चारों ने रसोई बनाने की कल्पना की। सामग्री जुटाई पर चित्र नहीं बना सके। अगर मानसिक चित्र स्पष्ट होता तो रसोई बन जाती। कल्पना तो थी पर मानसिक चित्र स्पष्ट नहीं था। मानसिक चित्र के अभाव में कल्पना यथार्थ तक नहीं पहुंच सकती। केवल कल्पना से काम नहीं चलता। कल्पना को यथार्थ तक ले जाने के लिए एक मानसिक चित्र का निर्माण करना होता है। जब मानसिक चित्र बन जाए तब फिर ध्यान का प्रसंग आता है। तीसरे चरण में ध्यान की उपयोगिता है। जो चित्र बनाया है, उस पर जितने एकाग्र हो सकेंगे, उसी गति से यथार्थ तक कल्पना पहुंच जाएगी। उस पर एकाग्र नहीं हुए, एकाग्रता नहीं सधी तो मानसिक चित्र बन जाने पर भी कल्पना यथार्थ नहीं बनेगी। ऐसे लोगों को देखा है, सुना है, पढ़ा है, बहुत अच्छे कल्पनाकार थे, बहुत अच्छे मानसिक चित्रकार भी थे किन्तु एकाग्र नहीं थे। आज एक ग्रन्थ को पढ़ना शुरू किया, सौ-दो सौ श्लोक पढ़े। वह पूरा नहीं हुआ, उससे पहले ही दूसरा ग्रन्थ पढ़ना शुरू कर दिया। उसके दस-बीस पन्ने पलटे फिर तीसरा ग्रन्थ पढ़ना शुरू कर दिया। ग्रन्थ एक भी पूरा नहीं हुआ। एकाग्रता के अभाव में यह स्थिति बनती है। एक वैज्ञानिक ने अपने जीवन में विज्ञान पर नौ सौ निबंध लिखे किन्तु पूरा एक भी नहीं किया। कहा जाता है–यदि वह दो-चार निबंध भी पूरा कर देता तो दुनिया का महान् वैज्ञानिक बन जाता।

ध्यान है सफलता का सूत्र

जब तक एक विषय पर हम टिकना नहीं जानते, एकाग्र होना नहीं जानते, तब तक कल्पना यथार्थ तक नहीं पहुंच सकती। यह निश्चित मानें–व्यवहार का प्रश्न हो या अध्यात्म का प्रश्न–ध्यान दोनों में आवश्यक है। व्यवहार में सफलता के लिए भी ध्यान जरूरी है। कल्पना को यथार्थ तक ले जाने के लिए एकाग्रता अत्यन्त अनिवार्य है, निर्विकल्प ध्यान की बात छोड़ दें किन्तु जो एकाग्रता का ध्यान है, वह व्यावहारिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में सफलता के लिए जरूरी है। कुछ व्यक्ति कहते हैं–अमुक धंधा शुरू किया, पर सफल नहीं हो रहा हूं। मैंने उससे पूछा–तुम एकाग्र होना जानते हो या नहीं? यदि एकाग्र होना नहीं जानते हो तो सफल नहीं हो सकते। आज एक व्यवसाय शुरू किया। हो सकता है–उसमें उतार-चढ़ाव आए, सफलता न मिले। यदि उसमें एकाग्रता बन जाए तो संभव है कि सफलता भी मिल जाए। एक व्यवसायी ने कहा–हम लोग एक व्यवसाय कर रहे थे। परिवार के लोगों ने कहा–भाई! यह काम अच्छा नहीं है। लाभ नहीं हो रहा है। उन लोगों ने उस व्यवसाय को अस्त-व्यस्त कर दिया। ऐसा योग था–यदि दो महीने वही काम चलता तो एक साथ करोड़ो का लाभ होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की संभावना थी पर दो-चार महीना पहले ही सब कुछ बिखेर दिया।

यदि आदमी एक विषय पर टिका रहता है तो कभी न कभी संभावना आ सकती है। आज नमक का, कल दाल का, परसों तेल का, चौथे दिन घी का, पांचवें दिन रूई का-प्रतिदिन व्यापार को बदला जाए तो क्या होगा? इस स्थिति में पागलपन अवश्य आ सकता है, कहीं सफलता नहीं मिल सकती। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा आदमी मिले, जो कल्पना न करता हो। शेखचिल्ली की कहानियां बहुत चलती हैं। ये कहानियां क्यों चलीं? सचाई यह है-वह हर व्यक्ति शेखचिल्ली है, जो कल्पना करता है। ये कहानियां इसलिए गढ़ी गई कि व्यक्ति ने कल्पना करना तो जाना पर मानसिक चित्र का निर्माण और ध्यान-ये दो सूत्र नहीं जाने। कल्पना असफल हो गई और वह असफल कल्पना शेखचिल्ली का घड़ा बन गई। जिन लोगों ने मानसिक चित्र का निर्माण और ध्यान करना जान लिया, एकाग्र होना जान लिया, वे यथार्थ तक पहुंच गए।

सफलता का कारण

दोनों चित्र हमारे सामने हैं-शेखचिल्ली का चित्र भी सामने है और सफलताओं का वरण करने वालों के जीवन भी हमारे सामने हैं। इन दोनों दृष्टियों से विचार करें तो ध्यान की उपयोगिता हमारे सामने आ जाती है। जीवन विज्ञान में ध्यान को जोड़ा गया। केवल इसीलिए नहीं कि सबके सब विद्यार्थी आध्यात्मिक बन जाएंगे। ऐसा जिन्हें होना है, होंगे पर कम से कम जीवन की सफलता का सूत्र सबकी समझ में तो आएगा। सफलता का मार्ग ध्यान के सिवाय दूसरा नहीं है। आज जिन राष्ट्रों ने आर्थिक दृष्टि से बहुत प्रगति की है उनकी सफलता का सूत्र है एकाग्रता। जापान के लोगों से जब सफलता का सूत्र पूछा जाता है तब वे कहते हैं-हमारी व्यावसायिक सफलता का कारण है एकाग्रता। हम लोग इस पर गहरा अध्ययन करते हैं, प्रशिक्षण लेते हैं, ट्रेनिंग कोर्स चलाते हैं। हमें यह सिखाया जाता है कि व्यावसायिक क्षेत्र में भी किस प्रकार ध्यान का प्रयोग करना है? कैसे अपनी एफिसिएंसी को बढ़ाना है? इस दृष्टि से मूल्यांकन करें तो व्यक्तित्व निर्माण में ध्यान के मूल्य का अंकन किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२

बाहर उजला भीतर मैला

ध्यान एक शिक्षा है। वह मस्तिष्क को शिक्षित बनाती है। विद्यालय में शिक्षा मिलती है। छात्र-छात्राएं पढ़ते हैं। पढ़ाई का परिणाम यह होता है—बाहरी कार्यक्षमता बढ़ जाती है, कुशलता बढ़ जाती है किन्तु विद्यार्थी भीतर वैसा का वैसा बना रहता है।

शिक्षा ने सदा बाह्य जगत पर ध्यान केन्द्रित किया है। जगत में आदमी कैसे जी सके? उसकी क्षमता कैसे बढ़े? किस प्रकार वह बौद्धिकता के साथ अपने जीवन की यात्रा को संचालित कर सके? अन्तर्जगत अछूता रह गया। बाहर में कुछ है, पदार्थ है, रोटी, कपड़ा और मकान है। साज-सज्जा और सौंदर्य की सामग्री है। आदमी देखते-देखते अघाता नहीं है। जब टी.वी. देखने बैठता है तो देखता ही रहता है। सिनेमा जाता है तो देखता ही रहता है। कभी नाटक देखता है, कभी बाजार देखता है, कभी सजावट को देखता है और कभी खेलों को देखता है। फुटबाल, क्रिकेट आदि न जाने कितने मैच होते हैं, सबको देखता है। इन्द्रियां कभी देखते-देखते थकती नहीं, तृप्त नहीं होतीं। हमने मान लिया—जो कुछ है, वह बाहर है। यह एक अज्ञान का पर्दा आ गया। भीतर की ओर से आंखें मुंद गईं। ऐसा मान लिया कि भीतर कुछ है ही नहीं। सचाई यह है—कि भीतर का जगत बाहर के जगत से बहुत बड़ा है। प्रश्न यह है—जानता कौन है? अगर जानने वाला नहीं रहे तो बाहर का जगत कुछ भी नहीं है। प्राण चला गया, मुर्दा हो गया। उस मुर्दे को कोई टी.वी. दिखाना चाहे, सिनेमा दिखाना चाहे तो क्या वह जानेगा? सौ-दो सौ आदमी सिनेमा घर में सिनेमा देख रहे हैं। एक मुर्दे को वहां इसलिए बिठा दिया जाए कि वह भी सिनेमा देख ले तो क्या होगा? सारा सिनेमा घर खाली हो जाएगा, वहां कोई नहीं रहेगा।

गांव खाली हो गया

बूढ़ा और बुढ़िया—दोनों में झगड़ा हो गया। बात बहुत छोटी थी। बुढ़िया ने सात रोटियां बनाईं। बूढ़ा कहता है—चार रोटियां मैं खाऊंगा और बुढिया कहती है—चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोटियां मैं खाऊंगी। यदि छह रोटियां होती तो बराबर पांती हो जाती। एक रोटी के दो टुकड़े करना दोनों को मान्य नहीं था। चार और तीन का झगड़ा हो गया। काफी प्रयत्न किया गया, पर कोई निपटारा नहीं हुआ। आखिर दोनों ने एक उपाय खोजा–हम सो जाएं, मौन कर लें, जो पहले मौन तोड़ेगा, उसको तीन रोटी मिलेगी और जो मौन नहीं तोड़ेगा, उसको चार रोटियां मिलेंगी। अब मौन कौन तोड़े? पहले कोई बोलता नहीं है। दोनों सो गए। एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीन दिन बीत गए। आस-पास के लोगों ने देखा–बात क्या है? कोई हलचल क्यों नहीं है? दोनों बिल्कुल खाट पर शांत पड़े थे। बूढ़े तो थे ही। तीन दिन का उपवास हो गया तो मृतवत् दिखाई देने लगे। लोगों ने देखा–दोनों निश्चेष्ट पड़े हैं। दोनों को आवाज दी, पर कोई बोलता नहीं है। दोनों ने सोचा–जो बोलेगा, उसकी एक रोटी चली जाएगी। दोनों में कोई नहीं बोला। दोनों सोए रहे। लोगों ने समझा–दोनों मर गए। दोनों को हाथों से उठाया, अर्थी बनाई, श्मशान घाट ले गए। चिता बनाई, दोनों को उस पर लिटा दिया। योग ऐसा मिला–उस समय सात लोग पास खड़े थे। बुढ़िया बोली–चलो, कोई बात नहीं, मैं तीन खा लूंगी, तुम चार खा लेना। वे सात रोटियों की बात कर रहे थे। सात का विचित्र योग मिला। लोगों ने सोचा–हम भी सात हैं। भागो यहां से। सातों गांव की ओर भागे। जैसे वे लोग भागे, पीछे-पीछे वे दोनों भागे। बड़ी विचित्र बात हो गई। लोगों ने सोचा–दोनों भूत हो गए हैं और हमारा पीछा कर रहे हैं, गांव में आ रहे हैं। भागते-भागते वे लोग राजा के पास पहुंचे। राजा को सूचित किया–महाराज ! आज एक बूढ़ा-बुढ़िया–दोनों भूत बन गए हैं और दौड़े आ रहे हैं। लगता है–गांव को खा जाएंगे। यह सुनकर राजा भी इतना डर गया कि अपना महल खाली करके भाग गया। पूरा गांव खाली हो गया।

भूत आयेगा तो गांव खाली हो जाएगा। मुर्दा आ जाएगा तो सिनेमाघर खाली हो जाएगा, वहां रहेगा कौन? जब तक शरीर में चेतना है, आत्मा है, प्राण है, तब तक व्यक्ति जानता है। हमने जानने वाले की उपेक्षा कर दी और जो जानने की बात है, ज्ञेय है, उस पर सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया। दो शब्द हैं–ज्ञाता और ज्ञेय। ज्ञाता है जानने वाला, ज्ञेय है पदार्थ, जो जाना जाता है। हमारी दृष्टि ज्ञेय पर अटक गई। ज्ञाता को भुला दिया। आज की शिक्षा का यह चित्र है–ज्ञाता की उपेक्षा हो रही है, आंतरिक प्रकृति की उपेक्षा हो रही है और बाह्य प्रकृति की अपेक्षा इतनी की जा रही है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। यह विचित्र और दयनीय स्थिति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौन करता है क्रोध

आज की बहुत सारी समस्याएं इसलिए चल रही हैं कि हमने आंतरिक जगत् की ओर ध्यान नहीं दिया। इसीलिए यह कहा जा रहा है, बाहर उजला, भीतर मैला। बाहर में तो बहुत उजले कपड़े पहन लिए, शरीर को भी उजला बना लिया, प्रसाधन का ऐसा उपयोग किया कि शरीर भी गोरा-गोरा, उजला दिखने लगा, पर भीतर में मैलापन गहरा रहा है। शांति कैसे होगी? आनन्द कैसे होगा? आदमी कैसे अच्छे ढंग से जी सकेगा? एक व्यक्ति को क्रोध आता है और वातावरण बिगड़ जाता है। क्रोध किसी वस्तु ने किया या आदमी ने? घड़ी कभी क्रोध नहीं करती, माइक कभी क्रोध नहीं करता, खंभे कभी क्रोध नहीं करते। कोई भी पदार्थ क्रोध नहीं करता।

क्रोध कौन करता है? आदमी क्रोध करता है। जब एक आदमी क्रोध करता है तो दूसरे को भी क्रोध आता है। एक आदमी क्रोध में आकर किसी को गाली देता है तो दूसरे आदमी को दुःख होता है। यह दुःख कहां से आया? यह अन्तर्जगत् से आया। अन्तर्जगत् में क्रोध पैदा हुआ। उसने गाली दी। गाली बाहर के जगत् में आई। दूसरे के कानों से टकराई और उसके भीतरी जगत् में पहुंची, तब दुःख हुआ। जब अन्तर्जगत् का संपर्क हुआ तब दुःख हुआ। बाहर के जगत् में कोई दुःख नहीं होता। एक आदमी ने गाली दी और दूसरे ने नहीं सुनी, उसे कुछ भी नहीं हुआ। उसको दुःख तब होता है, जब वह गाली को सुन लेता है। केवल सुनने से ही दुःख नहीं होता। जब वह गाली को स्वीकार कर लेता है, यह मान लेता है कि मुझे गाली दी गई है, तब उसको दुःख होता है। अगर नहीं स्वीकारता है तो कोई दुःख नहीं होता।

कहां पहुंची गालियां?

साधक तपस्वी के पास एक व्यक्ति आया। उसने बहुत गालियां दीं। क्या तुम संन्यासी बन गए? घर को छोड़ दिया, परिवार को छोड़ दिया, क्या हुआ? पलायन कर गए? अगर सब लोग ऐसे ही हो जाएं तो संसार कैसे चलेगा? उसने काफी बकवास की, गालियां दीं। वह गाली देता जा रहा है और साधक हंसता जा रहा है। गाली देने वाला उत्तेजित हो गया। यदि सामने वाला उत्तेजित होता है तो गाली देने वाले को गाली देने में मजा आता है और सामने वाला उत्तेजित न हो तो गाली देने वाला एकदम चिड़चिड़ा हो जाता है, ज्यादा गुस्से में आ जाता है। वह सोचता है–अरे ! यह क्या, मैं तो गाली दे रहा हूं और इस पर कोई असर ही नहीं हो रहा है, सुनता ही नहीं है। मिट्टी का है क्या?

आखिर वह व्यक्ति थक गया, बोला–बाबा ! बात क्या है? इतनी गालियां दीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तुमने गुस्सा ही नहीं किया।'

साधक के कहा—'किसको दी?'

'आपको दी।'

'मैंने तुम्हारी गालियां ली ही नहीं तो फिर किसको दी? मेरे पास तो पहुंची ही नहीं है तुम्हारी गालियां?'

'मैंने आपको ही दी थी, पहुंची कैसे नहीं?'

'अरे भैया ! विवाह शादी में, विशेष प्रसंगों में कोई विशेष चीज बनती है तो व्यक्ति पड़ोसियों को, मित्रों और सम्बन्धियों को हांती-पांती देता है। अब वह हांती घरवाला लेता है तो उसकी हो जाती है। वह कहता है—नहीं, मुझे नहीं चाहिए तो वह कहां पहुंचेगी?'

'बाबा ! जिस घर से आई है, वहीं चली जाएगी।'

साधक ने मुस्कराते हुए कहा—'भाई! तुमने वह हांती मुझे दीं, गालियां दीं, मैंने तुम्हारी गालियां नहीं स्वीकारी तो कहां पहुंची? मैंने गाली स्वीकारी ही नहीं तो मुझे दुःख क्यों होगा?

'बाबा ! आप महान् हैं। मैं आपको समझ नहीं सका'—यह कहते हुए युवक ने अपना सिर बाबा के चरणों में झुका दिया।

दुःख होता है अन्तर्जगत् में

जो गाली को स्वीकार कर लेता है, उसे दुःख होता है और जो नहीं स्वीकारता, उसको कोई दुःख नहीं होता। दुःख पैदा होता है अन्तर्जगत् में। बाह्य जगत् में कोई दुःख नहीं है। बाह्य जगत् में कठिनाइयां हो सकती हैं, पर दुःख नहीं हो सकता। दुःख वहां है, जहां वेदना है। जहां संवेदन नहीं है, वहां कोई दुःख नहीं है। संवेदन हमारे भीतर के जगत् में है। एक व्यक्ति में संवेदन जागा, उस संवेदन में से जो निकला और वह बाहर पहुंचा तो दुःख हुआ। संघर्ष, भय, दुःख, उद्वेग—ये सब तब होते हैं, जब अन्तर्जगत् में कोई बात पहुंच जाती है। जब भीतर में कोई बात नहीं पहुंचती तब कोई समस्या नहीं होती।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान की मुद्रा में खड़े थे। राजा श्रेणिक भगवान महावीर को वंदना करने के लिए जा रहा था। मुनि ध्यान में लीन हैं। आगे-आगे एक व्यक्ति जा रहा था। नाम था दुर्मुख। उसने कहा—ध्यान किए खड़ा है। ढोंग रच रहा है। कुछ पता नहीं है। छोटे बच्चे को राज्य सौंप कर आ गया। पीछे से शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया। राज्य की दुर्दशा हो रही है और यह खड़ा-खड़ा पाखंड रच रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्मुख की बात भीतर तक पहुंच गई। जैसे ही भीतर पहुंची, ध्यान छूट गया और संग्राम शुरू हो गया। न कोई शस्त्र, न कोई सेना, न कोई सामने शत्रु। कुछ भी नहीं, पर अन्तर्जगत् में इतना युद्ध शुरू हो गया कि प्रसन्नचन्द्र ने वहीं शत्रुओं को मारना, काटना, परास्त करना शुरू कर दिया।

यह युद्ध कहां हुआ? संघर्ष कहां हुआ? बाहर जो घटना आती है, वह अन्तर्जगत् की घटना बन आती है। बाहर में मात्र एक अभिव्यक्ति होती है। जो चल रहा है, वह अन्तर्जगत् में चल रहा है। यह ठीक कहा गया—'युद्ध पहले मनुष्य के दिमाग में पैदा होता है, फिर रण-भूमि में लड़ा जाता है।' यह बात बहुत पुरानी है। भगवान महावीर ने भी यही कहा। उन्होंने दस प्रकार के शस्त्र बतलाए। उनमें से एक शस्त्र है—भाव शस्त्र। वह शस्त्र है दिमाग का। चाहे युद्ध करना है, संघर्ष करना है, गाली देना है, लड़ना है, झगड़ना है, सब कुछ पहले भाव में होता है, फिर बाह्य जगत् में आता है। सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है आंतरिक जगत् को समझना। बाह्य जगत् का परिष्कार कर लिया और अन्तर्जगत् का परिष्कार नहीं किया तो समस्या का समाधान नहीं हो सकता। चोर को मार दिया पर चोर को पैदा करने वाली शक्तियां अभी जीवित हैं।

प्राचीन कहावत है—'चोर की मां जब तक जीवित है, तब तक चोर पैदा होते रहते हैं। इस मूल कारण पर हमारा ध्यान नहीं गया। यह शिक्षा की विडंबना है कि बाह्य जगत् के परिष्कार पर तो बहुत ध्यान दिया गया, जितना देना चाहिए, शायद उससे ज्यादा दिया गया और अन्तर्जगत् के परिष्कार को बिल्कुल उपेक्षित कर दिया। ऐसा लगता है—एक हाथ और एक पैर बीस फुट का बन गया, एक हाथ, एक पैर एक फुट का रह गया। किसी बच्चे को ऐसा बना दिया जाए तो कैसा लगेगा? बीमारी के कारण थोड़ा-सा एक हाथ अथवा पैर छोटा हो जाता है तो भी गति लड़खड़ा जाती है, काम करने की क्षमता कम हो जाती है। यदि इतना असंतुलन पैदा हो जाए तो फिर क्या होगा?

प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य

आज यह असंतुलन पैदा हो रहा है। ध्यान करने का मतलब है आंतरिक जगत् का परिष्कार करना, मस्तिष्क को इतना प्रशिक्षित और परिष्कृत कर देना, जिससे भीतर का मैलापन धुल जाए, भीतर की कालिमा श्वेतिमा में बदल जाए। ईर्ष्या, भय, आवेग, वासना—ये हमारे आभामण्डल को मलिन बनाते हैं। भीतर को अपरिष्कृत करते रहते हैं और समस्याओं को जन्म देते रहते हैं। ध्यान केवल आंख मूंदकर बैठना नहीं है किन्तु उस मैल का परिष्कार करना है। प्रेक्षाध्यान चित्तशुद्धि के लिए है, शरीरशुद्धि के लिए नहीं है। मन की बात भी बहुत छोटी है। अगर हमारा ध्यान मन तक सीमित रहा तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह बाह्य जगत् की बात हो जाएगी। मन बाह्य जगत् के साथ खेलता रहता है। कोरा मन का परिष्कार या मन की चंचलता को कम कर देना प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य नहीं है। प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य है आत्मा की निर्मलता। आत्मा पर जो मैल जमा हुआ है, जो संस्कार जमे हुए हैं, उनको उखाड़ना और चेतना को निर्मल बनाना। मन जड़ है, यंत्र है, हमारे काम करने का साधन है। वह तो अपने आप ठीक हो जाएगा। सबसे बड़ा लक्ष्य है भावशुद्धि। भाव चेतना का एक हिस्सा है। चित्त चेतना का अंग है। लेश्या चेतना की एक रश्मि है।

भावशुद्धि, लेश्याशुद्धि, चित्तशुद्धि—ये सब आत्मा से जुड़े हुए हैं। इन सबको एक शब्द में कहा गया—कषायमुक्ति, कषाय से मुक्त होना। आदमी जब-जब क्रोध करता है, तब-तब मलिन बनता है, पुरानी मलिनता को पोषण दे देता है और नई मलिनता की एक चादर ओढ़ लेता है। जब-जब आदमी अहंकार करता है, उस आवरण को और प्रगाढ़ बना देता है। जब आदमी माया करता है, तब दूसरे को ही नहीं ठगता, अपने आपको ठगने में एक नई बात जोड़ देता है। जब-जब आदमी लोभ के आवेग में जाता है तब केवल पदार्थ का संग्रह ही नहीं करता, उसके साथ-साथ सघन कर्म परमाणुओं का संग्रह और संचय कर लेता है। पदार्थ का संग्रह तो मरते समय छूट जाता है पर वह कर्म परमाणुओं का संचय तो पता नहीं, कितने जन्मों तक बराबर साथ रहता है और अपना परिणाम भुगताता है। यह कषाय का परिवार इतना ही नहीं है। घृणा, भय, संयम के प्रति अरुचि, असंयम के प्रति आकर्षण—यह सारा कषाय से ही पैदा होता है। सारी समस्याओं का मूल है कषाय। वह आदमी को रंगीन बना देता है और ऐसा रंग चढ़ाता है कि दूसरा रंग कभी दिखाई नहीं देता। उस कषाय से मुक्ति पाना अन्तर्जगत् का परिष्कार है। ऐसी शिक्षा होनी चाहिए, जिससे कि आदमी कषाय से मुक्ति पा सके।

कहां है प्रशिक्षण?

एक व्यक्ति विद्यालय में पढ़ा, महाविद्यालय में पढ़ा। अनेक डिग्रियां प्राप्त कर ली। पी.एच.डी. की, डाक्टर बन गया, किन्तु परिवार के साथ सामंजस्य नहीं कर सका पत्नी के साथ भी सामंजस्य नहीं बिठा सका। सबके साथ लड़ता-झगड़ता रहता है। क्या पढ़ाई से मस्तिष्क का परिष्कार हुआ? खूब पढ़ाई कर ली, पर नशे में चूर रहता है। हमने ऐसे विद्वानों को देखा है, जो शराब भी पीते हैं और ड्रग्स का भी उपयोग करते हैं। क्या मस्तिष्क का प्रशिक्षण हो गया? ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने पढ़ाई तो बहुत कर ली पर थोड़ी-सी बात पर आत्महत्या करने को तैयार रहते हैं। थोड़ी-सी कुछ घटना घटती है और एक पढ़ा-लिखा आदमी ऐसा करता है तब ऐसा लगता है—जीवन में जो समग्रता आनी चहिए, मस्तिष्क का जो समग्र विकास होना चाहिए, वह कुछ भी नहीं हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान मस्तिष्क के उस हिस्से को प्रशिक्षित करने के लिए है, जो कषाय के लिए उत्तरदायी है। मेडिकल साइंस की भाषा में वह इमोशनल एरिया—कषाय का क्षेत्र है। मस्तिष्क के अनेक भाग हैं। आज मस्तिष्क पर बहुत शोध हो रही है और बहुत जानकारियां मिल रही हैं। एक है बुद्धि का क्षेत्र। आदमी ने बुद्धि का बहुत विकास किया है। एक है स्मृति का क्षेत्र। थोड़ी-सी स्मृति कम होती है व्यक्ति चिंतित हो जाता है। यह चाह प्रबल बन जाती है—स्मृति विकास के लिए मुझे क्या प्रयोग करना चाहिए? वह डॉक्टरों के पास जाता है, दवाई लेता है, जिससे कि स्मृति का विकास हो जाए। बुद्धि का विकास, स्मृति का विकास--इनकी चिन्ता बहुत करता है, पर क्रोध ज्यादा आता है, लोभ ज्यादा आता है, इनकी चिंता नहीं करता। शायद ही वह डॉक्टर के पास जाता होगा और यह कहता होगा—डॉक्टर साहब ! मुझे क्रोध बहुत आता है, कोई दवाई दें। शायद किसी हॉस्पिटल में ऐसा विभाग नहीं मिलेगा और है भी नहीं। लोभ के लिए तो कोई दवा लेने जाता ही नहीं है। व्यक्ति यह समझता है—जितना लोभ, उतना ही कल्याण। लोभ कम हुआ तो कल्याण भी कम हो जाएगा। एक ऐसी धारणा बन गई, शिक्षा की ऐसी हमारी प्रणाली बन गई कि बस दिमाग को उस दिशा में शिक्षित करना है, जिससे आदमी ज्यादा लोभ करे, ज्यादा कमा सके। ज्यादा क्रोध करे और ज्यादा ठीक काम कर सके। यह माना जा रहा है—क्रोध करना बहुत जरूरी है। अगर हम क्रोध नहीं करेंगे तो हमारे कर्मचारी काम ही नहीं करेंगे। यह धारणा बद्धमूल हो गई—भई ! पचास आदमियों से काम लेना है, फैक्ट्री को चलाना है, उद्योग को चलाना है, हजार-दो हजार अथवा पांच हजार मजदूरों को संभालना है तो क्रोध करना भी जरूरी है। इसके बिना काम नहीं चलेगा।

उपाय है ध्यान

मस्तिष्क का सारा प्रशिक्षण क्रोध, अहंकार और कपट की दिशा में हो रहा है। मान लेना चाहिए--क्रोध जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे व्यक्ति मलिनता की दिशा में कदम आगे बढ़ा रहा है। इसलिए अनेक समस्याएं पैदा हो गईं। ये जो संघर्ष और लड़ाइयां हो रही हैं, गोलियां चल रही हैं, क्यों नहीं चले? जब हमने मस्तिष्क को एक दिशा में, कषाय की दिशा में प्रशिक्षित कर दिया और कषायमुक्ति की दिशा में कुछ भी नहीं किया तब वह मस्तिष्क यह सारा क्यों नहीं करेगा? जो हो रहा है, उसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। जो नहीं हो रहा है, उस ओर हमारा ध्यान आकर्षित होना जरूरी है। उसका एक उपाय है ध्यान।

बौद्धिक विकास का उपाय है—पाठ्यक्रम। इतना पढ़ो, पुस्तकों को पढ़ो। टेक्नोलॉजी को समझो, उसका ज्ञान करो। यह है मस्तिष्कीय कौशल यानी बाह्य जगत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में काम करने की क्षमता और कुशलता का विकास। उसका प्रशिक्षण चल रहा है। दूसरा पहलू बाहर के जगत् की कुशलता का नहीं है। आप यह न मानें कि ध्यान करने से आपकी बौद्धिक क्षमता बहुत बढ़ जाएगी और आप व्यापार करने में बहुत ज्यादा सफल हो जाएंगे। यह हो सकता है, सफलता भी मिलती है, किन्तु इसे मुख्य बात न मानें। मुख्य बात यह है कि ध्यान के द्वारा मस्तिष्क का वह भाग प्रशिक्षित हो जाएगा, जो समस्या पैदा कर रहा है, जो अपरिष्कृत है। वह भाग प्रशिक्षित होकर अन्तर्जगत् में पैदा होने वाली समस्याओं पर नियंत्रण करेगा। फिर आपके मन में क्रोध की बात ज्यादा नहीं आएगी, अहंकार नहीं सताएगा, फिर लोभ पर भी नियंत्रण हो जाएगा और यह सचाई सामने आएगी—आखिर मैं सामाजिक विषमता क्यों पैदा कर रहा हूं? क्यों एक ओर इतना बड़ा पहाड़ बनाकर दूसरी जगह गड्ढा बना रहा हूं?

तब होगा समस्या का अन्त

एक है बाहर के जगत् का संचालन करने वाला मस्तिष्क और दूसरा है भीतर के जगत् का संचालन करने वाला मस्तिष्क। इन दोनों मस्तिष्कों को हम साफ-साफ समझ लें और इस बात को भी समझ लें—जब तक भीतर के जगत् का संचालन करने वाला मस्तिष्क परिष्कृत नहीं होगा, तब तक समस्याओं का कभी अंत नहीं होगा। हिंसा, हत्या, आत्महत्या, परहत्या, भ्रूणहत्या--ये जितनी हिंसाजनित समस्याएं हैं, उनका कोई अंत नहीं होगा। चाहे अणुबम की जगह महाअणुबम बन जाए, समस्या का अंत नहीं आएगा, क्योंकि उनको बनाने वाला, उनका संचालन करने वाला मस्तिष्क जिन्दा है और वह जब तक जिन्दा है, तब तक इनका अंत नहीं होगा। यह बात उजली दुपहरी की भांति साफ-साफ हमारे समझ में आ जाए—केवल एक प्रकार की शिक्षा से समस्याओं का समाधान नहीं होगा। हमें समस्याओं का समाधान करना है तो बौद्धिक विकास के साथ उस भावनात्मक मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना होगा, जो निषेधात्मक भावों को जन्म दे रहा है। उसे इतना प्रशिक्षित कर लें कि ये निषेधात्मक भाव समाप्त हो जाएं, वहां से सृजनात्मक-विधायक भाव बाहर निकलें और वे भाव बाहर के जगत् को भी अधिक सुन्दर बना सकें।

आज का जगत् सुन्दर नहीं है। जहां चारों तरफ आतंकवाद, बंद, महाबंद, कर्फ्यू चलता रहता है, वहां क्या सुन्दर है? कश्मीर की घाटी सौन्दर्य की छाया में जीती थी, आज कर्फ्यू के साये में जी रही है। बाहर का जगत् सुन्दर कैसे बना? कश्मीर सुन्दर था, कश्मीर का सौन्दर्य दर्शनीय था। आज उसे असुन्दर किसने बना दिया? गोलियों ने, राइफलों ने, मशीनगनों ने, बमों ने, बम के विस्फोटों ने उस सुन्दर घाटी को आज इतना असुन्दर बना दिया है कि कोई यात्री वहां जाना नहीं चाहता। जहां यात्री जाते थे, वहां जाने के नाम से आज सब डरते हैं। यह भयानक स्थिति किसने पैदा की है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस मस्तिष्क ने पैदा की है, जिसमें लोभ है, भय है, क्रोध है और भय को पैदा करने वाली शक्तियां हैं। हम इस बात पर फिर ध्यान केन्द्रित करें—ध्यान के द्वारा हमें उस मस्तिष्क को शिक्षित करना है जो सौन्दर्य को अभिव्यक्ति दे सके, जो बाह्य जगत् को मैला और दूषित न बनाए। उस मस्तिष्क को सुशिक्षित करने का सबसे बड़ा माध्यम है ध्यान। हम उसका मूल्यांकन करें, ध्यान के प्रति हमारा आकर्षण बढ़े और एकाग्रता के साथ हम ध्यान को साधें, यही समस्या मुक्ति का पथ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३

ध्यान और मस्तिष्कीय प्रशिक्षण

वस्तु को जानने का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है—अनेकान्त। उसका एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—नयवाद। प्रत्येक वस्तु, चाहे वह बड़ी है या छोटी, परमाणु है या हाथी, सबमें अनंत धर्म और अनंत पर्याय होते हैं। उन अनंत पर्यायों को जानने के लिए हमारा दृष्टिकोण भी अनंत होना चाहिए। आचार्य सिद्धसेन ने लिखा—'जितने बोलने के प्रकार हैं, उतने ही नय हैं और जितने नय हैं, उतने ही बोलने के प्रकार हैं।"

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया।
जावइया नयवाया तावइया चेव हुंति वयणपहा।।

हम किसी एक दृष्टिकोण से किसी एक वस्तु का प्रतिपादन नहीं कर सकते। यह नयवाद का दार्शनिक स्वरूप है। उसका आध्यात्मिक स्वरूप यह है—जितनी हमारी वृत्तियां हैं उतने ही मस्तिष्क में प्रकोष्ठ हैं।

यह मस्तिष्क छोटा-सा लगता है किन्तु है बहुत महत्त्वपूर्ण। मनुष्य का जितना आचरण और व्यवहार है, जितनी वृत्तियां हैं, उन सबके प्रकोष्ठ मस्तिष्क में हैं। मनुष्य कलह और कदाग्रह करता है, क्रोध और घृणा करता है, ईर्ष्या और लोभ करता है। इन सारी वृत्तियों के प्रकोष्ठ, चाहे वे सौ से अधिक हैं, हमारे मस्तिष्क में हैं। यदि उन कोष्ठों को समझ लिया जाए, बदल दिया जाए तो व्यक्तित्व का रूपांतरण हो सकता है।

ध्यान का एक अर्थ है मस्तिष्कीय प्रकोष्ठों को समझना, प्रयोग के द्वारा उनमें परिवर्तन लाना। दर्शन केन्द्र पर ध्यान का प्रयोग कराया जाता है। उसका एक विशेष अर्थ है। व्यक्ति इस केन्द्र पर ध्यान के द्वारा अनेक प्रकोष्ठों को जागृत करता है, सक्रिय बना देता है और अनेक प्रकोष्ठों को सुला देता है, निष्क्रिय बना देता है। इस केन्द्र का सम्बन्ध काम-वासना से भी है, अन्य वृत्तियों से भी है। दर्शनकेन्द्र से बारह प्रकार के स्राव स्रावित होते हैं। वे स्राव मानव के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। यदि उन स्रावों को बदलना है तो दर्शनकेन्द्र को पकड़ना होगा। व्यक्ति को क्रोध सताता है। ज्योति-केन्द्र पर ध्यान करें तो क्रोध का प्रकोष्ठ बदलना शुरू हो जाएगा। जो क्रोध के लिए जिम्मेवार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, सक्रिय है, उसमें परिवर्तन आना शुरू हो जाएगा और जो अक्रोध का प्रकोष्ठ है, जो अक्रोध की प्रणाली है, वह अपना काम करने लग जाएगी।

चिन्तन भी समाधान देता है

ध्यान एक प्रकार से मस्तिष्कीय प्रशिक्षण का प्रयोग है। इस संदर्भ में केवल अचिन्तन ध्यान का ही नहीं, चिन्तन ध्यान का भी बहुत महत्त्व है। एक ऐसा विकल्प आता है, एक ऐसा चिन्तन आता है कि जिससे मस्तिष्क की सारी क्रियाएं बदल जाती हैं। एक परिवर्तन घटित होता है, समस्या को समाधान मिल जाता है। चिन्तन व्यर्थ नहीं है। चिन्तन के द्वारा बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान निकलता है। जो लोग ध्यान में नहीं गए हैं, उन्होंने चिन्तन के माध्यम से ही समस्याओं के समाधान खोजे हैं। वह भी समस्या के समाधान का एक प्रयोग है। हम उसे अस्वीकार कैसे करें? ध्यान ही सब समस्याओं का एकमात्र समाधान नहीं है, किन्तु यह निश्चित है कि ध्यान से चिन्तन में शुद्धि और पवित्रता आती है। चिन्तन की विशुद्ध धारा व्यक्ति के चित्त को समाहित बना देती है।

पिता का अचानक देहावसान हो गया। दो पुत्र थे। पुत्रों ने पिता की सारी सम्पत्ति का बंटवारा कर लिया लेकिन एक सोने की अंगूठी शेष रह गई। बड़े भाई ने कहा—यह अंगूठी मैं लूंगा। छोटा भाई बोला—यह अंगूठी मैं लूंगा। दोनों अपने आग्रह पर अड़ गए। इस आग्रह ने विग्रह का रूप ले लिया। दोनों ने अपनी समस्या समझदार व्यक्ति के सामने रखी। उसने कहा—तुम दोनों किसी को मध्यस्थ बनाओ, उनके सामने अपनी समस्या रखो और वह जो निर्णय दे, उसे मान्य कर लो। इसके सिवाय समाधान का कोई विकल्प नहीं है। दोनों भाइयों ने एक स्वर में कहा—'हम आपको ही मध्यस्थ स्वीकार करते हैं। आप जो निर्णय देंगे, उसे मान्य करेंगे।' उसने कहा—'तुम तीन-चार दिन के लिए यह अंगूठी मुझे दो। चार दिन बाद मैं अपना निर्णय सुना दूंगा।'

मध्यस्थ को अंगूठी मिल गई। वह अंगूठी लेकर सीधा स्वर्णकार के पास गया। उसने स्वर्णकार से कहा—इस एक अंगूठी से एक समान दो अंगूठियां बना दो। दोनों का वजन इस अंगूठी के समान होना चाहिए। स्वर्णकार ने सोने में कुछ मिलाया और दो समान अंगूठियां बना दी।

मध्यस्थ चौथे दिन दोनों अंगूठियां लेकर उनके घर पहुंचा। पहले बड़े भाई को उसने एकांत में बुलाया और कहा—'देखो! तुम थोड़ी उदारता बरतो, अंगूठी का मोह छोड़ दो। आखिर वह तुम्हारा छोटा भाई है। उसके पास यह अंगूठी जाएगी तो क्या फर्क पड़ेगा?' बड़ा भाई बोला—'आप यह बात बिल्कुल न कहें। मैं बड़ा हूं इसलिए अंगूठी पर मेरा ही अधिकार होना चाहिए और मैं अपने अधिकार को छोड़ नहीं सकता।' जह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आग्रह होता है वहां पकड़ इतनी मजबूत होती है कि व्यक्ति टस से मस नहीं होता। वह टूट भले ही जाए, झुकता नहीं है। मध्यस्थ ने कहा–'यदि तुम उसे नहीं छोड़ना चाहते तो मैं तुम्हें दे दूंगा पर शर्त यह है कि तुम इस अंगूठी को न पहनोगे और न किसी को दिखाओगे।' बड़े भाई ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया–मुझे अंगूठी से मतलब है। वह घर में होनी चाहिए। उसे न पहनूंगा और न दिखाऊंगा। मध्यस्थ ने अपनी जेब से एक अंगूठी निकाली और उसे दे दी। बड़ा भाई खुश हो गया। उसने कहा–मुझे न्याय मिल गया।

यह स्वार्थ का दृष्टिकोण है–मुझे मिल गई तो न्याय हो गया और छोटे भाई को मिल जाती तो अन्याय हो जाता।

चार घंटे बाद मध्यस्थ ने छोटे भाई को बुलाया। उसे समझाते हुए कहा–'देखो! एक अंगूठी के लिए झगड़ना अच्छा नहीं लगता। वह तुम्हारा बड़ा भाई है। तुम्हें उसका सम्मान करना चाहिए। वह अंगूठी तुम्हारे पास रहे या तुम्हारे बड़े भाई के पास रहे, एक ही तो बात है।' छोटा भाई बोला–'आपको उपदेश देने के लिए मध्यस्थ नहीं बनाया है। उपदेश देना किसी धर्मगुरु का काम हो सकता है, आपका नहीं। मुझे अंगूठी छोड़ने की सलाह नहीं, अंगूठी चाहिए।'

मध्यस्थ ने मृदुस्वर में कहा–'भाई ! तुम्हारा इतना आग्रह है तो मैं अंगूठी तुम्हें दे देता हूं किन्तु न उसे पहनना है और न किसी को दिखाना है।' छोटे भाई ने कहा–'मैं अंगूठी के विषय में कभी चर्चा ही नहीं करूंगा।' मध्यस्थ ने दूसरी अंगूठी छोटे भाई को दे दी।

दोनों भाई खुश हो गए। दोनों यह सोच रहे हैं कि अंगूठी दूसरे भाई को नहीं मिली। अंगूठी की उपलब्धि और इस चिन्तन ने दोनों को खुश बना दिया। यथार्थ दोनों से अज्ञात रह गया किन्तु एक जटिल समस्या का समाधान हो गया।

अचिन्तन की भूमिका

आदमी की सूझबूझ और चिन्तन से ऐसा मार्ग निकलता है कि समस्या समाहित हो जाती है और चिन्तनशून्य व्यक्ति समस्या को उलझा देता है, उसका कभी समाधान नहीं कर पाता।

चिन्तन से अगली भूमिका है अचिन्तन की, ध्यान की। ध्यान की अवस्था में जिन सचाइयों का पता चलता है, चिन्तन से भी कभी-कभी उन सचाइयों का पता नहीं चलता। अचिन्तन की अवस्था में ऐसे गूढ़ रहस्यों का पता चलता है, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। विज्ञान के बहुत सारे आविष्कार अचिन्तन की अवस्था में हुए हैं। मैं यह मानता हूं–एक वैज्ञानिक को अवश्य ही ध्यानी होना होता है जो ध्यानी नहीं है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह वैज्ञानिक नहीं हो सकता। वह खोज करने वाला अथवा अनुसंधाता नहीं हो सकता। जो नए पर्यायों और नए तथ्यों को खोजता है, उसे वह दृष्टि स्वप्न में मिलती है अथवा गहन ध्यान की अवस्था में मिलती है। कभी-कभी वह ध्यान की बहुत गहरी अवस्था में चला जाता है। वह वैज्ञानिक दुनिया की दृष्टि में विक्षिप्त जैसा हो जाता है। वह अपने अनुसंधान में इतना खोया रहता है कि उसे बाहरी दुनिया का नहीं, अपने जीवन से जुड़े क्रिया-कलापों का भी बोध नहीं रहता।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। टी.टी. यात्रियों की टिकटें चैक कर रहा था। उसने आइंस्टीन से टिकट दिखाने को कहा। आइंस्टीन ने अपनी जेबों को टटोला, इधर-उधर देखा पर टिकट नहीं मिली। टी.टी. बोला–'महाशय! मैंने आपको पहचान लिया है। आप अब कष्ट न करें क्योंकि मैं जानता हूं–आप हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आइंस्टीन हैं। आप कभी रेल-सेवा की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेंगे, अप्रामाणिकता नहीं करेंगे।' आइंस्टीन बोले–'भाई ! तुम्हारा कथन सही है किन्तु मुसीबत मेरे सामने है। टिकट बिना पता कैसे चलेगा कि मुझे कहां उतरना है।'

यह घटना सुनकर हंसी आ सकती है। दुनिया का महान वैज्ञानिक और महान गणितज्ञ जिसने अपनी खोजों और गणितीय समीकरणों से सारे संसार को प्रभावित किया, उसे यह भी पता नहीं है कि उसे कहां जाना है। वे इतनी गहराई में खो जाते हैं कि बाहरी बातों का पता ही नहीं रहता। यह एक तथ्य है–बिना एकाग्रता के अथवा बिना ध्यान के कोई भी आदमी गहरे सत्यों को देख नहीं सकता। जितने भी महान वैज्ञानिकों द्वारा सत्य खोजे गए हैं, वे गहरी एकाग्रता की दशा में ही उपलब्ध हुए हैं।

व्यक्ति मरना क्यों चाहता है?

हमारे सामने मस्तिष्कीय प्रशिक्षण के दोनों आयाम हैं–चिन्तन का आयाम और ध्यान का आयाम। जो अपना रूपांतरण करना चाहता है, उसे ध्यान अवश्य करना चाहिए। आज ध्यान का केवल धार्मिक क्षेत्र में ही महत्त्व नहीं है। जो व्यक्ति अच्छा जीवन जीना चाहता है, संतुलन, सहअस्तित्व और शांत सहवास चाहता है, अपने भीतर उठने वाली मानसिक तरंगों को शांत रखना चाहता है उसके लिए भी ध्यान का महत्त्व कम नहीं है। मैंने बहुत लोगों से यह सुना–अमुक व्यक्ति जीना नहीं चाहता, मरना चाहता है। यह स्वर क्यों उभरता है? एक ओर आगम कहता है–प्रत्येक व्यक्ति जीना चाहता है, उसे जीवन प्रिय है। दूसरी ओर व्यक्ति कहता है–'मैं जीवन से ऊब चुका हूं। ऐसे जीवन से मरना अच्छा है।' यह मरने की बात क्यों आती है? व्यक्ति कभी जहर खा लेता है, कभी भारी मात्रा में नींद की गोलियां ले लेता है, कभी कुछ आत्मघाती प्रवृत्ति कर लेता है। वह मरना चाहता है और इसलिए मरने के साधनों का प्रयोग कर लेता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न है—वह ऐसा क्यों करता है? ऐसा लगता है कि वह अपनी मानसिकता को सम्यक् प्रकार से समझ नहीं पाता, उसे बदल नहीं पाता। वह सोचता है, यह जीवन क्या है? दुःखों का जाल है। इतनी मानसिक वेदना है, इतना संताप और भार है। वह इन सबसे व्यथित होकर मरने की सोचने लग जाता है, आत्महत्या कर लेता है। हिन्दुस्तान में प्रतिवर्ष हजारों आत्महत्याएं होती हैं। जापान, अमेरिका जैसे विकसित देशों में आत्महत्या की घटनाएं बहुत अधिक होती हैं। इसलिए होती हैं कि जीवन को ठीक से समझा नहीं गया, मन को संभाला नहीं गया। जिस बच्चे को ठीक से संभाला नहीं जाता, वह उद्दंड बन जाता है। हमारा मन भी एक बच्चे जैसा है। उसे संभाला नहीं जाता है तो वह उद्दंड और आक्रामक बन जाता है। इतना आक्रामक बन जाता है कि वह व्यक्ति को ही मरने के लिए विवश कर देता है। दूसरा कोई नहीं आएगा, व्यक्ति का मन ही उसे मारने के लिए तैयार हो जाएगा। आत्महत्या का कारण भी यही है।

समस्या है प्रवृत्ति की आवृत्ति

मन को समझना, मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना इसलिए जरूरी है कि आदमी घृणा और ईर्ष्या से मुक्त जीवन जी सके, सहिष्णुता और अहिंसा का जीवन जी सके। आज की बहुत बड़ी समस्या है असहिष्णुता। जो माता-पिता हैं और जिनके बच्चे हैं, वे जानते हैं—आजकल के बच्चों में सहिष्णुता कितनी है। यदि पिता कुछ कह देता है तो दस-बारह वर्ष का लड़का घर से भाग जाता है। लड़कियां भी घर से पलायन कर जाती हैं। यह बीमारी क्यों बढ़ रही है? इसलिए कि मन और मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने का प्रयत्न नहीं किया गया। यदि अहिंसा, मैत्री और करुणा की भावना से मस्तिष्क प्रशिक्षित हो जाए तो ये घटनाएं अपने आप समाप्त हो जाएंगी। मस्तिष्कीय प्रशिक्षण होने पर ऐसी घटनाओं की संभावना ही नहीं रहती। ऐसा व्यक्ति अपने प्रति न्याय करेगा, अच्छा जीवन जीएगा। जिसका मस्तिष्क प्रशिक्षित नहीं होता, वह दुष्प्रवृत्ति की आवृत्ति करता चला जाता है—घृणा की आवृत्ति, हिंसा और आक्रामकता की आवृत्ति। ये आवृत्तियां होते-होते दिमाग ऐसा बन जाता है कि वह परेशान हो जाता है। उसे ऐसा लगता है, मरने के सिवाय अब कोई विकल्प नहीं है। नकारात्मक वृत्ति की आवृत्तियों से आदमी ऊब जाता है।

एक नेता को सभा में भाषण देना था। समय था पन्द्रह मिनट। वह एक घण्टे तक बोलता रहा। इतना धैर्य श्रोताओं में कहां से आता? श्रोताओं ने मंच पर चप्पल और जूते फेंकने शुरू कर दिए। नेता शर्मिंदा हुआ। वह आफिस में आया। सचिव को बुलाकर डांटा—तुमने मेरी बेइज्जती करा दी। इतना लम्बा भाषण लिख दिया। मुझे बोलना था पंद्रह मिनट। तुमने एक घण्टे का भाषण बना दिया। सचिव ने कहा—महाशय ! भाषण तो पन्द्रह मिनट का ही था। तीन उसकी कार्बन कापियां थीं। आप एक भाषण की चारों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतियों को पढ़ते चले गए। इसका मैं क्या करूं?

आदमी इतनी आवृत्तियां करता है कि एक ही बात को रटता चला जाता है। यह रट कभी पूरी नहीं होती और समस्या का कोई समाधान नहीं मिलता। इन हिंसा, घृणा आदि आवृत्तियों को कम करने के लिए मौलिक और नई बात पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। ध्यान हमारी मौलिक चेष्टा है, अपने अस्तित्व तक पहुंचने की चेष्टा है, मन को संतुलित करने का प्रयत्न है। जैसे ही मन संतुलित बनता है, निषेधात्मक विचार समाप्त हो जाते हैं। हम ध्यान की गहराइयों में जाने की बात छोड़ भी दें, सब लोगों के लिए यह संभव नहीं है। जिसमें श्रद्धा और आकर्षण है, वे आत्मा और अध्यात्म की गहराइयों में जाने में रस लेते हैं। उनको रस इतना आता है कि इक्षुरस भी फीका लगने लग जाता है किन्तु जिनमें इतना आकर्षण नहीं है, उनके लिए भी ध्यान करना जरूरी है। वह इसलिए जरूरी है कि वे कम से कम अपनी मानसिक समस्याओं से जूझ सकें, उनका समाधान स्वयं ढूंढ सकें।

एक दवा है ध्यान

कंठ से सिर तक का जो भाग है, वह उलझन पैदा करने वाला भी है, उलझनों को सुलझाने वाला भी है। यदि हम ठीक बटन दबाएं तो प्रकाश हो जाएगा। यदि बटन दबाना न जानें तो अन्धकार सघन हो जाएगा। अन्धकार और प्रकाश—दोनों हैं। हमें उस भाग को प्रशिक्षित करना है, जिससे मस्तिष्क शांत और संतुलित रहे, उत्तेजित न हो। कोई भी उत्तेजना का क्षण आता है, सबसे पहले सिर गर्म होता है। जिस समय सिर गर्म होता है, उस समय आप जो कुछ भी सोचेंगे, वह चिन्तन सही नहीं होगा, वह निर्णय सही नहीं होगा। जिन-जिन व्यक्तियों ने जब कभी दिमाग की गर्मी में निर्णय लिया है, वह गलत ही सिद्ध हुआ है। अनेक बार इस भाषा में कहा जाता है—ठण्डे दिमाग से सोचो, एकांत, शांत स्थिति में सोचो। दिमाग को गर्म करना अच्छा नहीं है। उत्तेजना का कार्य है दिमाग को गर्म करना। यह ललाट का भाग, इमोशनल एरिया है, कषाय का क्षेत्र है। आप ठण्डा रखेंगे, शांत और संतुलित रखेंगे तो चिन्तन सही होगा, निर्णय सही होगा और प्रवृत्तियां सही ढंग से चलेंगी। जब-जब यह गर्म होता है, मनुष्य डॉक्टर के पास जाता है, दवा लेता है, शामक औषधियों का सेवन करता है। ध्यान से बड़ी शामक औषधि क्या होगी? जब पूरे ललाट पर श्वेत रंग का ध्यान करते हैं, दिमाग की गर्मी का विलयन हो जाता है। यह सबसे बड़ी शामक औषधि है। मस्तिष्क को शांत रखने की इससे बड़ी कोई दवाई सामने नहीं आई। जितनी औषधियां हैं, वे एक बार शमन करती हैं किन्तु उनके साइड इफेक्ट्स भी बहुत होते हैं। ध्यान एक ऐसी दवा है, जिससे दिमाग शांत रहता है और उसका कोई बुरा प्रभाव नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंधेरी कोठरी में ढेला न फेंके

ध्यान करने वाले को इस बात का अनुशीलन करते रहना चाहिए कि मैं ध्यान क्यों कर रहा हूं? ध्यान का उद्देश्य क्या है? ध्यान केवल अंधेरी कोठरी में ढेला फेंकने जैसी बात नहीं है। व्यक्ति ध्यान करता चला जाए और उसे यह पता न हो कि मैं क्यों कर रहा हूं तो उसका अर्थ क्या होगा? व्यक्ति को भूख लगती है तो रोटी खाता है, प्यास लगती है तो पानी पीता है। उसे पूछा जाए--तुम रोटी क्यों खा रहे हो? पानी क्यों पी रहे हो? क्या वह कहेगा कि मुझे पता नहीं है? यदि ऐसा उत्तर देता है तो लोग समझेंगे कि यह पागल आदमी है। हम क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं, इसका पता तो होना ही चाहिए। ज्ञान असीम है, ज्ञान के अनन्त पर्याय हैं। उन्हें प्रत्येक व्यक्ति नहीं जान सकता किन्तु जिन पर्यायों और अवस्थाओं के साथ हमें जीना है, उनका ज्ञान तो होना ही चाहिए। यह विडंबना ही है कि आदमी खाता चला जाता है किन्तु उसे यह पता नहीं रहता कि क्यों खा रहा है? यदि यह पता चल जाए तो बीमारियां बहुत कम हो जाएं। पेट की बीमारी है और खूब डटकर खा रहा है। यदि पूछा जाए--क्यों खा रहे हो तो शायद वह सही उत्तर नहीं दे पाएगा। इस अवस्था में पेट को विश्राम देना चाहिए, जिससे पेट की क्रिया सही हो जाए। एक ओर दवा ले रहा है, दूसरी ओर ठूंस-ठूंस कर खा रहा है तो दवा का क्या असर होगा? अम्लता (एसिडिटी) की बीमारी है। थोड़ी सी कठिनाई आती है और चाय पी लेता है। वह यह नहीं सोचता कि यह चाय एसिडिटी की बीमारी को और अधिक भयंकर बना देगी। पित्त की बीमारी है। तीक्ष्ण चीज खाएगा तो पित्त अधिक कुपित हो जाएगा।

स्वास्थ्य के संदर्भ में यह जानकारी अवश्य होनी चाहिए कि मैं क्या खा रहा हूं और क्यों खा रहा हूं। बहुत सारे लोग ऐसे होते हैं, जिनका गला खराब है, फेफड़े खराब हैं किन्तु जब आइसक्रीम सामने आती है, तब वे अपने आपको रोक नहीं पाते। आंत और गले की शत्रु है आइसक्रीम। गले और आंत की बीमारी में आइसक्रीम खाएंगे तो गला ठीक होगा या अधिक खराब? स्वर कोकिला लता मंगेशकर ने अपने मधुर कंठों का रहस्य बताते हुए एक बार कहा था--'मैं अपने गले को इसलिए ठीक रख पा रही हूं कि मैं कभी ठंडी चीज का सेवन नहीं करती।' जो बहुत ठंडे पदार्थ का सेवन करेगा उसका गला भी खराब होगा, आंतें भी खराब होंगी। शरीर का जो तापमान है, उससे अधिक ठंडा या गरम खाने का अर्थ है बीमारी को निमंत्रण देना। यदि व्यक्ति इस सचाई को जाने, इसके अनुरूप चले तो स्वास्थ्य की समस्याएं जटिल नहीं बनेगीं।

अज्ञान मिटे

समस्या यह है हमारे प्रत्येक आचरण और व्यवहार के साथ यह अज्ञान जुड़ा हुआ है। इस अज्ञान का दूर होना जरूरी है। एक साधक को यह बोध होना चाहिए--मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीर्घश्वास प्रेक्षा क्या कर रहा हूं? मैं कायोत्सर्ग क्या कर रहा हूं? मैं अन्तर्यात्रा क्यों कर रहा हूं? इन सबका पूरा प्रशिक्षण और बोध होता है तो व्यक्ति नए प्रकाश और आलोक का अनुभव करता है। हिसार में एक सम्मेलन हो रहा था। विषय था योग का। प्रेक्षाध्यान के दो प्रशिक्षकों ने भी उसमें भाग लिया। उन्होंने प्रेक्षाध्यान को विज्ञान के संदर्भ में प्रस्तुत किया। उस सम्मेलन में भाग ले रहे बुद्धिजीवी विषय की वैज्ञानिक विवेचना को सुनकर विस्मित हो गए। उन्होंने कहा—आप इतनी बातें कैसे जानते हैं? ये बात आपको कहां से मिलीं? क्या आप वैज्ञानिक हैं? आप वैज्ञानिक नहीं हैं फिर भी इतनी बातें कैसे जानते हैं? उन्होंने बताया—प्रेक्षाध्यान का जो प्रशिक्षण चलता है, उसमें केवल अध्यात्म का ही नहीं, विज्ञान का भी पूरा समावेश है। वस्तुतः यह अपेक्षित है। ध्यान के साथ शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान आदि विज्ञान की अनेक उपयोगी शाखाओं का प्रशिक्षण चलना चाहिए। यदि केवल ध्यान का प्रशिक्षण चले और शरीर के रहस्यों को न जानें तो ध्यान की सार्थकता क्या होगी? केवल ध्यान करें और यह न जानें कि शरीर के अवयवों का फंक्शन क्या है तो ध्यान की उपयोगिता कहां होगी? ध्यान करें और मनोविज्ञान के सूत्रों को न जानें तो भी उलझनें आएंगी। ध्यान के साथ इन सबका ज्ञान हो तो मार्ग आलोकमय बन जाएगा।

ज्ञान और ध्यान

ज्ञान और ध्यान दोनों का योग होना चाहिए। हम ऐसा नहीं सोचते कि ध्यान शिविर में केवल ध्यान ही चले, ज्ञान का उपक्रम न चले। यदि दिन भर ध्यान ही ध्यान चलेगा तो मस्तिष्क पर अतिरिक्त भार आएगा। वह हितकर नहीं है। मस्तिष्कीय कार्य बदलना चाहिए। ध्यान के समय में ध्यान चले और शेष समय में ज्ञान भी चले। ज्ञान बहुत अनिवार्य है, आवश्यक है। एक बहुत प्राचीन किन्तु मार्मिक श्लोक है, जो जैन परम्परा में भी प्रचलित है और वैदिक परम्परा में भी।

स्वाध्यायात् ध्यानमध्यास्तां, ध्यानात् स्वाध्यायमामनेत्।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या, परमात्मा प्रकाशते।।

कहा गया—तुम ध्यान करो। जब यह अनुभव करो कि ध्यान करते-करते थक गया हूं तो तुम ध्यान को छोड़ दो और स्वाध्याय में लग जाओ। स्वाध्याय करते-करते ऐसा लगे कि थक गया हूं तो स्वाध्याय को छोड़ दो, फिर ध्यान शुरू कर दो। स्वाध्याय और ध्यान—ये दोनों ही आत्मा को प्रकाशित करने वाले हैं।

हम एकांगी न बनें। यह न मानें—केवल ध्यान ही सब कुछ है अथवा केवल ज्ञान ही सब कुछ है। ज्ञान और ध्यान—दोनों का योग करें। यह नय-सापेक्ष दृष्टिकोण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। प्रेक्षाध्यान की समग्र पद्धति अनेकांत और सापेक्षवाद पर आधारित है। स्वाध्याय का भी मूल्य है, ध्यान का भी मूल्य है। दोनों का समन्वय और संतुलन साधें। हम पूरा जानें भी और ध्यान भी करें।

विज्ञान को भी पहचानें

सन् १९७९ का प्रसंग है। दिल्ली में एक सेमिनार का आयोजन था। विषय था—न्यूरोलॉजी और प्रेक्षाध्यान। उसमें अनेक योगी और डॉक्टर भाग ले रहे थे। हमने प्रेक्षाध्यान की आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में चर्चा की। सेमिनार सम्पन्न हुआ। कुछ योगी हमारे पास आए, बोले—'मुनिजी ! आज आपने कहा—हमारा श्वास डायाफ्राम से नीचे नहीं जाता। नाभि तक नहीं पहुंचता। हम तो आज तक यही कहते आ रहे हैं—नाभि तक श्वास ले जाओ। आज आपने बहुत नई बात बता दी।' मैंने कहा—'आज मेडिकल साइंस ने इस विषय में इतनी खोजें की हैं कि उसके विपरीत कोई बात कही जाती है तो वह मखौल का विषय बन जाती है।' आज शरीर विज्ञान ने शरीर के एक-एक रहस्य को खोज लिया है। इस स्थिति में यह कहना सही कैसे हो सकता है कि हमारा श्वास नाभि तक जाएगा।' योगी-साधुओं ने इस बात को स्वीकार किया—विज्ञान के युग में केवल अध्यात्म की ही नहीं, विज्ञान की भी जानकारी आवश्यक है।

ध्यान और ज्ञान—दोनों सापेक्ष हैं। मस्तिष्कीय प्रशिक्षण के लिए हमें दोनों का सम्यक् उपयोग करना चाहिए। ज्ञान और ध्यान के द्वारा हमारा मस्तिष्क सम्यक् प्रशिक्षित होता है तो हमें अपनी समस्याओं को सुलझाने का सूत्र मिल जाता है। जो व्यक्ति अपने जीवन की समस्याओं को सुलझा लेता है, वह दूसरों की समस्याओं को सुलझाने में भी सहयोगी और उपयोगी हो सकता है। इस दृष्टि से हम ध्यान का मूल्यांकन करें, मस्तिष्क को प्रशिक्षित करें, जिससे वह शांत और संतुलित रह सके। शांत और संतुलित मस्तिष्क स्वयं के लिए ही नहीं, दुनिया के लिए भी वरदान बन सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४

पर्यावरण और ध्यान

ध्यान का एक लक्ष्य है—सत्य और ज्ञाता के बीच परदा न रहे। यदि बीच में व्यवधान आ जाता है तो दूरी बढ़ जाती है। ज्ञान अव्यवहित और साक्षात् हो। ज्ञाता और सत्य के बीच सीधा सम्पर्क बहुत काम का होता है। टेलिफोन का आविष्कार हुआ इसीलिए कि सीधा सम्पर्क हो जाए। सीधा सम्पर्क सधे, यह बहुत आवश्यक है। सत्य के साथ सीधा सम्पर्क तब हो सकता है, जब व्यक्ति ध्यान की गहराई में जाए। अन्यथा उसका साक्षात्कार सम्भव नहीं है। आज का जो दृष्टिकोण बना हुआ है, किसी एक आदमी का नहीं, किसी एक जाति का नहीं किन्तु पूरे मानव समाज का और वह है उपभोक्ता-संस्कृति से उपजा हुआ दृष्टिकोण।

आज यह धारणा बनी हुई है—सब पदार्थ उपभोग के लिए बने हैं। इस मिथ्या दृष्टिकोण से पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है। बहुत सारे वैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, राजनेता बार-बार इस बात को दोहराते हैं—पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है और यही क्रम चलता रहा तो एक दिन पृथ्वी हमारे लिए उपयोगी नहीं रहेगी, प्राणी मात्र के लिए रहने लायक नहीं रहेगी, भयंकर बन जायेगी। इसलिए पर्यावरण का ज्ञान कराया जाए और इस प्रदूषण को समाप्त किया जाए। दुनिया के हर कोने में पर्यावरण के लिए आन्दोलन चल रहा है। क्या केवल आन्दोलन से पर्यावरण के प्रदूषण को मिटाया जा सकता है? ऐसा संभव नहीं लगता। प्रदूषण का जो मूल कारण है, वह है मिथ्या दृष्टिकोण। जब तक दृष्टिकोण सम्यक् नहीं बनता, प्रदूषण को मिटाने की बात कोरी कल्पना रह जाएगी।

हम लोग मुनि बने। नए मुनि को सबसे पहले दशवैकालिक सूत्र सिखाया जाता है। उसका एक सूक्त है—**'पुढो सत्ता'**—प्रत्येक प्राणी की स्वतंत्र सत्ता है। चाहे वह छोटा पौधा है, चाहे वह कोंपल है, चाहे वह छोटा पत्ता है और चाहे वह एक छोटा सा अग्नि कण है। सबकी स्वतंत्र सत्ता है। एक मिथ्या धारणा बन गई और यह मान लिया गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि सब पदार्थ मनुष्य के लिए बनाये गये हैं। विश्व का एक बड़ा वर्ग मांसाहारी लोगों का है। जब-जब मांसाहारी लोगों से सम्पर्क होता है, उनसे यह पूछा जाता है—मांस क्यों खाते हो? उत्तर मिलता है—अगर मांस न खाएं तो भगवान ने पशु बनाए ही क्यों? ये पशु-पक्षी मनुष्य के लिए ही तो हैं। जब उन्हें कहा जाता है कि शेर के आने पर तुम भागते क्यों हो? तुमको खाने के लिए ही तो शेर को बनाया गया है। वे इस प्रश्न को सुनकर मौन हो जाते हैं.

नष्ट हो रही हैं प्रजातियां

यह गलत धारणा बन गई—मनुष्य इस दुनिया में श्रेष्ठ प्राणी है। सृष्टि के सारे पदार्थ मनुष्य के लिए बनाए गए हैं, उसके उपभोग के लिए बनाये गये हैं। इस आधार पर उपभोक्ता संस्कृति का निर्माण हुआ। आज उपभोक्ता संस्कृति इतनी व्यापक बन गई, यह धारणा इतनी व्यापक हो गई कि सब कुछ मनुष्य के लिए बनाया गया है, मनुष्य चाहे जैसे उसका उपभोग कर सकता है। इस मिथ्या धारणा के कारण आदमी इतना उच्छृंखल हो गया कि कहीं भी साधना, संयम जैसी बात उसके सामने नहीं रही। इस उपभोक्तावादी संस्कृति का परिणाम यह आया--मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन शुरू कर दिया। प्राकृतिक संसाधन समाप्त किये जा रहे हैं, अनगिनत पशु-पक्षी मारे जा रहे हैं। एक जीव विज्ञानी ने अपने वक्तव्य में कहा--'आज का मनुष्य कैसा बन गया है? वह प्रतिवर्ष हजारों लाखों पशु-पक्षियों को नष्ट कर देता है।' काफी अनुसंधान के बाद उसने यह निष्कर्ष निकाला—'एक हजार प्रजातियां नष्ट हो रही हैं। आखिर बचेगा क्या? मनुष्य यदि सबको मार डालेगा तो फिर क्या बचेगा? कोरा आदमी बचेगा।'

अध्यापक ने विद्यार्थी से पूछा--एक पेड़ पर बीस चिड़ियां बैठी थीं। शिकारी ने गोली चलाई, एक चिड़िया को मार गिराया। बताओ, पीछे कितनी बची?

उसने कहा—मास्टर साहब ! एक भी नहीं बची?

'कैसे नहीं बची?'

'मास्टर साहब! गोली चलते ही सारी चिड़ियां उड़ गईं तो बचेगी क्या? एक भी नहीं बचेगी।'

ज्वलंत प्रश्न

पर्यावरण के संदर्भ में आज यही ज्वलंत प्रश्न है, यदि मनुष्य इसी प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता चला जाएगा तो क्या बचेगा? पृथ्वी है, पानी है, अग्नि है, वायु है और सबसे बड़ी बात वनस्पति का जगत् है तो आदमी है। आदमी अकेला जी नहीं सकता। भगवान महावीर ने सत्य का साक्षात्कार किया था और उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य के साक्षात्कार के बाद उन्होंने कहा था–पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति–इन सबकी स्वतंत्र सत्ता है। ये किसी के लिए नहीं बने हैं, मनुष्य के खाने के लिए नहीं बने हैं। मनुष्य इन्हें खाता चला जाए, इसलिए नहीं बने हैं। 'सबकी स्वतंत्र सत्ता है' यह सचाई समझ में आ जाए तो इन सबके प्रति इतना अतिक्रमण और अत्याचार नहीं हो सकता। आज बहुत अतिक्रमण होता है। मनुष्य चाहे जैसे उनके साथ व्यवहार करता है। क्या मनुष्य ने कभी ध्यान दिया कि आवश्यकता से ज्यादा वनस्पति को नहीं काटना चाहिए? आवश्यक काम करने के लिए कुछ नीम की पत्तियां तोड़नी हैं तो पूरी शाखा क्यों तोड़ें? क्या यह उन जीवों के प्रति अतिक्रमण नहीं है, अन्याय नहीं है? क्या मनुष्य ने यह सोचा–पानी से हाथ धोना है, एक गिलास पानी से काम चल सकता है, पर वहां कई लोटे पानी क्यों गंवा देते हैं? स्नान करने में एक बाल्टी पर्याप्त है फिर भी नल को खोलकर घंटों तक अनावश्यक पानी क्यों बहा देते हैं? क्या यह अतिक्रमण नहीं है? यदि ये प्रश्न मनुष्य के मस्तिष्क में उभरने लगें तो क्या पर्यावरण की समस्या के समाधान की दिशा में प्रस्थान न हो जाए?

जीव संयम : अजीव संयम

यह सूत्र हमारे ध्यान में रहे–सबकी स्वतंत्र सत्ता है, केवल चेतन पदार्थ की नहीं, अचेतन पदार्थ की भी स्वतंत्र सत्ता है। जितनी स्वतंत्र सत्ता चेतन की है उतनी ही अचेतन पदार्थ की है। भगवान महावीर ने संयम के सतरह प्रकार बतलाए। उनमें दो प्रकार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं–जीव संयम और अजीव संयम। यदि जीव के प्रति संयम करना है तो अजीव के प्रति भी संयम करना है। बिना मतलब एक ईंट के टुकड़े को, एक मिट्टी के ढेले को इधर से उधर नहीं करना है। यह है पर्यावरण का वैज्ञानिक आधार या आध्यात्मिक सूत्र। बिना ध्यान के यह सचाई सामने नहीं आती। चंचल चित्त वाला व्यक्ति इस सचाई तक कैसे पहुंच पाएगा?

सत्य कहां है? वह कहीं बाहर नहीं है। हमारी सारी चेतना, आत्मा इसी शरीर के भीतर है। सत्य तो यहीं है। पता तो यहीं से चलेगा, पर जब तक चंचलता की बाधा है तब तक पता नहीं चलेगा। जैसे-जैसे चंचलता की बाधा मिटेगी, सत्य स्वयं बोलने लग जाएगा।

सत्य के साक्षात्कार में सबसे बड़ी बाधा है–चंचलता। यदि चंचलता कम हो जाए तो सत्य के साक्षात्कार की दिशा उद्घाटित हो जाए। चंचलता को एकदम तो नहीं मिटाया जा सकता पर उसकी मात्रा इतनी कम हो जाए कि चंचलता केवल आवश्यकता जनित ही रहे। जहां आवश्यकता समाप्त हो जाए, वहां एकाग्रता हो जाए। इसका तात्पर्य है–ध्यान दिन में कोई आधा घण्टा, एक घण्टा बैठकर करने का नहीं है। ध्यान इतना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सध जाए कि जब आवश्यकता हो तब चंचलता आए। आवश्यकता सम्पन्न, स्थिरता आ जाए। जब वाणी की आवश्यकता हो, बोलें। जब आवश्यकता न हो, मौन हो जाएं। भगवान महावीर ने मौन किया। यह नहीं कि नहीं बोलना है किन्तु प्रायः मौन रहना है।

विवेक हो आवश्यकता का

हम इसका हृदय समझें–जब जीवन की आवश्यकता है तब बोलें और जब आवश्यकता न हो, मौन हो जाएं। जब आवश्कता हो चलें, गति करें। जब आवश्यकता न रहे, स्थिर हो जाएं। एक मुनि अपने स्थान से बाहर जाता है तो उसे एक शब्द का उच्चारण करना होता है–'आवस्सई आवस्सई।' वह कहता है–मैं आवश्यकता के लिए जा रहा हूं। मुनि के लिए यह सामान्य विधान है कि बैठा रहे, चले नहीं। चलना अपवाद है। आवश्यकता होगी तो चलेगा और आवश्यकता सम्पन्न होते ही वापिस आ जाएगा। एक मुनि भिक्षा के लिए गया। वह जाते समय इस वाक्य का उच्चारण करेगा–**आवस्सई आवस्सई।** इसका अर्थ है–मैं आवश्यक कार्य के लिए बाहर जा रहा हूं और जैसे ही वापिस आएगा, कहेगा–**निस्सही, निस्सही।** इसका अर्थ है–कार्य सम्पन्न हो गया है, अब मैं आ गया हूं। वह जिस स्थान में ठहर गया, बिना प्रयोजन उस स्थान से बाहर नहीं जा सकता।

यह एक स्थिति है–जहां जीवन की आवश्यकता, वहां प्रवृत्ति और जहां आवश्यकता नहीं, वहां निवृत्ति। ध्यान इसलिए आवश्यक है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन सधे।

कोरा प्रवृत्ति का जीवन अच्छा नहीं है। ध्यान का मतलब है निवृत्ति। निवृत्ति करना अकर्मण्यता या निष्क्रियता में जाना है। लोग अकर्मण्यता को अच्छा भी बताते हैं और बुरा भी बताते हैं, किन्तु यह बात भी स्पष्ट समझ में आए–आवश्यकता के बिना प्रवृत्ति करना अच्छा नहीं है। यह प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन रहे तो मनुष्य जड़ता से दूर रह सकता है, दुःख से दूर रह सकता है, अनेक बुराइयों से बच सकता है। जो ज्यादा प्रवृत्ति करता है, वह इनसे बच नहीं सकता। प्रवृत्ति करते-करते मानसिकता ऐसी बन जाती है कि व्यक्ति खाली बैठा नहीं रह सकता। यदि और कोई काम नहीं है तो बैठा-बैठा कंकर फेंकेगा अथवा कुछ न कुछ करता रहेगा।

कैसे हुआ वहम

एक भोज में बहुत सारे लोग भोजन कर रहे थे। भोजन सम्पन्न हुआ। उसके बाद गोष्ठी चली और कार्यक्रम सम्पन्न हो गया। एक व्यक्ति बोला–'मुझे तो आज एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत बड़ा वहम हो गया।'

पास में बैठा व्यक्ति बोला–'क्या हुआ?'

'मैंने सोचा कि मुझे कहीं लकवा तो नहीं हो गया?'

'कैसे हुआ यह वहम?'

'मैंने इतनी बार अपने पैर में चिकौटी काटी किन्तु कुछ भी पता नहीं चला। मैंने सोचा–इतनी शून्यता हो गई। कहीं लकवा तो नही हो गया?'

'भले आदमी! तुम तो मेरे पैर पर चूंटिया भर रहे थे, चिकौटी काट रहे थे। तुम्हें कैसे पता चलता? मैंने तो तुम्हें सज्जनतावश कुछ कहा नहीं।'

यह सुनकर उस व्यक्ति का सिर शर्म से नीचे झुक गया।

ध्यान की उपलब्धि

आदमी निकम्मी प्रवृत्तियां बहुत करता है। वह आवश्यकतावश उन्हें नहीं करता किन्तु कुतूहलवश या व्यर्थ की मानसिकता से उन्हें संपादित करता है। ध्यान के द्वारा यह विवेक उपलब्ध हो सकता है–'आवश्यकतावश प्रवृत्ति करनी पड़ती है, उसके बिना काम नहीं चलता किन्तु कोई भी अनावश्यक प्रवृत्ति नहीं करूंगा।' यह ध्यान की बहुत बड़ी उपलब्धि है। वस्तुत: ध्यान को ठीक से समझा नहीं गया। ध्यान, धर्म या अध्यात्म में जाने का मतलब केवल निठल्ला हो जाना नहीं है। ध्यान में जाने का अर्थ है--आवश्यकता शेष रहे और अनावश्यकता सारी समाप्त हो जाए। यह एक नया जीवन दर्शन है–अनावश्यक कुछ भी न हो, न गति, न वाणी और न चिन्तन। कुछ व्यक्ति इतना सोचते हैं, दिन भर सोचते रहते हैं कि तनाव से भर जाते हैं, आधे पागल से हो जाते हैं। फिर वे इस भाषा में बोलते हैं--सोचने की इतनी आदत हो गई कि सोचना कभी बंद नहीं होता। कभी नींद में उठ जाते हैं, कभी ताला खोल लेते हैं, कभी कुछ कर लेते हैं। यह सारी स्थिति क्यों बनती है? बहुत सोचना भी बहुत खतरनाक होता है। आवश्यक चिन्तन, आवश्यक वाणी या आवश्यक प्रवृत्ति होनी चाहिए। प्रवृत्ति के साथ 'आवश्यक' का विवेक जुड़ा रहे, यह अपेक्षित है। मुझे प्रवृत्ति करनी है पर आवश्यक करनी है, अनावश्यक नहीं करनी है। ध्यान की अनेक उपलब्धियों में एक बड़ी उपलब्धि है कि अनावश्यक और आवश्यक का विवेक जाग जाए। यह जाग जाए तो पर्यावरण के प्रदूषण की चिन्ता करने की जरूरत ही न रहे।

हावी है उपभोक्ता-संस्कृति

पर्यावरण प्रदूषण को मिटाने के लिए जितने साधन खोजे गए हैं, उनमें एक साधन है ध्यान। ध्यान के द्वारा सचाई का पता लगता है कि उपभोग की सीमा करना है। जीवन की यह बड़ी सचाई है। इस सचाई को समझना आज बहुत जरूरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आज पूरा वातावरण आर्थिक बन रहा है। उपभोक्तावाद मनुष्य पर हावी हो गया है। वह सूत्र आज प्रभावी है—खूब कमाओ, खूब खर्च करो। इसने मनुष्य को उच्छृंखल बना दिया। यह सूत्र चाहे अर्थ-शास्त्रियों ने दिया, चाहे समाजशास्त्रियों ने दिया, पर इतना निश्चित है कि यह सूत्र उन लोगों ने दिया, जो ध्यान करने वाले नहीं हैं, केवल चंचलता में जीने वाले हैं। शायद उन्होंने समझा कि यह बहुत सीधा सूत्र है, इससे विकास भी हुआ है। पदार्थों और संसाधनों का विकास हुआ है, पर विकास की कहानी क्या है? आप वस्तुएं खरीदने के लिए बाजार में जाएंगे तो आपको दुकानदार प्लास्टिक की थैलियों में सामग्री देगा। आज आवश्यकताएं इतनी बढ़ गई हैं कि एक थैली से काम नहीं चलता। व्यक्ति अनेक प्लास्टिक की थैलियों में सामान खरीद कर लाएगा। यदि आज कोई चाहे कि कांसा, पीतल और तांबे के बर्तन लाए, उन्हें काम में ले तो शायद लोग समझेंगे—यह किस युग में जी रहा है। आज इन बर्तनों का प्रचलन समाप्त होता जा रहा है। प्लास्टिक इतना छाया हुआ है कि जीवन की हर आवश्यकता के साथ प्लास्टिक जुड़ा हुआ है। बड़ा महत्त्व हो गया है प्लास्टिक का। सब जगह प्लास्टिक ही प्लास्टिक दिखाई देता है।

समस्या यह है--जब भी किसी नई चीज का प्रचलन होता है, उसे वैज्ञानिक लोग बड़ा प्रोत्साहन देते हैं, महत्त्व देते हैं, उसका खूब प्रचार करते हैं और जब वह मानव-जीवन का अंग जैसा बन जाता है, तब उसके खतरे सामने आने लग जाते हैं। कुछ ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक के संदर्भ में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है—प्लास्टिक कैंसर का बहुत बड़ा कारण है। इसमें रखी चीजें खाने में बहुत खतरा है। जो प्लास्टिक रद्दी हो जाता है, दूसरी बार उससे पुनः प्लास्टिक बनाया जाता है, वह तो बहुत ही खतरनाक है। अब बड़ी विचित्र स्थिति पैदा हो गई, सांप छछूंदर की सी स्थिति हो गई। प्लास्टिक को इतना पकड़ लिया कि उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता और जब इतनी भयानक बीमारी का नाम सुनता है, काम में लेना भी मुश्किल होता है। आदमी करे क्या? इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने न जाने कितनी ऐसी चीजों का निर्माण किया है, जहां आदमी सांप-छछूंदर की स्थिति में फंस गया है। ऐसी अनगिन वस्तुएं आज बाजार में आकर्षक विज्ञापनों के साथ आ रही हैं, जिनकी मानव जीवन के लिए कोई अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। अनावश्यक प्रवृत्तियां और पदार्थ बढ़ते ही चले जा रहे हैं। आवश्यकता पर रोक जैसी कोई बात नहीं रही है।

नियंत्रक है ध्यान

ध्यान जीवन में संयम लाता है। वह एक नियंत्रण है, ब्रेक है। अपनी आवश्यकता पर नियंत्रण, अपनी इच्छा पर नियंत्रण और अपने भोग पर नियंत्रण—इन तीनों दिशाओं में नियंत्रण की बात ध्यान से फलित होती है। इसलिए ध्यान हमारे जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बहुत बड़ी आवश्यकता या अनिवार्यता बन जाता है। ध्यान केवल उन लोगों के लिए ही नहीं है, जो अध्यात्म में रुचि लेते हैं, अध्यात्म की गहराई में पैठना चाहते हैं किन्तु आज तो वह उन लोगों के लिए भी उतना ही जरूरी है, जो शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं। चंचलता को कम करना और चित्त को निर्मल करना जीने के लिए आवश्यक बन गया है। अगर यह नहीं होता तो शायद जीवन भी खतरे में दिखाई देता है।

पर्यावरण की समस्या और ध्यान

इन सारी स्थिति के संदर्भ में हम सोचें कि ध्यान का उपयोग कहां नहीं है? वह केवल आत्म-साधना के लिए ही नहीं है। यह सही है कि ध्यान का मुख्य ध्येय आत्मा-साधना है, किन्तु प्रासंगिक रूप में पारिपार्श्विक स्थितियों का अवलोकन करें तो नैतिकता के लिए, सामाजिक सम्बन्धों के लिए, मानवीय सम्बन्धों के लिए, व्यापार-व्यवसाय के लिए और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए ध्यान बहुत जरूरी है। यह सचाई समझ में आएगी तो ध्यान का मूल्यांकन होगा। प्रत्येक आदमी आज पढ़ना जितना जरूरी मानता है, स्कूल में जाना जितना जरूरी मानता है, उतना ही जरूरी मानेगा ध्यान करना। हर शिक्षक के मन में यह भावना पैदा होगी–जो शिक्षा चल रही है, वह पर्याप्त नहीं है, उसके साथ ध्यान को जोड़ना भी बहुत जरूरी है। यदि ध्यान जुड़ेगा तो विद्या के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं को समाधान मिलेगा, स्कूल से अच्छे विद्यार्थी निकलेंगे, आवश्यकता, इच्छा और भोग के संयम का मूल्य समझने वाली पीढ़ी का उदय होगा। वस्तुतः पर्यावरण की समस्या का समाधान तभी हो सकता है, जब आवश्यकता, इच्छा और भोग के संयम का मूल्य समझ में आए। पर्यावरण की समस्या का मूल कारण है असंयम। ध्यान संयम की चेतना के जागरण का महान प्रयोग है। इसका समुचित मूल्यांकन किया जाए, इसे जीवन की अनिवार्य आवश्यकता समझा जाए तो पर्यावरण की गंभीर समस्या का समाधान सहज संभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान और परिवार

एक डॉक्टर ने कहा—'महाराज ! चंचलता बहुत है, क्रोध भी बहुत आता है।'

मैंने कहा—'चंचलता अधिक है तो क्रोध तो आएगा ही।'

'यह क्यों होता है?'

'चंचलता का मुख्य कारण भीतर की वृत्तियों का दबाव है और क्रोध का मुख्य कारण है अहंकार।'

'महाराज ! क्रोध और अहंकार का क्या संबंध है?'

मैंने कहा—'तुम्हारी पत्नी है। तुम उसे कुछ कहते हो और वह नहीं मानती है तब तुम्हारा चिंतन यह होता है—मेरी पत्नी मेरी बात को नहीं मानती। बस, इस बात से अहंकार इतना फुफकारने लगता है कि क्रोध उभर आता है।'

डॉक्टर बोला—'महाराज ! यही होता है, ऐसा ही होता है।'

पारिवारिक झगड़ों में क्रोध की मुख्य भूमिका है और क्रोध की पृष्ठभूमि में रहता है अहंकार। जितना प्रबल अहंकार उतना प्रबल आवेश और जितना प्रबल आवेश उतना ही संघर्ष। पारिवारिक कलह का लोभ भी एक कारण बनता है। दो भाई बंटवारा कर रहे हैं। बंटवारे में थोड़ा इधर-उधर हो गया। पिता ने किसी को अधिक दे दिया, किसी को कम दे दिया। जिसको कम मिलता है, उनका मन आक्रोश से भर जाता है। स्थिति यह बन जाती है—जो भाई राम-लक्ष्मण कहलाते थे, वे राम-रावण बन जाते हैं। क्रोध और लोभ—ये दोनों संघर्ष के बड़े कारण बनते हैं। रुचियां अलग-अलग, चिंतन-विचार अलग-अलग, सोचने के भिन्न-भिन्न प्रकार। अपने से भिन्न विचार के प्रति अरुचि पैदा हो गई, अप्रीति पैदा हो गई और समस्या की शुरुआत हो गई।

एक बहिन ने कहा—मुझे कुछ उपाय बताओ, मार्गदर्शन दो। वह यह कहते हुए रोने लगी। उसकी दयनीय मुद्रा को मैंने देखा, सचमुच दया आ गई। उसने कहा—क्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करूं? घर की इतनी दु:खद स्थिति है। श्वसुर का जैसा व्यवहार है, पति का भी वैसा ही व्यवहार है। बहुत बार इच्छा होती है आत्माहत्या करने की।

ऐसा लगता है–पारिवारिक जीवन में समस्याएं कम नहीं हैं। यह स्वाभाविक है कि जहां एक से दो हुए, वहां समस्याओं का अनचाहा ढेर लग जाता है। जब घरों में जाते हैं, देखते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है–कितना बढ़िया मकान है, कितनी साज-सज्जा है, सुख-सुविधा की पर्याप्त सामग्री है। किन्तु जब उनकी समस्या सुनते हैं तब ऐसा लगता है–बाहर में जितना आकर्षण है, भीतर में उतना ही क्रन्दन है। बाहर से हंस रहे हैं, भीतर से रो रहे हैं। यह दु:ख कहीं बाहर से नहीं आया है, स्वयं आदमी पैदा कर रहा है। सास या बहू पैदा कर रही है। पुत्र अथवा पिता पैदा कर रहा है। वे लोग सचमुच दु:ख पैदा कर रहे हैं, स्वयं झगड़ा पैदा कर रहे हैं। कारण स्पष्ट है–चित्त की पवित्रता नहीं है।

कलह वहां होता है

ध्यान के मुख्य दो परिणाम हैं–एकाग्रता और चित्त की निर्मलता। ध्यान से चित्त की मलिनता धुलती है, निर्मलता आती है। जहां निर्मलता होती है वहां झगड़ा नहीं होता। सारे संघर्ष और झगड़े मलिनता में पैदा होते हैं। चंचलता में समस्याएं उलझती हैं। एकाग्रता आती है, समस्याएं सुलझना शुरू हो जाती हैं। जहां मलिनता है वहां समस्याएं हैं। जहां निर्मलता है वहां समस्याएं मिटती चली जाती हैं। जहां मलिनता है वहां निषेधात्मक भाव ज्यादा होते हैं। जहां विधायक भाव है, वहां झगड़े नहीं होते. कलह नहीं होता, शांतिपूर्ण सहवास होता है। जहां निषेधात्मक विचार है, वहां कलह, संघर्ष और अशांति जन्म लेती है।

पौराणिक कहानी है–एक बार नारदजी जा रहे थे। मित्र ने पूछा–'ऋषिवर! कहां जा रहे हैं।'

'मैं अभी स्वर्ग में जा रहा हूं।

'स्वर्ग तो मुझे भी दिखा दें। आज सहज मौका मिल गया है। आप मुझे भी ले चलें।'

'अच्छा मित्र ! आओ, चलो।'

नारदजी ने मित्र को साथ ले लिया और स्वर्ग में पहुंच गए। स्वर्ग में पहुंचने के बाद नारदजी ने कहा–' देखो, यह सामने कल्पवृक्ष है। इसकी छांव में बैठ जाओ। मुझे काम है, मैं दूसरी जगह जाकर आता हूं। तुम यहीं बैठे रहना।'

'अच्छा ऋषिवर मैं इसकी छांव में आराम कर लूंगा।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'यह कल्पवृक्ष है। तुम्हें जो भी आवश्यकता हो तो मांग लेना, उसकी प्रार्थना करना। तुम जो चाहोगे, तुम्हें मिल जाएगा।

नारदजी निर्देश देकर चले गए। वह व्यक्ति कल्पवृक्ष की छांव में बैठ गया। उसने सोचा—भूख लग गई। कितना अच्छा हो, खाने को भोजन मिल जाए। सोचने के साथ ही भोजन तैयार था। उसने भोजन कर लिया, सोचा—अब ठण्डा-ठण्डा पानी मिल जाए तो कितना अच्छा हो। पानी भी तैयार। उसने फिर सोचा—कितना अच्छा हो कि शय्या मिल जाए, सुखद फूलों की कोमल-कोमल शय्या। वैसे कोमल शय्या काम की नहीं होती, रीढ़ की हड्डी को बिगाड़ने वाली होती है फिर भी बहुत सारे लोग कोमल गद्दों पर सोना चाहते हैं, भले ही रीढ़ की हड्डी की बीमारी को भोगते रहें। जैसे ही उसने सोचा, कोमल-कोमल फूलों की शय्या प्रस्तुत थी। वह सो गया। आदमी को मुंह मांगा मिल जाए तो कहना ही क्या? एक के बाद एक आकांक्षा जागती चली गई। भोजन कर लिया, पानी पी लिया, अच्छी शय्या पर सो रहा हूं। अब कोई पगचम्पी करने वाली अप्सराएं आ जाएं तो बहुत अच्छा हो। सोचने की जरूरत थी, अप्सराएं आईं और पगचम्पी करने लग गईं। वे पग दबाती हैं तो बड़ा आराम मिलता है।

सम्पूर्णानन्दजी ने लिखा था—'खाकर सोता हूं तो पहले कुछ होता हूं और जब कोई पग दबाता है तब सम्पूर्णानन्द बन जाता हूं।' वह व्यक्ति सम्पूर्णानन्द बन गया।

वह सोचता है—बहुत अच्छी पगचंपी हो रही है। इतने में मन में एक विकल्प जागा—अरे ! मैंने यह क्या कर लिया। अगर घरवाली आ गई तो जरूर मुझे झाड़ू लेकर पीटेगी। बस सोचने की देरी थी, घरवाली हाथ में झाड़ू लिए तैयार थी। उसने झाड़ू से पीटना शुरू किया। वह शय्या से उठा और भागने लगा। आगे वह भागता जा रहा है और पीछे घरवाली दौड़ती चली जा रही है। दौड़ते-दौड़ते बहुत दूर चले गए। रास्ते में नारदजी मिल गए।

नारद ने देखा--'अरे! स्वर्ग में यह क्या नाटक हो रहा है? यह तो वह मेरा मित्र लग रहा है। अरे ! रुको। क्यों दौड़ रहे हो? क्या हुआ?'

'आप देखते नहीं, यह कर्कशा पीछे आ रही है। जहां मौका मिलता है झाड़ू जमा देती है।'

वह झाड़ू ही था, मूसल नहीं था, बेलन नहीं था। इस सन्दर्भ में एक व्यंग्य याद आ रहा है—ओलम्पिक खेल हो रहे थे। मुक्केबाजी की प्रतियोगिता थी। एक व्यक्ति को बहुत मुक्के जमाए गए। उसने सबको सह लिया और बराबर मैदान में जमा रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शकों ने कहा–भई ! आज तो इसे स्वर्णपदक मिलेगा।' सचमुच उसे स्वर्ण पदक मिल गया। लोगों ने पूछा–भाई ! तुम इतने मजबूत कैसे रहे? उसने सोचा–यह तो मेरी पत्नी का प्रताप है। वह मुझे बेलन से रोज पीटती थी। उसने पीट-पीटकर मुझे इतना मजबूत बना दिया कि इन मुक्कों का क्या असर होता?

नारदजी ने कहा–'अरे ! यहां कहां से आई तुम्हारी पत्नी।'

ऋषिवर ! आपने कहा था–'जो मुंह से मांगोगे, वह मिल जाएगा। मैंने भोजन की कल्पना की, भोजन मिल गया। शय्या चाही, तो शय्या तैयार। सो गया। मन में आया, कोई पगचम्पी करे तो अच्छा रहे। अप्सराएं तैयार थीं। सोते-सोते मन में यह विचार आया–अगर पत्नी ने यह देख लिया तो मुझे झाड़ू से पीटेगी। इतने में तो पत्नी भी तैयार और झाड़ू भी तैयार। जब से यह आई है तब से मैं डरकर भाग रहा हूं। मैं आगे और यह मेरे पीछे दौड़ रही है

नारद ने कहा–'मूर्ख ! स्वर्ग में आ गया, कल्पवृक्ष के नीचे आ गया फिर ऐसा बुरा विचार तुमने किया ही क्यों?'

नकारात्मक दृष्टिकोण

यह निषेधात्मक विचार–नकारात्मक दृष्टिकोण व्यक्ति का पीछा नहीं छोड़ता। अनेक व्यक्ति आते हैं और कहते हैं–बुरे विचार आते हैं। पता नहीं, कितनी व्यापक बीमारी है। कुछ लोग कहते हैं-बार-बार आत्महत्या का विचार आता है। कोई कहता है–किसी को मारने का विचार आता है। कोई कहता है यह दुर्घटना करने का विचार आता है। भय, घृणा आदि बुरे विचार बहुत सताते हैं। यह नकारात्मक दृष्टिकोण, नकारात्मक विचार का भूत पीछे लगा हुआ है। शायद भूत कहीं पीछा भी छोड़ दे पर नकारात्मकता का भूत पीछा नहीं छोड़ रहा है। इस नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण नकारात्मक विचार के कारण कभी निराशा के भाव जागते हैं, कभी हीन भावना और कभी अहं की भावना जागती है। परस्पर में संघर्ष पैदा होता है, पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। ऐसा लगता है जीवन संघर्षमय और अशांति का पुतला जैस बन गया है।

पैदा करें विधायक भाव

इस नकारात्मक दृष्टिकोण को बदलने का, नकारात्मक विचारों से बचने क उपाय है–सकारात्मक भावों को पैदा करना, विधायक भावों को उपजाना। विधायव भावों की उत्पत्ति का मुख्य कारण बनता है ध्यान। ध्यान केवल एकाग्रता के लिए नहीं है। ध्यान वह है, जो चित्त की निर्मलता पैदा करे, कषाय–क्रोध, मान, माया, लोभ क अल्पीकरण करे, जिसके द्वारा पुराने संस्कारों की निर्जरा हो। निर्जरा बहुत महत्त्वपूर्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्व है। जैन तत्त्व विद्या में नौ तत्त्व बतलाए गए हैं। उसमें दो महत्वपूर्ण हैं संवर और निर्जरा। संवर का काम है--बाहर से जो गन्दगी आ रही है, उसे रोक देना, दरवाजा बन्द कर देना। जब-जब आंधियां आती हैं, मकानों के दरवाजे बंद हो जाते हैं, खिड़कियां बंद हो जाती हैं। दरवाजों को बंद कर देना, इसका नाम है संवर। जो भीतर कचरा जमा हुआ है, विजातीय तत्त्व है उसे निकाल देना, उसका शोधन करना, इसका नाम है निर्जरा। शीतलहर से बहुत ग्रस्त होते हैं, टाइफाइड भी होता है। टाइफाइड का मुख्य कारण बनता है पेट में जमा हुआ कचरा। प्राकृतिक चिकित्सा की भाषा में कारण है–विजातीय तत्त्व। जितना विजातीय तत्त्व जमा हुआ है उतना ही आदमी ज्यादा बीमार पड़ता है। उसकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। टाइफाइड निकलने में पेट की खराबी बहुत ज्यादा कारण बनती है।

जरूरत है विरेचन की

हर आदमी के भीतर कर्मों का, संस्कारों का, न जाने कितना विजातीय तत्त्व जमा हुआ है। उसका तब तक शोधन नहीं होगा, जब तक निषेधात्मक विचार आते रहेंगे। बहुत बुरे विचार आते हैं तो समझना चाहिए–भीतर में बहुत कचरा जमा हुआ है, जुलाब लेने की जरूरत है, पेट की सफाई करने की जरूरत है, रेचन-विरेचन की जरूरत है। उसके बिना बुरे विचारों का आना बन्द नहीं होगा। विरेचन करने के लिए ध्यान करना बहुत जरूरी है। ध्याया के द्वारा कर्मों की विरेचना होती है। बहुत तेज निर्जरा होती है ध्यान के द्वारा। ध्यान एक ऐसी अग्नि है, जो कर्म को जला डालती है। गीता में ज्ञान को अग्नि माना गया– **ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः तमाहुः पण्डितं बुधाः**--ज्ञानी मनुष्य ज्ञान की अग्नि से कर्मों को दग्ध देता है, जला देता है। ध्यान ज्ञान से अधिक शक्तिशाली है। ज्ञान में फिर भी थोड़ी चंचलता रहती है किन्तु ध्यान में तो बिल्कुल एकाग्रता की स्थिति बन जाती है। चेतना का ध्यान, अपनी आत्मा का ध्यान मलिनता पैदा करने वाला ध्‍यान नहीं है। वह निर्मलता, ज्योति और प्रकाश का ध्यान है।

वहां आते हैं नकारात्मक विचार

जो व्यक्ति आत्मा का ध्यान करता है, उसका चित्त निर्मल बन जाता है, मैल सारा छंट जाता है। व्यक्ति इस बात को लेकर ध्यान में बैठ जाए–मैं चैतन्यमय हूं, 'राग और द्वेष करना मेरा स्वभाव नहीं है। प्रियता और अप्रियता मेरा स्वभाव नहीं है। लड़ाई करना मेरा स्वभाव नहीं है, मैं केवल ज्ञाता-द्रष्टा हूं। जिस व्यक्ति ने इस प्रकार अपने स्वभाव पर ध्यान करना शुरू कर दिया, उसके मन में बुरे विचार नहीं आते। बुरा विचार आने का रास्ता बंद हो जाता है। जो आत्मा का ध्यान नहीं करता, अपनी चेतना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ध्यान नहीं करता, रात-दिन सोते-उठते प्रिय-अप्रिय विचारों में उलझा रहता है, उसे बुरे विचार नहीं आएंगे तो और क्या आएगा? यह निश्चित मानें जिस व्यक्ति में निरन्तर पदार्थ की लालसा, सब कुछ पा लेने की भावना, ऐशो-आराम की भावना, नशे की वृत्ति है, इस प्रकार का जीवन और जीवन की चर्या होती है, वहां नकारात्मक विचारों का आना बहुत जरूरी है।

बुराई और पदार्थपरकता

हमने ऐसे हजारों-हजारों व्यक्तियों को देखा है जिनके पास सब कुछ है पर उनके जीवन में सुख नहीं है, शांति नहीं है। वे बिल्कुल बुरे विचारों से दबे हुए हैं। कोई आत्महत्या की बात सोचता है, कोई घर से भाग जाने की बात सोचता है और कोई परहत्या की बात सोचता है। कोई किसी को लेकर भाग रहा है और कोई किसी के पीछे पड़ रहा है। यह सारा क्यों हो रहा है? पदार्थ-परक दृष्टिकोण बनेगा तो बुरा विचार अवश्य आएगा। पदार्थ-परकता और बुराई में गहरा सम्बन्ध है। जो व्यक्ति इन बुरे विचारों से अपने आपको बचाना चाहता है, उसके लिए निर्जरा करना बहुत आवश्यक है। पारिवारिक जीवन में जो बहुत सारे झगड़े चलते हैं, उनका कारण यही पदार्थ-परकता बनती है। उसने वह चीज उसे दे दी और मुझे नहीं दी। उसने मुझे यह दे दिया और यह छीन लिया। अपने लड़के को नहीं दिया, दूसरों के लड़कों को मिल गया। ये सारी पदार्थ से जुड़ी बातें सुखद पारिवारिक जीवन को दुःखमय बना देती है।

पिता और पुत्र भोजन कर रहे थे। इतने में जोरदार आवाज हुई। पिता ने कहा—कोई बर्तन फूटा है। पुत्र बोला— 'हां, कोई कांच का बर्तन फूटा है और मेरी मां के हाथ से फूटा है।' यह सुनते ही पिता को आवेश आ गया—'तेरी क्या आदत पड़ गई है। हमेशा अपनी मां की बुराई देखता है। यह नहीं कहता कि मेरी पत्नी के हाथ से फूटा है।'

'पिताजी! मैं ठीक कह रहा हूं।'

'तुम्हे क्या पता चला? हम तो यहां बैठे हैं।'

'मुझे पक्का पता है।'

'जाओ, पहले पता करके आओ।'

लड़का भीतर गया और सारी स्थिति को जानकर बाहर आया, बोला—'पिताजी! मैंने सारी स्थिति जान ली। मां कांच का बर्तन ला रही थी। वह मां के हाथ से गिरा और गिरते ही फूट गया। मां स्वयं यह बता रही थी।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भाई ! तुम्हें पता कैसे चला?'–पिता का आवेश विस्मय मे बदल गया।

'अरे ! इसमें पता चलने की क्या बात है? यह तो बिल्कुल साधारण बात है। मां के हाथ से फूटा और एक मिनट में आवाज बंद हो गई। अगर मेरी पत्नी के हाथ से फूटता तो घण्टा भर तक वह आवाज बंद ही नहीं होती। उस टंकार के साथ झंकार भी होता रहता।'

बर्तन फूटने की टंकार तो एक मिनट में ही बंद हो जाती है किन्तु जो गालियां देने की झंकार है, वह घण्टों तक चलती रहती है। यह सारा क्यों होता है? इसमें पदार्थ ही निमित्त बनता है। बड़े के हाथ से फूट जाए तो छोटा चुप रह जाए और छोटे के हाथ से फूट जाए तो बड़े की झंकार कभी बंद नहीं होती। पदार्थ जगत् में ये सारे झगड़े पैदा होते है।

हम इस सचाई को जान लें। परिवार में जितना कलह और संघर्ष होता है, वह पदार्थ के कारण ही होता है। जो लोग पदार्थ का जीवन जीते हैं, रात-दिन पदार्थ के बारे में सोचते रहते हैं वहां इनका होना अनिवार्य और अपरिहार्य है। इन्हें टालने का जो उपाय है, वह है आत्मा का ध्यान। जिसने चेतना का ध्यान किया, उनका पारिवारिक जीवन सुधर गया।

जैन साहित्य की एक प्रसिद्ध कथा है–अतुंकारी भट्टा। जब तक वह पदार्थ के प्रति प्रतिबद्ध रही, घर से निकाल दी गई, लोग उठाकर ले गए। खून निकाला गया। उसने बहुत पीड़ा का अनुभव किया। क्रोध के कारण, अशांति के कारण, असह्य दुःख भोगा। जब उसे भान हुआ, वह संभल गई। पदार्थ से हटकर आत्मा की स्थिति में आ गई। पारिवारिक जीवन सुखद बन गया। वह शांति और क्षमा की मूर्ति बन गई। कहा जाता है–देवता उसे विचलित करने आया फिर भी वह विचलित नहीं हुई। उसके जीवन का एक चित्र यह था–यदि उसे कोई तुंकारा दे दे तो वह उसका सिर फोड़ देती और एक चित्र यह बना–वह सचमुच अतुंकारी बन गई। उसे तुंकारा देने वाला मिला ही नहीं।

पारिवारिक शांति का महामंत्र

हम आत्मा का ध्यान करें, आत्मा के बारे में सोचें–मैं जड़ नहीं हूं, मैं पैसा नहीं हूं, मैं मकान नहीं हूं, मैं कपड़ा नहीं हूं, मैं आत्मा हूं। जैसे ही यह दृष्टिकोण बनेगा, जीवन का क्रम बदल जाएगा, सुख और शांति का स्रोत फूट पड़ेगा। जब तक यह दृष्टिकोण नहीं आएगा तब तक अशांति और दुःख का जीवन बना रहेगा। दोनों बातें हमारे सामने स्पष्ट हैं। एक ओर पारिवारिक जीवन की समस्याएं हैं और वे समस्याएं पदार्थपरक दृष्टिकोण के द्वारा उत्पन्न हुई हैं। उन्हें भोगना पड़ेगा, चाहे व्यक्ति कितना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही बड़ा बन जाए। जो व्यक्ति पदार्थ जगत् से हटकर आत्मा के जगत् में थोड़ा-सा भी प्रवेश पा गया, उसने अपने लिए सुख और शांति का मार्ग खोज लिया। ये दो रास्ते हैं, आप जिसे चाहें, उसे स्वीकार करें। शांतिकामी कभी इस सचाई की उपेक्षा नहीं कर सकता—पदार्थाभिमुखता से आत्माभिमुखता की ओर प्रस्थान करना ही पारिवारिक शांति का महामंत्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नशा और ध्यान

प्रश्न है—आदमी नशा क्यों करता है? जब राग या द्वेष प्रबल होता है तब मनुष्य का मन तनाव से भर जाता है। राग-द्वेष तनाव पैदा करते हैं। आदमी तनाव में जीना नहीं चाहता, वह सुख से जीना चाहता है। जैसे ही तनाव पैदा होता है, वह तनाव से मुक्त होना चाहता है। तनाव से, चिंता से मुक्ति का उपाय चाहिए। मनुष्य ने एक उपाय खोजा—अपने आपको भुला देना। एक बहुत बड़ी सचाई है। अपने आपको भुला देता है, एक दूसरी दुनिया में चला जाता है। हमारे जितने संवेदी तंतु हैं, ज्ञान तंतु हैं, नशा उनको निष्क्रिय बना देता है। जो संदेश ज्ञान तंतुओं के द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचते हैं, जिन्हें मस्तिष्क ग्रहण करता है, उनका संबंध बीच में ही टूट जाता है। मूर्च्छा की स्थिति बन जाती है, जागरूकता समाप्त हो जाती है।

दो शब्द हैं--प्रमाद और अप्रमाद। प्रमाद स्वयं नशा है। अप्रमाद का मतलब है जागरूकता। जहां प्रमाद की स्थिति है, वहां आदमी अपने आपको भूल जाता है। जहां जागरूकता की स्थिति है, वहां व्यक्ति अपने प्रति भी जागरूक होता है और दूसरों के प्रति भी जागरूक रहता है।

नशे के प्रकार

नशा बहुत पुराने काल से चल रहा है। आज नशे का वर्गीकरण करें तो चार मुख्य वर्गीकरण बन जाएंगे। एक शराब का नशा है। लोग शराब पीते हैं, पागलपन आ जाता है। दूसरा है—तम्बाकू का नशा। सिगरेट, बीड़ी, जर्दा और गुटका, पानपराग आदि जर्दा-युक्त जितने पदार्थ हैं, उनका सेवन एक प्रकार का तम्बाकू का नशा है। तीसरा है—भांग, गांजा, चरस आदि का नशा। चौथा है—अफीम, हेरोइन आदि का नशा। हेरोइन का नशा बहुत घातक है। जो व्यक्ति हेरोइन का आदी बन जाता है, वह ज्यादा जीता नहीं है। उसे कुछ वर्षों में ही मरना पड़ता है। उस नशे का छूटना भी मुश्किल हो जाता है। ये चार प्रकार के नशे हैं, जो उन्माद पैदा करते हैं। शराब से आदमी पागल बन जाता है। तम्बाकू पीने वाला शराबी की भांति भान नहीं भूलता, उतना पागलपन नहीं आता किन्तु आज यह मान लिया गया कि तम्बाकू के द्वारा जितना स्वास्थ्य को नुकसान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुंचता है, उतना शराब से भी नहीं पहुंचता। शराब से भी ज्यादा भयंकर तम्बाकू को माना जा रहा है। कैंसर, हार्ट की बीमारी, फेफड़े की विकृति आदि-आदि के लिए तम्बाकू बहुत जिम्मेवार है। तम्बाकू पीने वाला इन बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है।

विज्ञापन का आकर्षण

बहुत सारे लोग जर्दा खाते हैं, खाते ही मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है। जर्दे में ऐसी सुगंध डाल देते हैं कि वह मन को ललचा देती है।

मैंने कुछ लोगों से पूछा—'जर्दा क्यों खाते हो?'

'महाराज ! ऐसे ही खाते हैं।'

'क्या शरीर को कोई लाभ पहुंचाता है जर्दा?'

'नहीं, लाभ तो नहीं पहुंचाता।'

'फिर क्यों खाते हैं?'

'आदत-सी पड़ गई है और बड़ा अच्छा भी लगता है।'

आपने इन नशीले पदार्थों के विज्ञापन देखे होंगे। विज्ञापन में ऐसा बढ़िया चित्र खींच देते हैं कि जो नहीं खाता है उसका मन भी ललचा जाता है। किसी प्रसिद्ध सिने अभिनेता के मुख से कहलवाते हैं—क्या लाजवाब सुगंध! आह! आह!' ऐसा विज्ञापन देखते ही आदमी सोचता है—अरे! यह तो बहुत बढ़िया चीज है और व्यक्ति उसको खाने-पीने के लिए आतुर बन जाता है।

प्रचलन भांग का

तम्बाकू ने आज बहुत सारी बीमारियां पैदा की हैं। जैसे-जैसे अनुसंधान हो रहे हैं, तम्बाकू के परिणाम समाज के सामने आते चले जा रहे हैं। भांग, गांजा, चरस से भी थोड़ा पागलपन आ जाता है, पर उतना नहीं आता। मैं अपना अनुभव बतलाता हूं। मैं नौ-दस बरस का था। रामगढ़ गया। प्रतिष्ठित पोद्दार परिवार ने मुझे भोजन के लिए निमंत्रित किया। वहां मुझे ठंडाई पिलाई गई। ठंडाई में थी भांग। जब पीने के बाद सिर चकराने लगा तब ऐसा लगा—जैसे धरती ऊपर जा रही है और आकाश नीचे आ रहा है दुनिया उल्टी घूमती हुई दिखाई देने लगी। बड़ा विचित्र-सा दिखने लगा, फिर पता चला—इसमें तो भांग थी। भांग खाने वाले कुछ लोग भांग का पूरा गोला खा जाते हैं। जैसे-जैसे उसका नशा चढता है फिर कुछ पता नहीं चलता।

चिन्तित है विश्व

समाचार पत्र में पढ़ा—कुछ लोग नशे के इतने आदी हो जाते हैं कि सांप का डंक न लगे तब तक उनको चैन नहीं मिलता। जब मरफिया का इंजेक्शन लगता है या सांप डंक मारता है, तब शांति मिलती है। इतना जहर शरीर में घुल जाता है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांप काटने से न मरने वाले व्यक्ति मनुष्य के काटने से मर जाते हैं।

हिन्दुस्तान ही नहीं, अमेरिका, यूरोप आदि विश्व के प्रायः देश बहुत चिन्तित हैं कि नशा बहुत बढ़ रहा है। जिस समाज में नशा बढ़ता है, उसमें कर्त्तव्य-बोध और दायित्व-बोध समाप्त होता है। ऐसी निकम्मी पीढ़ी का जन्म होता है, जो काम की नहीं होती, केवल नशे में धुत रहती है। यह समाज के लिए बड़ी चिन्ता का विषय है, पर कठिनाई यह है–आज समस्याएं बहुत हैं, चिन्ता और भय के कारण बहुत हैं। इस स्थिति में आदमी कैसे जीए? तनाव न मिटे, चिन्ता न मिटे तो जीना मुश्किल है। नींद न आए, थकान न मिटे तो आदमी कैसे जीए? एक नशे की गोली ली और नींद आ गई। उस समय न चिंता है, न भय है। आज तो कुछ ऐसे द्रव्य विकसित हो गए हैं, जिन्हें लेने के बाद व्यक्ति को ऐसा लगता है कि जैसे स्वर्ग में पहुंच गया है।

घूमती है दुनिया

नशे में धुत आदमी ने एक टेक्सी को रोका और ड्राइवर से कहा–मुझे जाना है। वह टेक्सी में बैठ गया। ड्राइवर ने पूछा–कहां जाना है? वह पागल सा हो गया, बता नहीं सका कि मुझे कहां जाना है। दस-बीस मिनट उसी प्रकार बेसुध-सा बैठा रहा। ड्राइवर ने सोचा–कोई पागल आदमी है। उसने कहा–नीचे उतरो।

'क्या मेरा घर आ गया?'

ड्राइवर ने कहा–'हां, आ गया।'

'ठीक है पर कार को इतना तेज मत चलाया करो, थोड़ा धीमे-धीमे चलाया करो।'

उसे यह पता ही नहीं था कि कार चली कहां है? नशे में इस प्रकार की विक्षेप जैसी स्थिति बन जाती है।

एक आदमी ने बहुत नशा कर लिया। सिर चकराने लगा। चौराहे पर खड़ा देख रहा है–सारी दुनिया घूम रही है। पुलिस ने कहा–'अरे! चलो, जाओ अपने घर।' उसने कहा–'इसीलिए तो यहां खड़ा हूं। दुनिया घूम रही है, जैसे ही मेरा घर आएगा, मैं उसके भीतर घुस जाऊंगा।'

जरूरी है जागरूकता

ऐसी विचित्र स्थितियां नशे की अवस्था में बनती हैं, जागरूकता पूरी समाप्त हो जाती है। वह समाज, जो अपनी जागरूकता को खो देता है, किसी काम का नहीं होता। भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य गौतम को संबोधित कर कहा–एक क्षण के लिए भी प्रमाद मत करो, निरंतर जागरूक रहो। साधना की एक भूमिका का नाम है–यथालन्दक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस साधना की विधि यह है–हाथ की हथेली पर पानी डाला, वह पानी नीचे चला गया, उस आर्द्र हाथ की रेखा सूखे, इतने काल का प्रमाद होता है तो बेले (दो उपवास) का प्रायश्चित्त आता है। इतनी जागरूकता, निरन्तर अप्रमाद का विकास। व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में जाए, जागरूकता के बिना सफल नहीं हो सकता। चाहे व्यापार, उद्योग अथवा राज्य संचालन का प्रश्न है, जहां भी प्रमादी लोग आकर बैठ जाते हैं, नशेबाज उसका संचालन करते हैं, उसकी व्यवस्था का ठीक संचालन नहीं होता। वे लोग समाज या व्यवसाय का सम्यक् संचालन करते हैं, जो निरन्तर जागरूक होते हैं और स्वत: अपने दायित्व का बोध करते रहते हैं।

नशे का विकल्प

प्रश्न है–तनाव कैसे मिटाया जाए? नशा करने से आदमी को एक प्रकार का सुख मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जब तक आदमी को उससे बड़ा सुख उपलब्ध नहीं कराया जाए, तब तक वह नशे को छोड़ नहीं सकता।

नशे का विकल्प है ध्यान। नशे में भी सुख मिलता है और ध्यान में भी सुख मिलता है। नशा और ध्यान–दोनों में इस बिन्दु पर कुछ समानता है। ध्यान से भीतर में इस प्रकार के रसायनों का स्राव होता है, केमिकल का चेंज होता है कि आनन्द टपकने लगता है। जिन लोगों ने ध्यान नहीं किया, वे सोच नहीं सकते कि ध्यान से सुख कैसे मिलता है। कुछ लोग कहते हैं–ध्यान करते हैं, पर मन जमता नहीं है, टिकता नहीं है। व्यक्ति जामन देना नहीं जानता है तो दूध जमेगा कैसे? वह फट जाता है, पर जमता नहीं है। दूध तब जमेगा, जब व्यक्ति जामन देना जाने। सम्यग् विधि से जामन दिया जाए तो दूध दही बन जाएगा। पानी बर्फ बन जाती है, यदि कोई बर्फ बनाना जाने। तरल पानी में गंदगी मिलाओ, पानी गंदला बन जाएगा। बर्फ की शिला बनाओ, उस पर गंदगी डालो, वह गंदगी रुकेगी नहीं, लुढ़क कर नीचे चली जाएगी। पानी जमा, बर्फ बन गई, दूध जमा, गाढ़ा दही बन गया। एक रूपांतरण हो गया। जैसे ही मन जमा, ध्यान घटित हुआ, भीतर से ऐसे रसों का स्राव होता है कि जैसे कोई सुख का झरना बह रहा है।

आज एक नई वैज्ञानिक पद्धति विकसित हो रही है। यह कहा जा रहा है–अगर हम हमारे कष्ट के संवेदनों को मस्तिष्क तक न पहुंचने दें तो कष्ट का अनुभव नहीं होगा। जो लोग बहुत शक्तिशाली हैं, जिनमें प्रगाढ़ वैराग्य है, स्वाध्याय के प्रति अनुराग है, वे अपने आप ध्यान की दिशा को बदल देते हैं।

काशी के महाराज का गीता के प्रति बड़ा अनुराग था। उनका ऑप्रेशन हो रहा था। उन्होंने डॉक्टरों से कहा–मुझे सूंघनी सुंघाने की जरूरत नहीं है। मुझे आप गीता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दे दें और दस मिनट बाद आप मेरा ऑप्रेशन कर दें। वैसा ही किया गया। ऑप्रेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

राजलदेसर के एक श्रावक थे चांदमलजी बैद। पीठ में फोड़ा हो गया। ऑप्रेशन होना था। पद्मासन लगाकर ध्यान में लीन हो गये। ऑप्रेशन पूरा हो गया। नींद या बेहोशी की दवा सुंघाने की जरूरत ही नहीं पड़ी।

अपने भीतर कुछ ऐसे नियामक तत्त्व हैं, ऐसे पेनकीलर हैं, वे दर्द का नियमन कर लेते हैं। अगर यह रहस्य समझ में आ जाए, एकाग्रता हो जाए तो फिर दर्द का आभास नहीं होता। हमारे भीतर कुछ आनन्द के झरने हैं वे बहने लग जाते हैं तो दर्द की स्थिति में भी व्यक्ति प्रसन्न रहना सीख लेता है। हमने देखा है—एक भाई के कैंसर था। इस भयंकर बीमारी में जैसे ही चौबीसी का संगान होता, वह उसमें तल्लीन हो जाता और कहता 'मेरा दर्द समाप्त हो रहा है।'

शक्तिशाली साधना है कान

जब ध्यान के द्वारा भीतरी रसायनों का परिवर्तन होता है, नशे की आदत अपने आप छूट जाती है। कान का उपयोग सुनने के लिए होता है किन्तु नशे की आदत को बदलने का सबसे शक्तिशाली साधन है कान। यदि इस पर ध्यान का प्रयोग कराया जाए तो नशे के प्रति अपने आप अरुचि पैदा हो जाए। एलोपैथी में भी कुछ ऐसी दवाएं हैं, जो नशे की आदत बदलने के लिए काम में ली जाती हैं। राजस्थान का एक संभाग है सिवांची-मालाणी। वहां अफीम का बहुल प्रचलन है। वहां अफीम की आदत को बदलने के लिए शिविर लगाए जाते हैं, कुछ दवाइयां दी जाती हैं, जिन्हें लेने से नशे की आदत बदल जाती है। आयुर्वेदिक पद्धति में भी कुछ ऐसी दवाइयां हैं, जिनका प्रयोग करने से नशे की आदत बदलती है। ध्यान भी एक प्रयोग है नशे की आदत को बदलने का किन्तु उसमें एक कठिनाई है। जब विड्रोवल सिस्टम (निवर्तन के लक्षण) प्रकट होते हैं, तब उन्हें संभालना होता है और उस समय डॉक्टरों का बड़ा उपयोग होता है। अन्यथा समस्या पैदा हो जाती है।

मुख्य साधन है ध्यान

औषध का प्रयोग भी सहायक बन सकता है। केवल दवाइयों के बल पर नशे की आदत को बदलने में कुछ लाभ होते हैं, तो साथ-साथ में कठिनाइयां भी पैदा होती हैं, समस्याएं भी पैदा होती हैं। अपेक्षित यह है—नशे की आदत को बदलने का मुख्य साधन ध्यान को बनाया जाए और जहां आवश्यक हो, वहां यत्किंचित् मात्रा में औषधियों का सहारा लिया जाए। संस्कृत में एक न्याय आता है 'न्यायाःस्थविरयष्टिप्रायाः।' बूढ़ा आदमी हाथ में लाठी लेकर चलता है। जहां जरूरत पडती है, वहां लाठी को टिका देता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, लाठी के सहारे खड़ा हो जाता है या उसका सहारा ले लेता है। जहां जरूरत नहीं होती है, वहां लाठी को हाथ में रख लेता है। इसी प्रकार जहां आवश्यकता हो वहां औषध का प्रयोग किया जाए अन्यथा ध्यान का प्रयोग हो। ध्यान के द्वारा भीतरी स्रोतों को खोल दिया जाए तो आनन्द के झरने हैं, वे बहने लग जाएंगे। यह अनुभव की बात है। अगर यह बौद्धिक बात होती तो मैं उसे बता देता, किन्तु अनुभव की बात को बताया नहीं जा सकता। कहा जाता है—गूंगे का गुड़। आदमी गूंगा है। उसने गुड़ खाया। पूछा गया—गुड़ कैसा लगा? क्या वह बता पाएगा? बोलने वाला भी क्या बताएगा? इतना ही कि मीठा लगा। पूछा जाए—स्वाद कैसा है? तो क्या बताए, यह बताने की नहीं, अनुभव की बात है। जिन लोगों ने ध्यान का अनुभव किया है, उन लोगों को पता है—ध्यान करने में कितना सुख और कितना आनन्द प्रकट होता है।

भीतर है सुख का स्रोत

प्रेक्षाध्यान के एक शिविर में हैदराबाद के युवक ने भाग लिया। वह पहली बार ध्यान-शिविर में आया था। भृकुटि के मध्य दर्शनकेन्द्र पर बाल सूर्य का ध्यान। वह प्रयोग में बैठा। ध्यान का समय था एक घण्टा। एक घण्टा पूरा हो गया। सब लोग उठ गए पर वह नहीं उठा। मैंने कहा—कोई बात नहीं है, अभी चल रहा है, चलने दो। दो घण्टा पूरे हो गए तो भी नहीं उठा। तीन घण्टे होने लगे। घर वाले घबरा गए, कहने लगे—अब तक नहीं उठा। अब क्या होगा? मैं उसके पास गया, उसके कान में कुछ सुनाया तब उसने आंखें खोली। मैंने कहा—तीन घण्टा बिल्कुल मूर्ति—प्रतिमा की तरह बैठे रहे। तुमने ध्यान क्यों नहीं खोला? उसने कहा—महाराज ! इतने सुखद स्पन्दन, कम्पन, वाइब्रेशन आ रहे थे कि उन्हें तोड़ना मेरे वश की बात नहीं रही। प्रश्न है—इतना सुख कहां से आया? ऐसा सुख, जिसे छोड़ने और तोड़ने का मन ही न हो, कहां से फूटा? जब भीतर में सुख के प्रकम्पन पैदा होते हैं, तब आदमी को पता चलता है कि हमारे भीतर कितना सुख है।

प्रेक्षाध्यान का एक शिविर था लाडनूं में। बम्बई से काफी लोग आए हुए थे। शिविर पूरा हो गया। बम्बई के एक दम्पति जब जाने लगे तब भाई एक बच्चे की तरह सिसक-सिसक कर रोने लगा। मैंने सोचा—क्या हो गया? क्या किसी ने अपमान कर दिया? तिरस्कार कर दिया? कुछ कह दिया या कुछ खो गया? हुआ क्या? मैंने कहा—बात क्या है? आप बात तो बताएं। भाई बोला—बात कुछ नहीं है। अब मैं जा रहा हूं इसलिए रोना आ रहा है। मैंने पूछा—अरे! क्यों? भाई ने गद्गद स्वर में कहा—क्या बताऊं? हम लोग बम्बई जा रहे हैं। मोहमयी नगरी। सम्पन्न घर। कुछ कमी नहीं है। सुख के साधन-सुविधा, सब कुछ प्राप्त है। साठ बरस की मेरी उम्र हो गई। मैंने दुनिया भर के सारे सुख भोगे हैं, पर इन दस दिनों में जितना आनंद आया है, उतना जीवन में कभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं मिला। ये आंसू इसलिए आ रहे हैं कि न जाने ऐसा सुख फिर कब मिलेगा।

ध्यान की शरण में जाएं

प्रश्न होता है कि ध्यान-शिविर में कौनसा सुख मिला? कौनसा बढ़िया भोजन मिला? कौनसा पदार्थ मिला और कौनसा धन मिला गया, जो इतना सुख मिल गया? हम सोच नहीं सकते कि हमारे भीतर में कितना सुख है। अगर वह स्थिति बन जाती है तो नशा अपने आप छूट जाता है। नशे की मन में ही नहीं आती। आदमी नशे के सामने ही नहीं देखता। वह नहीं होता है तो आदमी को विकल्प खोजना होता है।

ध्यान नशे का विकल्प है। नशा या ध्यान—दोनों में से आदमी को चुनाव करना है। यदि नशा चुनता है तो वह एक बार तो चिंता को मिटाता है किन्तु वह बुरा इसलिए है कि उसके परिणाम बड़े बुरे हैं। अनेक भयंकर बीमारियां, प्रमाद-जनित समस्याएं और दायित्व-बोध का अभाव—ये सब नशे की निष्पत्तियां हैं। इन कारणों से नशा खराब है और ध्यान सुख देने वाला है। जो ध्यान की शरण में जाएगा, उसे नशे की शरण में जाने की कभी आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनाव और ध्यान

धर्म वह होता है जिससे वर्तमान की समस्या को समाधान मिले, जीवन की समस्या को समाधान मिले। धर्म कोरी कल्पना या आकाशी उड़ान नहीं है। वह एक यथार्थ है और उससे समाधान मिलता है। समाधान का शक्तिशाली साधन है सत्य। झूठ कभी समाधान नहीं देता। उससे एक बार समाधान होता सा लगता है किन्तु समस्या और उलझ जाती है। सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है, समाधायक तत्व नहीं है।

वर्तमान युग की एक बहुत बडी समस्या है तनाव। तनाव को मिटाने के लिए वैज्ञानिक क्षेत्र में काफी प्रयत्न हो रहा है, काफी दवाइयां आविष्कृत हुई हैं। तनाव मुक्ति के लिए शामक औषधियां दी जाती हैं, एक बार थोड़ा-सा तनाव मिट जाता है। जैसे ही दवा का असर समाप्त होता है, तनाव पुनः आ जाता है, नींद उड जाती है फिर नींद के लिए गोलियां लो और जीओ। यह क्रम बन जाता है। धर्म के पास भी कुछ सूत्र तनाव को मिटाने के लिए हैं, उन सूत्रों को भी जान लेना जरूरी है।

तनाव का हेतु

हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रकोष्ठ हैं। घर में दो-चार अथवा पांच-दस कमरे बनते हैं किन्तु मस्तिष्क में तो इतने अधिक कमरे हैं, इतने अधिक कोष्ठ हैं कि उन्हें गिनना भी मुश्किल है। हर कोष्ठ का अलग-अलग काम है। आजकल प्रकोष्ठ की प्रक्रिया चल रही है–महिला प्रकोष्ठ, राजनीति प्रकोष्ठ, अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ आदि। एक संस्था से अनेक प्रकोष्ठ जुड़े हुए होते हैं। हमारे मस्तिष्क में भी बहुत सारे प्रकोष्ठ हैं। एक प्रकोष्ठ तनाव पैदा करने वाला है। उसे न बदला जाए, शिक्षित न किया जाए, तब तक तनाव मिटता नहीं है। हमें मस्तिष्क के उस प्रकोष्ठ को पकड़ना है जो तनाव को पैदा करता है और उसे ध्यान के द्वारा शिक्षित करना है, प्रशिक्षण देना है, जिससे कि तनाव पैदा न हो, और हो तो तत्काल निकल जाए, उसका रेचन हो जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशिक्षण के लिए ध्यान बहुत उपयोगी है। जो शिक्षा आज चल रही है, वह तनाव को विसर्जित करने की शिक्षा नहीं है। वह उस मस्तिष्कीय प्रकोष्ठ को प्रशिक्षित करने की शिक्षा नहीं है, जो तनाव का जनक है। आज की शिक्षा व्यक्ति को तार्किक और बौद्धिक बनाती है। अधिक तार्किकता और बौद्धिकता कभी-कभी तनाव भी पैदा कर देती है।

तनाव क्यों पैदा होता है? मन में कोई एक बात आ गई, भावना में कोई बात समा गई और तनाव पैदा हो गया। शारीरिक तनाव शारीरिक श्रम से पैदा हो जाता है। थोड़ा विश्राम करते हैं, मिट जाता है। जटिल है मानसिक तनाव और उससे भी अधिक जटिल है भावात्मक तनाव। इन दोनों तनावों को मिटाने के लिए मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। इस संदर्भ में धर्म का बहुत बड़ा उपयोग है। धर्म का एक शब्द है समता। आजकल बहुत क्षेत्रों में समता शब्द चलता है। यह राजनीति के क्षेत्र में भी चलता है किन्तु यह मूल शब्द है धर्म का। इसका आविष्कार धर्म के लोगों ने किया था। समता का तात्पर्य है—अनुकूल और प्रतिकूल, सर्दी और गर्मी—दोनों प्रकार की स्थितियों में सम रहना। गर्मी है, आदमी कमरे में आता है और सीधा बटन पर हाथ जाता है पंखा चलाने के लिए। वह एक मिनट के लिए गर्मी को सहन नहीं कर सकता। जो व्यक्ति अपने जीवन में सर्दी और गर्मी को सहन नहीं कर सकता, वह मजबूत आदमी नहीं बन सकता। ऐसा कमजोर रह जाता है कि एक ही चपेट में वह बीमार हो जाता है। बरसाती, तूफानी या बर्फीली हवा की चपेट में आते ही जुकाम से पीड़ित हो जाता है। उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति कमजोर हो जाती है।

अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियां

एक प्रश्न है—अनुकूल परिस्थितियां कौन सी हैं, जो तनाव पैदा करती हैं? लाभ, सुख, जीवन, प्रशंसा और सम्मान—ये पांच अनुकूल परिस्थितियां हैं। मनचाहा लाभ हो गया, आदमी बहुत खुश हो जाता है। सुख-सुविधा मिलती है तो आदमी बहुत खुश होता है। किसी ने कह दिया—तुम अभी पचास वर्ष और जीओगे, तुम्हारी आयु लम्बी है, जीवन अच्छा है। यह सुनकर वह बहुत खुश होता है। यदि कहा जाए—तुम जल्दी मर जाओगे तो उस पर क्या बीतती है? वह अधमरा-सा हो जाता है। किसी ने दो शब्द प्रशंसा के कहे, आदमी फूल जाता है। सम्मान मिलता है, सुख होता है। ये अनुकूलता की स्थितियां हैं।

अलाभ, दुःख, मरण, निन्दा और अपमान—ये पांच प्रतिकूलता की स्थितियां हैं।

धर्म का अर्थ है—इन परिस्थितियों में सम रहना। जहां विषमता आई, धर्म खण्डित हो गया। दुनिया में ऐसे आदमी कम हैं, जो इन परिस्थितियों में सम रहे सकें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक भाई ने कहा–तनाव बहुत रहता है। मैंने पूछा–कारण क्या है। उसने बताया–व्यापार ठीक नहीं चल रहा है। लाभ नहीं है, अलाभ हो रहा है। तनाव का कारण यही है। जैसे ही अलाभ पैदा हुआ, तनाव पैदा हो जाएगा। आप यह सोचें कि अनुकूलता में तनाव पैदा नहीं होता। उसमें भी तनाव होता है। यदि लाभ बहुत हो गया तो साथ-साथ में तनाव भी बहुत बढ़ जाएगा। वह तनाव इस कारण होगा कि जो लाभ हुआ है, उसे कैसे बचाएं। धन इतना आ गया, बचे कैसे? बहुत खा लिया अब पचे कैसे ? बहुत कमा लिया, उसको कहां रखें, इन्कमटेक्स से कैसे बचें? चोर-डकैतों से कैसे बचें? यह चिन्ता सताती है और तनाव पैदा हो जाता है। तनाव दोनों तरफ से है। लाभ में भी तनाव और अलाभ में भी तनाव। अनुकूलता में भी तनाव और प्रतिकूलता में भी तनाव। दोनों स्थितियों में विवेक करना बड़ा कठिन होता है। जो विवेक करना नहीं जानता, वह दोनों ही स्थितियों में समस्या को निमंत्रण दे देता है।

जरूरी है विवेक

एक व्यक्ति ने अपने घर में बिल्ली और कुत्ता–दोनों को पाल रखा था। बिल्ली अधिक बोलती थी, दिन-रात म्याऊं-म्याऊं करती थी। मालिक को बड़ा अटपटा लगता, वह सोचता–सारे दिन म्याऊं-म्याऊं करती है, आराम भी नहीं करने देती, नींद में भी बाधा डालती है। जब एक दिन बिल्ली म्याऊं-म्याऊं कर रही थी, मालिक उसे खूब पीटते हुए बोला–क्या सारे दिन म्याऊं-म्याऊं करती है? कुत्ते ने देखा–यह बोलती है इसलिए पीटी गई, अब मैं बोलूंगा ही नहीं। उसने मौन कर लिया। रात को घर में चोर घुस गए। चोरी हो गई। सुबह हुई। मालिक लाठी लेकर कुत्ते पर बरस पड़ा, बोला–तुझे क्यों पाला है? इतनी रोटियां किसलिए खिलाई हैं? इसलिए पाला है कि चोर आए तो भौंक कर सूचित कर दो। तूमने मौन साध रखा है। मालिक ने उसे यह कहते हुए खूब पीटा।

बिल्ली की मरम्मत हुई ज्यादा बोलने के कारण और कुत्ते की मरम्मत हुई न बोलने के कारण। प्रश्न खड़ा हो जाता है कि मौन अच्छा है या बोलना अच्छा? क्या करें? हमें यह विवेक करना है–कहीं-कहीं मौन करना भी अच्छा है और कहीं-कहीं बोलना भी अच्छा है। बोलना भी जरूरी है और मौन भी जरूरी है। जो आदमी विवेक नहीं कर पाता, अविवेक के साथ चलता है, वह समस्या पैदा कर लेता है। यह विवेक करना होता है कि लाभ अच्छा है या अलाभ। हम यह नहीं कह सकते कि लाभ अच्छा ही है और यह भी नहीं कह सकते कि अलाभ अच्छा नहीं ही है। कहीं-कहीं ऐसा होता है कि अलाभ आदमी को आगे बढ़ा देता है। कुछ मिला नहीं, इस चिंतन से मन में एक भावना जागती है और व्यक्ति बहुत आगे बढ़ जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाभ और अलाभ

लाभ और अलाभ—इन दोनों स्थितियों में तनाव भी पैदा होता है और इन दोनों स्थितियों में समता भी पैदा हो सकती है। समता के क्षेत्र दोनों हैं। लाभ होने पर भी समता और अलाभ होने पर भी समता। जब लाभ होता है तब व्यक्ति सोचता है—धन मिला है, संयोग हुआ है, किन्तु यह अनित्य है। लक्ष्मी किसी के साथ स्थिर नहीं रहती। उसका किसी के साथ गठबंधन नहीं होता। राजस्थान के कवियों ने लिखा—यह पृथ्वी कुंआरी कन्या है। आज तक इसकी कभी किसी से शादी नहीं हुई। लक्ष्मी ने किसी के साथ शादी नहीं की, इस पृथ्वी ने भी किसी के साथ शादी नहीं की। लोगों ने इससे मोह किया पर इसने किसी के साथ मोह नहीं किया। आई और चली गई। जब यह भावना जाग जाती है, अनित्यता की अनुप्रेक्षा से मस्तिष्क को शिक्षित कर लिया जाता है तब न लाभ तनाव पैदा करता है और न अलाभ तनाव पैदा करता है। अनित्य अनुप्रेक्षा के द्वारा जब यह बात मस्तिष्क के प्रकोष्ठ में जम गई—जो कुछ है, सब संयोग है, मेरा नहीं है, मात्र संयोग है, तब तनाव कहां से आएगा? आप अभी इस हॉल में बैठे हैं। यह मात्र संयोग है। आप आए और बैठ गए। किन्तु दिन भर या प्रलंब काल तक बैठे नहीं रहेंगे। एक घण्टा पूरा होते ही यहां से उठकर चले जाएंगे। इसलिए कि यह मात्र संयोग है। कोई भी संयोग नित्य नहीं होता। संयोग को स्थाई मान लेने से बड़ी कोई भ्रांति नहीं होती और संयोग को शाश्वत मान लेने से बड़ी मूर्खता भी नहीं होती। मस्तिष्क इस भावना से शिक्षित हो जाए तो लाभ भी तनाव पैदा नहीं करेगा और अलाभ भी तनाव पैदा नहीं करेगा। यह मान लिया—संयोग अनित्य है, संयोग का वियोग निश्चित होता है तो वियोग होने पर भी अथवा प्राप्त न होने पर भी तनाव नहीं आएगा।

मुनि को समता का प्रतीक माना गया। साधु समता का प्रतीक कैसे होता है? उदाहरण की भाषा है--एक साधु भिक्षा के लिए गया, काफी घरों में घूमा पर भिक्षा नहीं मिली। वह वापिस खाली आ गया। तनाव पैदा होने का कारण स्पष्ट है। भूख थी इसलिए भिक्षा के लिए गया किन्तु मिला कुछ भी नहीं। इस अलाभ की स्थिति में तनाव पैदा होना चाहिए पर तनाव पैदा नहीं होता क्योंकि उसका मस्तिष्क शिक्षित है। वह सोचता है—चलो, कोई बात नहीं, आहार करना भी एक काम था और आहार नहीं मिला तो सहज उपवास हो गया। कितना अच्छा हुआ कि आज सहज मुझे उपवास करने का मौका मिल गया। ऐसे व्यक्ति में तनाव कैसे पैदा होगा, जिसका मस्तिष्क शिक्षित हो जाता है? मस्तिष्क का वह प्रकोष्ठ, जो समता को पैदा करता है, जागृत हो जाए तो तनाव पैदा नहीं होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख और दु:ख

सुख और दु:ख तनाव पैदा करने वाले हैं। सुख भी तनाव पैदा करता है और दु:ख भी तनाव पैदा करता है। किसी व्यक्ति को सुख ज्यादा मिला, सुख की सामग्री ज्यादा मिली और जीवन में सुख का संवेदन ज्यादा हुआ तो भी तनाव पैदा हो जाता है। भोग भी तनाव पैदा करता है। ज्यादा सुख मिलता है तो मन में दूसरा विकल्प आता है। जो लोग हमेशा बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं, उनके मन में आता है—चलो, जंगल की सैर करें। यह जंगलों की सैर क्यों? इसलिए कि एक स्थिति में आदमी कभी प्रसन्न नहीं रहता। उसे यह पसन्द नहीं आता कि वह एक ही स्थिति में रहे। वह स्थिति को बदलते रहना चाहता है। जो प्रतिदिन बढ़िया-बढ़िया भोज़न करता है, उसके मन में कभी-कभी बाजरे की रोटी और बाजरे का दलिया खाने की बात भी आ जाती है। इसलिए आती है कि आदमी बदलना चाहता है, एक रूप में रहना नहीं चाहता। ज्यादा सुख भी तनाव पैदा कर देता है और व्यक्ति कभी-कभी कह भी देता है कि चारों ओर सुख का वातावरण है, पदार्थ हैं। मुझे तो ऐसा जीवन जीना है जहां ये न हों। बड़े-बड़े राजा और सम्राट् जो मुनि बने हैं, सुखों से ऊब कर बने हैं। उनके मन में विराग क्यों आया? इसलिए कि अतिभोग विराग पैदा करता है। इतना भोग लिया, इतनी सारी सामग्री पा ली फिर भी कहीं शांति नहीं मिली, इसलिए छोड़ने की बात मन में आई। अगर सुख तनाव पैदा नहीं करता तो कोई राजा या धनी आदमी आज तक संन्यासी नहीं बनता, मुनि नहीं बनता। यह अतिभाव तनाव भी पैदा करता है, वैराग्य का एक कारण भी बनता है। दु:ख तो तनाव पैदा करता ही है। थोड़ा-सा दु:ख आता है, दु:ख की स्थिति आती है, आदमी तनाव से भर जाता है।

जीवन और मरण

जीवन और मरण भी तनाव पैदा करता है। जब जीवन बहुत लम्बा हो जाता है तब कभी-कभी आदमी कहता है—मैं तो जीते-जीते थक गया, ऊब गया। प्रसिद्ध कहानी है। एक बुढ़िया ने कहा—मैं इतनी बूढ़ी हो गई, अभी तक बुलावा नहीं आया। उसने अपनी ग्रामीण भाषा में कहा—'ऐसा लगता है कि रामजी मेरी चिट्ठी भूल गए। वह जीवन से ऊब गई थी और ऊब तनाव पैदा कर रही थी। मरण भी तनाव पैदा करता है। वह बुढ़िया जिस झोंपड़ी में रहती थी, एक दिन उसमें काला नाग निकला। नाग को देखते ही बुढ़िया चिल्लाई। बाहर भागी। उसने जोर से गांव वालों को पुकारा—आओ ! आओ ! सांप आ गया। भयंकर काला नाग है, इसे पकड़ो। लोग इकट्ठे हुए, बोले—बुढ़िया मां ! तुम रोज कहती थी—रामजी मेरी चिट्ठी भूल गए। मेरी चिट्ठी चूहे खा गए। आज तो सहज ही चिट्ठी आ गई थी। तुम भागीं क्यों? बुढ़िया ने मासूम स्वर में कहा—'वीरां ! मरणो दोरो लागै।' मरना बड़ा कठिन लगता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन और मरण–दोनों तनाव पैदा करते हैं, किन्तु जिस व्यक्ति ने अपने मन को शिक्षित कर लिया, उसके जीवन और मरण तनाव का कारण नहीं बनेंगे। जो अनशन पूर्वक समाधि मरण की प्रक्रिया में चलते हैं, उन्हें मरने का कोई डर नहीं होता, कोई तनाव नहीं होता।

निंदा और प्रशंसा

निंदा और प्रशंसा भी तनाव पैदा करती है। बहुत ज्यादा प्रशंसा होती है तो आदमी सुनते-सुनते ऊब जाता है, एक तनाव पैदा हो जाता है। निंदा सुनते ही आदमी का आवेश प्रखर हो जाता है, चेहरा तनाव से भर जाता है। जिस व्यक्ति का मस्तिष्क प्रशिक्षित है, वह न प्रशंसा की स्थिति में तनाव में आएगा और न निंदा की स्थिति में तनाव में जाएगा।

पूज्य गुरुदेव कहते हैं–'मैंने जीवन में बहुत प्रशंसा पाई और बहुत निंदा भी सुनी। अगर ये दोनों नहीं होते जीवन में संतुलन नहीं बनता।' कोरी प्रशंसा आदमी को फूलने का मौका देती है, गर्व से भर देती है और कोरी निंदा हीनभावना पैदा करती है। हीन भावना और अहं भावना–दोनों से वही व्यक्ति बच सकता है, जिसने अपने आप को शिक्षित कर लिया। जिसका मस्तिष्क शिक्षित हो गया, वह दोनों स्थितियों में सम रह सकता है।

सम्मान और अपमान

सम्मान और अपमान–ये दोनों जटिल स्थितियां हैं। सम्मान मिलता है, एक अलग प्रकार का तनाव पैदा हो जाता है। जैसे ही सम्मान मिलता है, व्यक्ति की चाल बदल जाती है। वह अकड़कर चलता है। उसका मुंह ऊपर हो जाता है, वह मुंह उठाकर ही नहीं देखता। आकृति बदल जाती है, भाव-भंगिमा बदल जाती है। यदि मस्तिष्क शिक्षित हो जाता है तो दोनों स्थितियों में समता बनी रहती है। अपमान हो जाए तो वही बात और सम्मान मिल जाए तो वही बात। वह इस सचाई को समझ लेता है–आत्मा में न सम्मान है, न अपमान, किन्तु वह समान है। समान है इसलिए सम्मान और अपमान की कोई बात नहीं है। ये सब केवल लुभाने वाली बातें हैं और वह उनसे ऊपर उठ जाता है।

एक दार्शनिक संत बहुत पहुंचा हुआ था। लोग उसकी बात को समझ नहीं पा रहे थे। वे बहुत बार उसके बारे में ऊटपटांग बातें भी कर जाते। उसकी निंदा भी करते। ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है। लोग सुकरात के तत्त्वज्ञान को समझ नहीं पाए जहर की प्याली पिला दी। आचार्य भिक्षु को समझ नहीं पाए, न जाने कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ी और कितनी निंदा हुई। आचार्य भिक्षु ने अपने जीवन में जितना अपमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाया, उतना बहुत कम लोगों के जीवन में होता होगा पर उन पर कोई असर नहीं हुआ। उस दार्शनिक संत की निंदा का स्वर बहुत दिन तक चलता रहा। एक व्यक्ति ने पूछ लिया–'दार्शनिक महोदय ! आपकी इतनी निंदा होती है। क्या आपको गुस्सा नहीं आता? आपमें हीनभावना नहीं आती?' दार्शनिक ने बहुत मार्मिक उत्तर दिया–'भैया ! जो निंदा होती है, वह मेरे पास आती है किन्तु उस समय मैं अपने आप को इतना ऊंचा उठा लेता हूं कि वह मेरे पास पहुंच ही नहीं पाती। मुझमें हीनभावना कैसे आएगी?'

जिस व्यक्ति ने अपने आपको ऊंचा उठा लिया, उस तक निंदा या प्रशंसा की बात पहुंच ही नहीं पाती। उसमें कैसे अहंकार आएगा और कैसे हीनभावना जागेगी। ऊंचा उठाने का तात्पर्य है–मस्तिष्क को इस प्रकार साध लेना कि वह दोनों स्थितियों में एकरूप रह सके।

ये पांच द्वन्द्व हैं, अनुकूलता और प्रतिकूलता के संवेदन को जन्म देने वाले घटक तत्त्व हैं। अनुकूलता और प्रतिकूलता की परिस्थितियां तनाव पैदा करने वाली हैं। पूरा समाज इन परिस्थितियों के कारण तनाव को भोग रहा है। इन परिस्थितियों के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाए, उस दृष्टिकोण से मस्तिष्क प्रशिक्षित हो जाए तो समस्या का समाधान सामने दिखाई देगा।

टूटती हैं भ्रांतियां

ध्यान का मतलब है सचाइयों का अनुभव करना, सचाइयों को जानना। जब तक हम भीतर में नहीं जाएंगे, हमें सचाइयों का पता नहीं चलेगा। बाहर में जो सचाइयां प्रतीत होती हैं, उनके साथ बहुत भ्रांति पैदा हो जाती है। उपाध्याय यशोविजयजी ने लिखा–'जिस व्यक्ति ने अपने आप को नहीं देखा, आत्मा को नहीं देखा, उसकी पदार्थ के प्रति होने वाली भ्रांति कभी टूटेगी नहीं। उस व्यक्ति की पदार्थ के प्रति भ्रांति टूटती है, जिसने अपने आप को देखा है।' जब हम अपनी आत्मा को जानने की दिशा में आगे बढ़ेंगे तब हमारी पदार्थ विषयक भ्रांतियां टूटेंगी। हमारा प्रशिक्षण अलग प्रकार का बन जाएगा, मस्तिष्क को नई जानकारियां मिलेंगी। जब तक पदार्थ के जगत् में ही रहेंगे, अपने भीतर झांकने का प्रयत्न नहीं करेंगे तब तक भ्रांतियां बढ़ती ही चली जाएंगी।

पांच मित्र थे। वे सब यह मानते थे–भई ! हमारी गाढ़ मित्रता है, हम सब एक-दूसरे के सहयोगी हैं। सब परार्थ दृष्टि वाले हैं। स्वार्थी कोई नहीं है। एक दिन उत्सव का प्रसंग था। एक मित्र ने कहा–कितना अच्छा हो, आज खीर बना लें। सबने कहा–प्रस्ताव सुन्दर है। एक बोला–चावल मैं ले आऊंगा। दूसरा बोला–दूध मैं ले आऊंगा। तीसरा बोला–चीनी मैं ले आऊंगा, चौथा बोला–चूल्हा और ईंधन मैं ले आऊंगा। पांचवां मित्र मौन रहा। सबने पूछा–बोलो, तुम क्या लाओगे। पांचवां मित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोला–मैं अपने भाई-बहिनों को खाने के लिए ले आऊंगा। मित्रता की भ्रांति टूट गई। सबने कहा–कितना स्वार्थी है। केवल अपना व्यक्तिगत स्वार्थ देखता है।

जब ध्यान करना आदमी शुरू करता है तो भ्रांतियां टूटनी शुरू हो जाती हैं। व्यक्ति के मन में एक भ्रांति यह रहती है कि सुख खाने में है। अच्छा खाने में सुख तब मिलेगा जब शाक में खूब मिर्च-मसाले डालेंगे। जब व्यक्ति शिविर में ध्यान करने आता है, तब यह भ्रांति टूट जाती है। जब भीतर झांकना शुरू करता है तब लगता है–अरे ! सुख तो भीतर है। एक घण्टा ध्यान किया और अपूर्व आनन्द आया। प्रश्न हो सकता है–उस समय क्या मिला? क्या मसालेदार खाद्य पदार्थ मिले? मिठाइयां या चटपटी चीजें मिलीं? कुछ भी नहीं मिला फिर आनन्द कहां से आया? वह आनन्द बाहर से नहीं, भीतर से फूटा है। यह सचाई ध्यान से उपलब्ध होती है। जब यह सचाई सामने आती है, पदार्थ में सुखारोपण की भ्रांति टूट जाती है।

ध्यान भ्रांति को तोड़ने और सचाई को उपलब्ध करने का साधन है। जो व्यक्ति केवल बाह्य जगत् में ही जीता है, अन्तर्जगत् में कभी प्रवेश नहीं करता, उसका जीवन अच्छा नहीं होता। अच्छा जीवन वह होता है, जिसमें इन द्वन्द्वों को सहने की शक्ति होती है। समता व्यक्तिगत है। इसका दूसरे से कोई संबंध नहीं है। लाभ-अलाभ आदि स्थितियों में सम रहना, एक जैसा रहना, हमारी व्यक्तिगत समता है। यह व्यक्तिगत समता जैसे-जैसे बढ़ती है, तनाव कम होता चला जाता है। मैं मानता हूं–एक साथ तनाव के चक्र को तोड़ देना बड़ा कठिन है। क्योंकि मस्तिष्क के दूसरे प्रकोष्ठ को हमने इतना शिक्षित कर रखा है कि वही-वही बात हमारे सामने बार-बार आती है। यह सामान्य प्रकृति है। इसमें कोई अपवाद ढूंढ़ना भी मुश्किल है। लाभ हुआ और वह बहुत खुश हो जाएगा। किसी से कुछ कराना है तो उसकी प्रशंसा कर दो, न होने वाला काम भी बन जाएगा और थोड़ी-सी निंदा कर दो, बनने वाल काम भी बिगड़ जाएगा। इस सामान्य प्रकृति से बचने वाले लोग विरल होते हैं।

कहां से आता है यह स्वर !

शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास को एक किसान ने पीट दिया। यह प्रश्न शिवाजी के सामने आया। किसान ने सोचा–अब तो फांसी की सजा ही मिलेगी। समर्थ रामदास बोले–'शिवा ! इसने मुझे पीटा है, दण्ड मैं दूंगा। तुम्हें इसे दंड देने का अधिकार नहीं है।' शिवाजी बोले–'आपकी जैसी मर्जी।' रामदास ने कहा–'शिवा ! इस किसान को पांच बीघा जमीन और दे दो।' सब आश्चर्य में पड़ गए, बोले–'यह क्या दण्ड दिया आपने?' समर्थ रामदास ने कहा–'बेचारा गरीब है। यदि गरीब नहीं होता तो एक गन्ने के टुकड़े के लिए मुझे नहीं पीटता। इसे पांच बीघा जमीन दे दो फिर यह किसी को पीटेगा नहीं।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह स्वर कहां से निकल सकता है? जिस व्यक्ति ने समता को साध लिया, अपने मस्तिष्क को प्रशिक्षित कर लिया, वही इस प्रकार का दंड दे सकता है। इस बात पर हम ध्यान केन्द्रित करें—ध्यान का अर्थ मस्तिष्क को ऐसा प्रशिक्षित कर लेना है कि आदमी तनाव से मुक्ति पा सके और समता की दिशा में आगे बढ़ सके। समता और तनाव मुक्ति में अन्तःसंबंध है। समता की उपलब्धि का अर्थ है—तनाव से मुक्ति। यह एक महान उपलब्धि है और वह ध्यान के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८

सामाजिक समता और ध्यान

समता और समाज में समता, यह किसी एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं है। वर्तमान परिस्थिति को देखें तो अनेक सामाजिक विषमताएं उभरकर सामने आती हैं। सामाजिक विषमता में कुछ प्राकृतिक बातें भी हो सकती हैं किन्तु बहुत सारी बातें मान्यता, प्रकल्पना के आधार पर बनी हुई हैं। एक उदाहरण है जातिवाद। एक आदमी उच्च जाति का है, एक आदमी निम्न जाति का। जो निम्न जाति का है, वह छोटा है और जो उच्च जाति का है, वह बड़ा है। एक स्पृश्य है और दूसरा अस्पृश्य। वर्णवाद के आधार पर यह विभाजन हो गया। एक काला है और दूसरा गोरा। गोरे को महत्त्व प्राप्त है और काले को महत्त्व प्राप्त नहीं है।

प्रश्नचिह्न हैं विषमताएं

जाति, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर जो विषमताएं समाज में चल रही हैं, वे आज प्रश्नचिह्न बन चुकी हैं। आज का मानस उन विषमताओं के प्रति उद्विग्न है। वह नहीं चाहता कि ये विषमताएं रहें, किन्तु फिर भी चल रही हैं। पुराने बद्धमूल संस्कार अथवा अहंभाव उन विषमताओं को बनाए हुए हैं। अहं के चक्र को तोड़ना कोई साधारण घटना नहीं है। एक बार जो बड़ा कहला गया, बड़ा बन चुका, वह फिर से सबके सामने साधारण रूप में आए, समान रूप में आए, यह उसको मान्य नहीं होता। इस स्थिति में अहंकार बाधक बन जाता है। वह सोचता है—मैं बड़ा कहलाने वाला, उच्च जाति का कहलाने वाला आज निम्न वर्ग के साथ रहूं, बैठूं या बातचीत करूं, तो कैसा लगूंगा? मैं भी उसी श्रेणी में आ जाऊंगा। यह अहं की वृत्ति समानता की वृत्ति को उभरने से पहले ही दबा देना चाहती है, इसीलिए समाज में संघर्ष चलता है

संघर्ष अनेक प्रकार के होते हैं। व्यक्तिगत संघर्ष भी होता है समूहगत संघर्ष भी होता है। आज संघर्ष का एक नया रूप बन गया वर्ग-संघर्ष। वह मिल-मालिक और मजदूरों के बीच चलता है, शोषक और शोषित के बीच चलता है। इसी आधार पर मार्क्स ने कहा था—यह वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है, ऐतिहासिक सचाई है। वर्ग-संघर्ष के आधार पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही एक दिन शोषित वर्ग शासन कर सकता है, शोषक वर्ग को भी समाप्त कर सकता है।

सांस्कृतिक भिन्नता के कारण संघर्ष हो सकता है। संघर्ष होने का एक मुख्य कारण है–भिन्नता। विचारों की भिन्नता के कारण संघर्ष हो जाता है। दो व्यक्ति हैं, परस्पर विचार नहीं मिलते, संघर्ष हो जाता है। परिवार में भी संघर्ष होता है, राजनीतिक पार्टियों में भी संघर्ष होता है, सामाजिक संस्थाओं में भी संघर्ष होता है। दो संस्कृतियां भिन्न-भिन्न हैं, वे परस्पर टकरा जाती हैं इसीलिए बहुत बार हिन्दु-मुस्लिम का झंझट होता रहता है। ये दो संस्कृतियां जब तब टकरा जाती हैं और सांप्रदायिक संघर्ष होते रहते हैं। जहां भी आदमी का स्वार्थ टकराता है, संघर्ष हो जाता है। आर्थिक प्रलोभन भी संघर्ष का बड़ा कारण बनता है।

दो फेरे बाद में

प्राचीन घटना है। एक प्रौढ़ व्यक्ति को पत्नी का वियोग हो गया। उसने दूसरी शादी का प्रयत्न किया। प्रौढ़ व्यक्ति को कोई अपनी कन्या कैसे दे? पर पैसे के बल पर यह भी सम्भव बन गया। पुराने जमाने में हजार दो हजार में लड़कियां मिल जाती थीं। आज तो एक युवा लड़की के दो-चार-लाख रुपये भी मांगे जा सकते हैं। लड़की के पिता ने कहा–यदि दो हजार रुपये दो तो मैं लड़की दे सकता हूं। प्रौढ़ व्यक्ति ने यह शर्त स्वीकार कर ली, उसने दो हजार रुपये दे दिये। शादी निश्चित हो गई। निर्धारित दिन प्रौढ़ व्यक्ति बारात लेकर आया। रात्री का समय। फेरा खाने की तैयारी। दूल्हा चंवरी पर बैठ गया। पुत्री के पिता के मन में लालच आ गया। वह बोला–'अगर चार हजार रुपया दो तो शादी हो सकती है, अन्यथा नहीं हो सकती।' वह उस समय क्या करे? रुपया कहां से लाए? उसने स्वीकार किया–'ठीक है, चार हजार दे दूंगा।' ब्राह्मण ने फेरे शुरू करवा दिए। दो फेरे हो गए। कुछ लोग सात फेरे मानते हैं, कुछ लोग चार फेरे मानते हैं। चार फेरे होने थे, दो फेरे हुए और वह खड़ा हुआ। लोगों ने कहा–अरे! बीच में कैसे उठे? अभी तो दो फेरे होना बाकी है। वह बोला–'मैंने दो हजार रुपये दिये थे, दो फेरे खा लिए। अब दो हजार कमाकर फिर दूंगा तो उस समय दो फेरा फिर खा लूंगा।' उसके इस उत्तर से पुत्री का भविष्य अनिश्चित बन गया। एक संघर्ष की-सी स्थिति निर्मित हो गई। यदि आर्थिक लोभ नहीं होता तो दो फेरा बाद में खाने की बात ही नहीं आती किन्तु लोभ ऐसी स्थितियां पैदा कर देता है।

आर्थिक कारणों से संघर्ष होता है, स्वार्थ से संघर्ष होता है और वह संघर्ष सामाजिक विषमताओं को जन्म देता है। मनुष्य की अभिवृत्तियां भी अलग-अलग प्रकार की होती हैं। वे भी सामाजिक समस्याओं को बढ़ाती हैं। मनुष्य का दृष्टिकोण अलग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार का होता है, उसके कारण अभिवृत्तियां बनती रहती हैं और सामाजिक विषमताएं भी होती रहती हैं।

खाई बनी रही

हम पांच हजार वर्ष पहले का इतिहास देखें, पता चलेगा--जो वर्ग का मुखिया बन गया, आगे आ गया, वह आभिजात्य बन गया। उसके अहंकार ने असमान जातीय को हमेशा नीचे रखने का प्रयत्न किया इसीलिए एक खाई बराबर बनी रही। एक बड़ा और एक छोटा बनता रहा। चाहे वह जाति के नाम पर आर्थिक विषमता के आधार पर अथवा साप्रंदायिकता के आधार पर बना। सामाजिक स्थिति में यहां यह नियम बन गया--अमुक जाति का एक आदमी भी इस गली से नहीं जा सकता क्योंकि आभिजात्य वर्ग के लोग इस गली से जाते हैं। अमुक वर्ग का आदमी इस सड़क से नहीं जा सकता, उस सड़क पर उसकी छाया भी नहीं पड़नी चाहिए। गोरे और काले एक कार में, एक बस में, एक साथ नहीं बैठ सकते। ट्रेन के एक डिब्बे में एक साथ नहीं बैठ सकते। एक कुत्ता साथ बैठ सकता है किन्तु एक आदमी साथ नहीं बैठ सकता। मनुष्य का इससे बड़ा अपमान क्या हो सकता है? इस सामाजिक विषमता के आधार पर घृणा का भाव बढ़ता चला गया। एक आदमी के मन में दूसरे आदमी के प्रति इतनी घृणा हो गई कि यदि एक काला आदमी गोरों की बस्ती में चला जाए तो शायद जीवित वापस न आए। इससे बड़ा अन्याय क्या हो सकता है? आज हम सामाजिक समता की बात करते हैं, न्याय की बात करते हैं, किन्तु अधिक से अधिक सामाजिक समता की बात करने वालों में भी यह काले और गोरे का भेद मिटा नहीं है। विकसित राष्ट्रों में, जो बहुत प्रबुद्ध और वैज्ञानिक कहलाते हैं, जिन्होंने खोजें की हैं और जो पूरी मानव-जाति के साथ न्याय करने का दावा कर रहे हैं, उन लोगों में भी यह काले और गोरे का भेद प्रखर बना हुआ है। वहां काले लोगों को मारने में भी शायद संकोच नहीं होता। उन्हें एक प्रकार से इतनी हीनता की दृष्टि से देखते हैं कि वे काले आदमी को आदमी मानने के लिए भी तैयार नहीं हैं।

हिन्दुस्तान में जातिवाद का प्रश्न बहुत प्रखर रहा। काले-गोरे का तो प्रश्न ही नहीं; क्योंकि हिन्दुस्तानी लोग कालों की श्रेणी (ब्लेक बेल्ट) में ही आते हैं। वे गोरे माने नहीं जाते इसलिए यह रंगभेद का प्रश्न भारत में नहीं चला, किन्तु जातिवाद बहुत प्रखरता से चला। इससे समाज में विषमता बढ़ती चली गई और उसके साथ-साथ यह भेद वाली बात भी जुड़ गई।

वर्गभेद, जातिवाद, रंगवाद--ये सब ऐसी स्थितियां हैं, जो सामाजिक विषमता पैदा कर रही हैं। प्रश्न है--यह कैसे मिटे? इसके लिए कानून का सहारा लिया गया। हिन्दुस्तान में भी लिया गया, बाहर भी लिया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज भी जीवित हैं संस्कार

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने रंगभेद को मिटाने का बहुत प्रयास किया। हिन्दुस्तान में भी जातिवाद को मिटाने का बहुत प्रयत्न किया गया। महात्मा गांधी ने अपनी सारी शक्ति से यह प्रयत्न किया कि जातिभेद मिट जाए, छुआछूत मिट जाए। पूज्य गुरुदेव ने अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से जातिगत विषमता को दूर करने का काफी प्रयत्न किया। इन सारे प्रयत्नों के बावजूद भी करोड़ों-करोड़ों ऐसे लोग हैं, जिनमें जातिवाद का प्रबल संस्कार है, वर्णवाद का प्रबल संस्कार है और रंगभेद का संस्कार भी कम नहीं है। शोषित और शोषक वर्ग आज भी जीवित है। एक मालिक अपने कर्मचारी को, अपने नौकर को कभी भी समानता का स्थान देने को तैयार नहीं है। यह शोषक की श्रेणी आज भी बराबर चल रही है। सब कुछ जीवित है। इस स्थिति में संघर्ष होना स्वाभाविक है।

विषमता का परिणाम

संघर्ष विषमता का अनिवार्य परिणाम है। जहां विषमता है, वहां संघर्ष न हो, यह संभव नहीं है। जहां संघर्ष है वहां सामाजिक शांति नहीं हो सकती। इस सारे चक्र पर हम विचार करें और सामाजिक समता पर ध्यान दें तो हमारे सामने एक बड़ा उपाय आता है और वह उपाय है—ध्यान। ध्यान की चेतना का विकास किया जाए तो सामाजिक समता को बहुत बल मिल सकता है।

हम मूल प्रश्न पर आएं—आखिर सामाजिक विषमता को पैदा कौन करता है? उसे पैदा करने वाला तत्त्व मनोविज्ञान की भाषा में संवेग है और कर्मशास्त्र की भाषा में कषाय है। कषाय विषमता को पैदा कर रहा है, संघर्ष को जन्म दे रहा है। कषाय विषमता का मूल कारण है। कषाय पर नियंत्रण किये बिना संभव नहीं है कि सामाजिक विषमता समाप्त हो जाए। मुख्यतः अहंकार और लोभ—ये दो कषाय सामाजिक विषमता के लिए बहुत जिम्मेवार हैं।

शराब पीकर आदमी नशे में उन्मत्त होता है, किन्तु अहंकार के नशे में उससे कम उन्मत्त नहीं होता। शराब से भी ज्यादा भयंकर नशा है अहंकार का। उसके कारण एक मद पैदा होता है और वह विषमता को पैदा करता है। दूसरा कारण है—लोभ। यह भी सामाजिक विषमता को जन्म देता है।

पहला सोपान

अहंकार और लोभ—इन दो संवेगों पर नियंत्रण करना सामाजिक समता का पहला सोपान है। बड़ा कठिन है इन पर नियंत्रण करना, क्योंकि आदमी संवेगों के आधार पर चलता है। जैसा-जैसा वातावरण अथवा परिस्थिति आती है, संवेग उभरते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाते हैं, उन्हें उत्तेजना, उद्दीपन मिल जाता है और व्यक्ति वैसा ही ढलता चला जाता है, वैसा ही आचरण करता चला जाता है। इन संवेगों के कारण ही झगड़े होते हैं। परिवार में झगड़े, भाई-भाई में झगड़े, पति-पत्नी में झगड़े—सबका कारण है संवेग।

जर्मनी की घटना है। पति और पत्नी—दोनों आपस में बहुत लड़ते थे। एक बार लड़ाई बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ गई कि सामाजिक अवरोध पैदा हो गया। पुलिस केस बन गया। पति और पत्नी दोनों न्यायालय में उपस्थित हुए। न्यायाधीश ने खूब गहराई से सोचा—इन्हें क्या दण्ड दिया जाए? न्यायाधीश ने गंभीर चिंतन के बाद निर्णय दिया—इन दोनों को चिड़ियाघर के पिंजरे में बंद कर दिया जाए। इन्हें यह देखने का मौका दिया जाए कि चिड़ियाघर के पशु-दम्पत्ति कितने स्नेह के साथ रहते हैं। इन्हें यह सोचने का मौका मिलेगा—पशु भी कितने प्रेम से रहते हैं और हम मनुष्य होकर भी किस प्रकार लड़ते हैं? सात दिनों में इनको बोध-पाठ मिलेगा, शिक्षा मिलेगी और ये सुधर जाएंगे।

सामाजिक जीवन के अंग

आदमी को वातावरण भी बहुत प्रभावित करता है, परिस्थितियां भी बहुत प्रभावित करती हैं। वे बिगड़ने में भी प्रभावित करती हैं और सुधरने में भी प्रभावित करती हैं।

सामाजिक जीवन मूल्यों से जुड़ा हुआ है, वातावरण और परिस्थिति से जुड़ा हुआ है। यदि परिस्थितियां, मूल्य और वातावरण न हों तो सामाजिक जीवन भी नहीं हो सकता। सामाजिक जीवन के ये अनिवार्य अंग हैं। इन सबका अच्छा निर्माण करना है। अच्छी व्यवस्था उस मस्तिष्क से निकलेगी, जिसका मस्तिष्क संतुलित है। असंतुलित मस्तिष्क से कभी अच्छी व्यवस्था नहीं निकल सकती। मस्तिष्कीय संतुलन के लिए संवेगों पर नियंत्रण होना जरूरी है। जो व्यक्ति क्रोध में उबला हुआ बैठा है, अहंकार से भरा हुआ है, वह अच्छी व्यवस्था दे, यह कभी सम्भव नहीं है। लोभी आदमी अच्छी व्यवस्था दे, यह कभी संभव नहीं है। वह तो सबसे पहले सोचेगा कि इस व्यवस्था में मेरा कितना स्वार्थ सधे? उसका ध्यान रहेगा अपने स्वार्थ पर। जब ध्यान स्वयं रखेगा तो अच्छी व्यवस्था कैसे दे पाएगा?

वही तटस्थ है

एक शब्द बहुत प्रचलित है—तटस्थता, मध्यस्थता। तटस्थ व्यक्ति अच्छी व्यवस्था दे सकता है। पक्षपात-ग्रस्त व्यक्ति कभी अच्छी व्यवस्था नहीं दे सकता। पक्षपात रहित व्यक्ति ही अच्छी व्यवस्था दे सकता है। तटस्थ वही हो सकता है, जिसका अपने संवेगों पर नियंत्रण है। वह अपने-संवेगों के आधार पर नहीं चलता किन्तु संवेगों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को अपने विवेक के आधार पर चलाता है। जिसका विवेक जाग जाता है, उसके संवेग सो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति तटस्थ होता है। जिसका संवेग जागता है, उसका विवेक सो जाता है। ऐसा व्यक्ति पक्षपाती होता है और पक्षपाती कभी अच्छी व्यवस्था नहीं दे सकता।

तटस्थ होने के लिए ध्यान आवश्यक है। ध्यान न करने वाला व्यक्ति तटस्थ नहीं हो सकता। कारण बहुत स्पष्ट है कि अप्रभावित रहना उसी व्यक्ति के लिए संभव है, जो ध्यान में लीन है। दो प्रकार की मनोवृत्तियां हैं–एक प्रभावित होने की और दूसरी अप्रभावित रहने की। किसी घटना को देखें और प्रभावित न हों, यह कैसे संभव है? लोग टी.वी. देखते हैं, नाटक देखते हैं, सिनेमा देखते हैं। जहां करुण दृश्य आता है, हजारों लोग रो पड़ते है। उनका घटना से कोई संबंध नहीं है फिर भी रोते हैं। इसलिए कि वे प्रभावित हो जाते हैं, उनकी संवेदना जाग जाती है।

एक वरिष्ठ साहित्यकार नाटक देख रहा था। नाटक में एक प्रसंग आया–एक व्यक्ति खलनायक को जूता मार रहा है। जैसे ही प्रसंग आया, देखने वाला साहित्यकार खड़ा हुआ। जो मारने वाला था, उसको जूता जड़ दिया। वह इतना प्रभावित हो गया कि उस घटना के साथ बह गया। उसे यह पता नहीं चला कि यह मात्र नाटक है।

निदर्शन है हवा

आदमी बहुत प्रभावित होता है। घटना से प्रभावित होता है, वातावरण से प्रभावित होता है। जैसा वातावरण मिला, वैसा बन गया। बर्फ पड़ी, हिमपात हुआ तो हवा बहुत ठण्डी बन गई, शीत लहर बन गई। सूरज की बहुत तेज गर्मी मिली, वह लू बन गई। जनता को तपाने लग गई। वह ठण्डक भी करने लग जाती है, तपाने भी लग जाती है। आदमी का दिमाग भी ऐसा ही होता है। कोई सुखद घटना हुई, आदमी बहुत राजी हो जाता है। कोई दुःखद घटना हुई, आदमी बहुत उत्तेजित हो जाता है। दिमाग का एक ऐसा प्रकोष्ठ है, जो बाहरी वातावरण से प्रभावित होता है। यदि हम मस्तिष्क के उस प्रकोष्ठ को नियंत्रित कर सकें, शिक्षित कर सकें कि वह अप्रभावित रहे, प्रभावित न हो। ऐसा होने पर वह घटना को जानेगा, देखेगा। परिस्थिति में जीएगा, श्वास लेगा पर उससे अप्रभावित रहेगा। यह अप्रभावित रहने की स्थिति केवल ध्यान के द्वारा ही संभव है।

अप्रभावित होने की मुद्रा

ध्यान का मतलब ही है स्थिरता। व्यक्ति ध्यान की मुद्रा में बैठता है तब निर्देश दिया जाता है–आंखें बंद, शरीर स्थिर, कायोत्सर्ग की मुद्रा। शरीर की स्थिरता, शरीर की शिथिलता, आंख बंद और इन्द्रियां शांत–यह है अप्रभावित होने की मुद्रा। प्रभावित होने की मुद्रा है–चंचलता। आदमी जितना ज्यादा चंचल होगा उतना ज्यादा प्रभावित होगा। शरीर की चंचलता, इंन्द्रियों की चंचलता और मांसपेशियों का तनाव–ये सब प्रभावित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने के हेतु हैं। मांसपेशियों की शिथिलता, शरीर की स्थिरता और कायोत्सर्ग की मुद्रा में बाहर के प्रभाव कम हो जाते हैं। सक्रियता, चंचलता, तनाव—ये बाहरी प्रभाव को आमंत्रित करते हैं। शरीर की निष्क्रियता, शिथिलता, मांसपेशियों की शिथिलता, इन्द्रियों की प्रतिसंलीनता और प्रत्याहार—ये बाहर के प्रभाव को कम करते हैं, व्यक्ति को अप्रभावित बनाते हैं। जैसे-जैसे आदमी ध्यान से प्रभावित होता है वैसे-वैसे तटस्थता बढ़ती जाती है। तटस्थ व्यक्ति ही सामाजिक अव्यवस्था को विराम दे सकता है, सामाजिक विषमता को कम कर सकता है। इस दृष्टि से सामाजिक समता और ध्यान में गहरा संबंध है।

ध्यान का भार क्यों?

प्रश्न हो सकता है—यह कार्य तो शिक्षा के द्वारा भी हो सकता है। शिक्षा में यह बताया जाता है कि सामाजिक विषमता के क्या सिद्धांत हैं? सामाजिक शिक्षा के कितने अच्छे परिणाम हैं? जब शिक्षा के द्वारा यह संभव है तब ध्यान को बीच में क्यों जोड़ा जाए? विद्यालय में शिक्षा का एक पाठ पढ़ा और बात समझ में आ गई। इससे सामाजिक विषमता टूटने लगेगी, समता आने लगेगी। फिर ध्यान का भार क्यों बढ़ाया जाए? विद्यार्थी के पास पहले से ही पुस्तकों का बहुत भार रहता है। एक छोटा विद्यार्थी अपना बस्ता लेकर चलता है तो ऐसा लगता है कि जैसे कोई भारवाहक चल रहा है। इस स्थिति में ध्यान का भार क्यों बढाया जाए? यदि शिक्षा से ही वास्तविक समाधान होता तो ध्यान को बीच में बिठाने की जरूरत नहीं होती, किन्तु यह बात बहुत प्रमाणित हो गई है कि कोरी वाचिक शिक्षा इसमें सफल नहीं बनती। जब तक संवेदना को न जगाया जाए, तब तक संभव नहीं है।

अभाव संवेदनशीलता का

ध्यान का एक बहुत बड़ा परिणाम है—संवेदना को जगा देना। चाहे उसे करुणा कहें, अनुकम्पा या दया कहें, अहिंसा अथवा मैत्री का भाव कहें। जहां वह जाग जाती है, वहां विषमता टिक नहीं पाती। यदि पूरा समाज विषमता को छोड़कर समता से रहे तो सामाजिक समता विकसित हो सकती है। यदि उच्च वर्ग में, आभिजात्य वर्ग में संवेदना होती तो एक हरिजन को मंदिर में जाने से कभी नहीं रोका जाता। जब मनुष्य में क्रूरता पनपती है तब ये सारी स्थितियां घटित होती हैं। जिस व्यक्ति में संवेदना जाग गई, समता की अनुभूति जाग गई, उसका चिंतन भी दूसरे प्रकार का बन जाता है।

विकलांगों की एक संस्था में सैकड़ों विकलांग रहते थे। संस्था की व्यवस्थापिका एक दिन विकलांगों को शहर के कुछ खास-खास स्थल दिखाने ले गई। उसने स्थल दिखाए, उसके बाद जहां सर्कस चल रहा था, वहां ले गई सब बैठ गए। सबने सर्कस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखा। सर्कस की समाप्ति के बाद महिला ने पूछा–'कहो, कैसा लगा।' एक अन्धा लड़का बोला–'मुझे तो बहुत अच्छा लगा पर मेरा जो बहरा साथी बैठा है, यह बेचारा ऐसे ही रह गया। मुझे इस बात का दुःख है कि यह कुछ लाभ नहीं ले सका।'

'अरे ! तुम कहना क्या चाहते हो?'

'बहिन जी! यह कुछ भी नहीं सुन सका, न सिंह की गर्जना को सुन सका, न हाथी की चिंघाड़ों को सुन सका, न मधुर गीतों को सुन सका। इसके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा, इसका मुझे बड़ा दुःख है।'

यह है सहानुभूति का भाव। स्वयं उसे पता नहीं है कि क्या हो रहा है। उसने यह नहीं सोचा कि मैं नहीं देख सका पर उनके मन में यह पीड़ा उभरी–मेरा साथी बहरा है, वह कुछ भी नहीं सुन सका। ऐसा सहानुभूति का भाव, एक संवेदना का भाव जाग जाए तो फिर व्यक्ति किसी के प्रति अन्याय नहीं कर सकता, किसी का शोषण भी नहीं कर सकता।

कषाय और संवेदनशीलता

ध्यान का एक परिणाम है कषाय की शांति। जैसे-जैसे कषाय कम होगा, संवेदनशीलता जागृत होती चली जाएगी। यदि ध्यान करने वाले व्यक्ति में संवेदनशीलता नहीं जागती है तो मान लेना चाहिए कि उसका ध्यान सधा नहीं है। ध्यान का अनिवार्य परिणाम है–संवेदनशीलता का, करुणा का जाग जाना। हमारे सामने सामाजिक समता का बहुत बड़ा प्रश्न है। उसके लिए व्यवस्थागत बहुत उपाय किये गये किन्तु वे पूरे सफल नहीं हो रहे हैं। इसका कारण है–जब तक समाज में संवेदनशीलता जागृत नहीं होगी तब तक व्यवस्थागत परिवर्तन सफल नहीं होंगे। इस प्रश्न को सुलझाने के लिए हमें ध्यान का आश्रय भी लेना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा समाधान है। परिवर्तन के इतने प्रयोग किये जाते हैं तो यह प्रयोग क्यों न किया जाए और उसे भी व्यापक स्तर पर क्यों न किया जाए?

अभियान साक्षरता का

सरकार सोचती है–हमारे देश में कोई निरक्षर न रहे, सब साक्षर बनें। साक्षरता का अभियान चलाया जाता है। क्या अक्षर पढ़ने मात्र से, हस्ताक्षर कर देने मात्र से कोई बहुत बड़ी सफलता मिल जाएगी? यह एक चिंतन है, इस चिंतन को बुरा नहीं कहा जा सकता। अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम चलता है तो प्रौढ़ लोग भी पढ़ने लग जाएंगे। बात तो हास्यास्पद-सी लगती है। छोटों पर इतना ध्यान नहीं है और प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के प्रत्यन किए जा रहे हैं। छोटे अनक्षर बच्चों की फौज और तैयार हो जाएगी। होना तो यह चाहिए था–अब जन्म लेने वाला कोई भी निरक्षर न रहे तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्या का समाधान होता। आज का कोई बच्चा जन्मेगा, वह अनक्षर नहीं रहेगा, सब साक्षर बनेंगे तो संपूर्ण नई पीढ़ी साक्षर बन जाती। इस दिशा में ध्यान बहुत कम दिया जा रहा है।

ध्यान का अभियान चले

प्रश्न यह है–जैसे साक्षरता का अभियान, प्रौढ़ शिक्षा का अभियान चल रहा है, क्या वैसे ही ध्यान का अभियान नहीं चलाया जा सकता? हर बच्चे को ध्यान सीखना है। यदि यह अभियान भी चले तो मुझे लगता है कि सामाजिक समस्याओं को काफी समाधान मिलेगा। साक्षर बनने वाला बुराइयों से बचेगा या नहीं बचेगा किन्तु ध्यान करने वाला अवश्य ही कुछ मात्रा में बचेगा, उसमें अवश्य ही परिवर्तन आएगा। समस्या–यह बात अभी तक उन लोगों के समझ में नहीं आ रही है, जो शिक्षाशास्त्री हैं, शिक्षा संस्थानों का संचालन कर रहे हैं, जो सरकार के शिक्षा-विभाग में हैं या शिक्षा की नीतियों का निर्धारण करते हैं। यदि यह बात समझ में आ जाए कि ध्यान के द्वारा मस्तिष्क को बहुत संस्कारी किया जा सकता है, प्रशिक्षित किया जा सकता है और ध्यान के द्वारा प्रशिक्षित मस्तिष्क समाज के लिए बहुत कल्याणकारी हो सकता है तो शायद हमारे चिंतन में कोई नया मोड़ आ सकता है। मैं कल्पना और मंगल भावना करता हूं कि यह चिंतन आए, एक नया मोड़ आए और सामाजिक समता के लिए हम ध्यान का मूल्य आंक सकें। अगर ऐसा क्षण आया तो वह समाज के लिए सचमुच बड़ा कल्याणकारी होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानवीय सम्बन्ध और ध्यान

मूल गतियां चार हैं–नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। किसी व्यक्ति से पूछा जाए–तुम्हारी गति कौन-सी है तो उत्तर मिलेगा–मनुष्य गति। मनुष्य केवल मनुष्य है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य-मनुष्य में परस्पर सम्बन्ध केवल यही है कि वह भी मनुष्य है और यह भी मनुष्य है। यह जो मूल संबंध था, उसको गौण कर दिया गया। ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी आदि-आदि जो जातियां समय-समय पर निर्धारित की गईं, वे प्रधान बन गईं। हिन्दु, मुसलमान–ये शब्द प्रधान बन गए और मनुष्य शब्द गौण बन गया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो एक जाति रही है–मनुष्य। जैन आगम के महान व्याख्याकार ने कहा–'**एक्का मणुस्स जाई**'–मनुष्य जाति एक है। इस सूक्त में भगवान महावीर के सिद्धांत की प्रतिध्वनि है।

जातियां कोई दो नहीं होतीं। हमारी दुनिया में एक ही जाति है मनुष्य की। मनुष्य मनुष्य है। दूसरी है तिर्यंच जाति। वह पशु-पक्षी की जाति है। नरक की जाति और देव की जाति–ये दो जातियां और हैं किन्तु वे हमारी दुनिया में नहीं हैं। हमारी दुनिया में केवल दो जातियां हैं–मनुष्य और तिर्यंच। हमने इन मूलभूत जातियों को भुला दिया और बाद में अस्तित्व में आई उपजातियों, प्रजातियों को इतना प्रधान बना दिया कि मूल जातियां गौण हो गईं। कहा जाता है–'गुरु तो गुड़ रह गया और चेला शक्कर बन गया।' मूल जाति तो गुड़ रह गई और बाद में आने वाली जातियां शक्कर बन गईं।

परिणाम यह आया–मनुष्य मूल जाति है, इस अवधारणा को भुला दिया गया और हम उपजातियों में उलझ गये। उसमें कोरी अम्लता ही अम्लता शेष रही, मिठास समाप्त हो गई। उपजातियों में उलझ जाने के कारण मानवीय संबंधों में वह मधुरता नहीं रही, जो दो मनुष्यों के संबंधों में होनी चाहिए। मानवीय संबंध तभी सुधर सकते हैं, जब हम मूल बात पर ध्यान दें–मनुष्य मनुष्य है, यह बात समझ में आए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म और ध्यान

समस्या यह है–इस बात को समझने के लिए जैसा जीवन होना चाहिए, वैसा जीवन नहीं है। मानव का जीवन खण्डित-खण्डित-सा हो गया है। अखण्ड जीवन के लिए कर्म और ध्यान–दोनों का योग चाहिए। ध्यान का अर्थ है चित्त की शुद्धि। जहां कोरी चित्तशुद्धि है और प्रवृत्ति नहीं है, वहां भी जीवन में पूर्णता नहीं आती। जहां कोरी क्रिया है और चित्तशुद्धि नहीं है। वहां जीवन ज्यादा विभक्त हो जाता है, विखण्डित हो जाता है। दोनों का योग होना चाहिए–चित्तशुद्धि भी हो और क्रिया भी हो तब सही स्थिति बनती है। वर्तमान की जीवन प्रणाली ने प्रवृत्ति को बहुत प्रोत्साहन दिया–क्रिया करो, श्रम करो, उद्यम करो, उद्योग लगाओ, कारोबार को बढ़ाओ। इस प्रवृत्तिवाद को बड़ा प्रोत्साहन दिया और चित्तशुद्धि की बात को भुला दिया। परिणाम यह आया–कर्म स्वयं प्रदूषण बन गया। जो प्रदूषण आज बढ़ा है, वह प्रदूषण कर्म ने पैदा किया है। प्रदूषण क्यों बना? क्यों बढ़ा? इसलिए कि चित्तशुद्धि की बात प्रवृत्ति से निकल गई। ध्यान के बिना चित्तशुद्धि की संभावना कम हो जाती है और चित्तशुद्धि के बिना क्रिया सम्यक् नहीं होती।

क्रिया, प्रतिक्रिया और विक्रिया

क्रिया, प्रतिक्रिया और विक्रिया–ये तीन शब्द प्रवृत्ति से जुड़े हैं। एक आदमी क्रिया करता है। यदि उसकी पृष्ठभूमि में चित्तशुद्धि नहीं है तो क्रिया की प्रतिक्रिया होगी। जहां प्रतिक्रिया होगी, वहां विक्रिया होगी, विकार होगा।

एक व्यक्ति ने प्रभु से प्रार्थना की–मुझे चूहा बना दो। बड़ी विचित्र बात है। क्या कोई आदमी चूहा बनना चाहेगा? चूहा बना दो, वह जो क्रिया है, उसके पीछे एक प्रतिक्रिया है। उस प्रतिक्रिया ने विक्रिया पैदा की, व्यक्ति के मन में विकार पैदा कर दिया और उस व्यक्ति ने चूहा बनने की प्रार्थना कर दी। विक्रिया है चूहा बनने की प्रार्थना, पर यह है प्रतिक्रिया से उपजी विक्रिया। पत्नी के स्वभाव ने उसके मन में यह प्रतिक्रिया उत्पन्न की। पति और पत्नी –दोनों में खूब लड़ाइयां होती। पत्नी पति की कोई बात नहीं मानती। पति जो भी कहता, उसका उलट कर जवाब देती। पति तंग आ गया। उसका मन प्रतिक्रिया से भर गया। इस प्रतिक्रिया के कारण यह स्वर निकला, यह विक्रिया आई–मुझे चूहा बना दो। एक व्यक्ति ने पूछा–'भई ! चूहा क्यों बनना चाहते हो?' उसने कहा–'मेरी पत्नी और किसी से नहीं डरती, केवल चूहे से डरती है।'

संस्क्रिया करें

यह चूहा बनने की प्रार्थना विक्रिया है। उसके पीछे एक प्रतिक्रिया है। प्रतिक्रिया क्यों पैदा हुई? इसलिए कि जो क्रिया है, वह चित्तशुद्धि से शून्य है। जहां-जहां चित्तशुद्धि से शून्य क्रिया होगी वहां-वहां प्रतिक्रिया होगी और जहां प्रतिक्रिया होगी वहां विक्रिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चित पैदा होगी। यदि विक्रिया से बचना है, प्रतिक्रिया से बचना है और केवल क्रिया करना है तो उसे संस्कृत करना होगा। वह क्रिया जो संस्क्रिया है, प्रतिक्रिया और विक्रिया पैदा नहीं करेगी। संस्क्रिया का तात्पर्य है संस्कारित क्रिया। चित्तशुद्धि की ओर ध्यान दिये बिना इस स्थिति का निर्माण संभव नहीं है।

बड़ा आश्चर्य होता है, लोग हर काम की आलोचना करते हैं, केवल अपने काम को छोड़कर। अपने काम की कोई आलोचना नहीं करता। वह दूसरे के हर काम की आलोचना कर देता है। चाहे कोई विद्वान है, राजनेता अथवा न्यायाधीश है, किसी को भी बख्शा नहीं जाता। सबकी आलोचना होती है। धर्मगुरु की भी आलोचना हो जाती है। लोग कह देते हैं–यह ठीक नहीं किया, अगर ऐसा करते तो ज्यादा अच्छा हो जाता। यह आलोचना क्यों होती है? इसलिए कि क्रिया के साथ चित्त की शुद्धि नहीं रही। आलोचना कोई परिणाम भी नहीं लाती इसलिए कि उसके साथ भी चित्त की शुद्धि नहीं है। क्रिया करने वाले की चित्तशुद्धि होती तो शायद आलोचना का इतना मौका नहीं मिलता। उसकी चित्तशुद्धि होने पर भी आलोचना हो सकती है। यदि आलोचना करने वाले की भी चित्तशुद्धि नहीं है तो वह क्रिया और संस्क्रिया का भेद नहीं कर पाएगा। दोनों ओर चित्त की शुद्धि नहीं है, न क्रिया के साथ चित्तशुद्धि का योग है और न आलोचना के साथ चित्तशुद्धि का योग है इसलिए क्रिया फलवती नहीं बनती और आलोचना भी सार्थक नहीं बनती।

प्रतिक्रिया और विक्रिया से जुड़ा विरोध

आरक्षण का भारी विरोध हुआ। विरोध हो सकता है पर यदि चित्तशुद्धि के साथ विरोध होता तो तोड़-फोड़ नहीं होती, बसें नहीं जलाई जातीं, जनता को परेशान नहीं किया जाता, चक्के जाम नहीं किये जाते, जनता से भरी बसों और मोटरों को सड़कों पर रोका नहीं जाता, जन-धन को नुकसान नहीं पहुंचाया जाता। केवल विरोध है, साथ में चित्तशुद्धि नहीं है इसलिए वह विरोध प्रतिक्रिया और विक्रिया से मुक्त नहीं हो सकता। आज जितना भी यह भ्रष्टाचार चल रहा है, जितने भी राजनीतिक-सामाजिक झंझट चल रहे हैं, क्यों चल रहे हैं? विचित्र बात यह है कि कोई आदमी भ्रष्टाचार को पसन्द नहीं करता, केवल अपने को छोड़कर। अपने द्वारा जो भ्रष्टाचार होता है, वह उसको पसन्द है। दूसरा कोई भी करता है, उसे पसन्द नहीं है। बच्चों को दूध ज्यादा चाहिए। बाजार में खरीदने जाए और उसे पानी मिला पतला दूध मिले तो क्या उसे अच्छा लगेगा? आटा, मसाला खरीदने के लिए बाजार में जाए और सारी चीजें मिलावटी मिले तो क्या अच्छा लगेगा? परिवार का सदस्य बीमार है। हॉस्पीटल में जाए तो कुछ उपहार दिए बिना, पूजा-पाठ किए बिना, हॉस्पीटल में भर्ती होना मुश्किल हो जाता है। यह स्थिति उसे कैसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगती है? टिकट लेने जाए और बिना पूजा-पाठ किये टिकट भी न मिले तो क्या अच्छा लगता है? क्या इसका यह अर्थ नहीं है—दूसरा कोई भी भ्रष्टाचार करता है, वह अच्छा नहीं लगता, किन्तु स्वयं करता है, वह अच्छा लगता है।

किसी आदमी से भ्रष्टाचार के बारे में पूछा जाए तो वह कहेगा—बहुत भ्रष्टाचार चल रहा है। आखिर क्यों चल रहा है? सबको शिकायत है तो क्यों चलना चाहिए? इसलिए चल रहा है कि शिकायत केवल दूसरों के कार्य के प्रति है, अपने कार्य के प्रति नहीं है। यदि वह शिकायत केवल अपने-अपने कार्य के प्रति बन जाए, हर व्यक्ति के मन में यह शिकायत बन जाए कि मैं ठीक नहीं कर रहा हूं तो एक दिन में भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा। यदि एक गांव में एक लाख आदमी हैं, सबके मन में शिकायत है पर वह है निन्यानवें हजार नौ सौ निन्यानवें के प्रति। ऐसी स्थिति में तालाब दूध के स्थान पर पानी से ही भरेगा।

बहुत प्रसिद्ध कहानी है। राजा ने आदेश दिया—आज तालाब को दूध से भरना है। उसमें पूरे नगर के लोग एक-एक लोटा दूध डालें, तालाब दूध से भर जाएगा। आदेश प्रसारित हो गया। एक आदमी के मन में आया, सारे नगर के लोग एक-एक लोटा दूध डालेंगे और मैं एक लोटा पानी डाल दूंगा तो क्या फर्क पड़ेगा? ऐसे ही दूध में पानी मिलाया जाता है, फिर पूरे तालाब में एक लोटे का क्या फर्क पड़ेगा? सबके मन में यही विकल्प उठा। सुबह राजा अपने मंत्री के साथ तालाब पर गया। वह यह देख अवाक रह गया—पूरा तालाब पानी से भरा है, दूध का नामोनिशान भी नहीं है।

जो एक के मन में आएगा, वह सबके मन में क्यों नहीं आएगा? तर्क तो सबके लिए समान है। वैसे ही शायद सबके मन में आ रहा है—वह भी भ्रष्टाचार कर रहा है, वह भी कर रहा है, तो मैं क्यों न करूं? यह बहती गंगा घर आ गई है, मैं भी उसमें हाथ क्यों न धोलूं? यदि एक व्यक्ति के मन में यह भावना आती, भई ! दूसरा चाहे कुछ भी डाले, मैं तो एक लोटा दूध डालूंगा तो दूसरा और तीसरा भी शायद यही सोचता। सबके मन में यह चिन्तन उभरता तो प्रातःकाल पूरा तालाब दूध से लबालब भरा मिलता। सब एक-एक लोटा दूध डालेंगे तो एक लोटा पानी का क्या फर्क पड़ेगा। यह चिन्तन जो हो रहा है, वह क्यों हो रहा है? इसलिए कि चित्त की शुद्धि नहीं है। चित्तशुद्धि के बिना यही चिन्तन होगा, यही क्रिया होगी और यही परिणाम आएगा।

आज हमारे सामने समस्याओं का ढेर है। सामाजिक और राजनीतिक समस्याएं हैं, आर्थिक और धार्मिक समस्याएं हैं, वैयक्तिक और सामूहिक समस्याएं हैं। सब प्रकार की समस्याओं के लिए अलग-अलग उपाय भी खोजे जा रहे हैं और समाधान भी किये जा रहे हैं। किन्तु सब समस्याओं को पैदा करने वाली जो मूलभूत समस्या है, वह है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तशुद्धि की समस्या। उसकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जा रहा है। जब समस्या समाहित नहीं होगी तब आदमी मुड़कर देखेगा और तब वह यही कहेगा–इस दृष्टि से समस्या को देखना ही याद नहीं रहा।

भूल गया है आदमी

प्राचीन घटना है। एक आदमी की स्मरण-शक्ति कमजोर हो गई। वैद्य के पास गया, बोला–'वैद्यजी महाराज ! कोई दवा दो, जिससे स्मरण-शक्ति ठीक हो जाए।' वैद्य ने दवा दे दी। कुछ दिन बाद वैद्यजी मिले, पूछा–'बताओ ! अब तुम्हारी स्मरण-शक्ति कैसी है?' उस व्यक्ति ने कहा–'कोई ज्यादा फर्क तो नहीं पड़ा किन्तु थोड़ा-सा फर्क पड़ा है, अब मैं भूल जाता हूं तो मुझे इतना याद आ जाता है कि मैं भूल गया हूं। पर क्या भूल गया हूं, यह याद नहीं आता।'

ऐसा लगता है–आदमी कुछ भूल गया है पर क्या भूल गया है, यह याद नहीं आ रहा है। हम भी कुछ भूल गए हैं। सारी समस्याओं को सुलझाने में लगे हैं, पर मूल बात को भूल गए हैं आश्चर्य है कि उसे पूरा समाज भूल गया है। राजनीति के लोग भी भूल गए हैं। धर्म के लोग कहते हैं–'तुम धर्म-ध्यान करो, क्रियाकाण्ड करो, तुम्हारा परलोक सुधर जाएगा।' वे इस मूल बात को भूल गए कि यह जीवन सुधरे बिना परलोक कैसे सुधरेगा? आचरण की शुद्धि के बिना जीवन कैसे सुधरेगा? नैतिकता के बिना जीवन में पवित्रता कैसे आएगी? शायद इसीलिए भगवान महावीर ने ध्यान को बड़ा महत्त्व दिया था। एक जैन सूत्र है ऋषिभाषित। उसमें लिखा है कि ध्यान के बिना धर्म वैसा ही है, जैसे कटा हुआ धड़। शरीर के नीचे का भाग पूरा है पर सिर नहीं है तो क्या होगा? सारे शरीर का संचालन कौन करता है? मस्तिष्क नहीं रहा तो फिर कुछ भी नहीं बचा। ध्यान के बिना धर्म भी ऐसा हो गया है, जैसे शरीर से मस्तिष्क को काट दिया है। ध्यान का मतलब है–अपने भीतर चले जाएं, अपनी आत्मा के पास पहुंच जाएं। हमारी दो ही स्थितियां हैं या तो पदार्थ के पास रहें या चेतना के पास रहें। जैसे–जैसे आदमी अपनी चेतना की सन्निधि में रहता है, उसमें पवित्रता आती है, निर्मलता आती है और उसकी सारी बुराइयां मिटती चली जाती हैं।

प्रश्न मानवीय संबंधों की मधुरता का

प्रश्न है–मानवीय संबंध कैसे मधुर बने? ध्यान के बिना मानवीय सम्बन्धों में सुधार की बात सम्भव नहीं बनेगी। कारण स्पष्ट है–ध्यान के बिना चित्त की शुद्धि नहीं होती, चेतना की सन्निधि नहीं मिलती। हम एक सूत्र को पकड़ लें–जितना-जितना चेतना की सन्निधि में रहना है उतना-उतना चित्त की शुद्धि में रहना है। जितना-जितना पदार्थ के जंजाल में रहना है उतना-उतना भ्रांति या मलिनता में रहना है। धर्मस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में जाने का मूल्य इसीलिए है कि आदमी दिनभर पदार्थों के बीच में रहता है। वह सुबह और शाम किसी समय धर्मस्थान में जाये, धर्मगुरु की उपासना में जाये और वहां जाकर ध्यान करे, चित्त की शुद्धि बनाये, किन्तु आज उसका रूप बिगड़ गया। धर्मस्थान में जाने का यह मतलब नहीं है कि वह धर्मस्थान में जाकर चित्त की शुद्धि करे और बाहर आकर विक्रिया करे, मलिनता करे, मलिनता उसकी प्रवृत्तियों में संक्रांत हो जाए। आज मनुष्य ने धर्म को धर्मस्थान तक सीमित कर दिया। उसने धर्मस्थान में चेतना की सन्निधि नहीं पाई इसलिए धर्मस्थान के बाहर जो व्यवहार होना चाहिए, वह नहीं हुआ। अणुव्रत आन्दोलन ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया—तुम्हारा धर्म धर्म-स्थान तक सीमित न रहे, उसका मानसिक जीवन में, व्यावहारिक जीवन में उपयोग होना चाहिए। अन्यथा धर्म करने की सार्थकता क्या होगी?

व्यक्ति से पूछा गया—'क्या तुम्हें कभी दुःख के बाद सुख होता है?'

उसने कहा—'हां, मुझे बहुत बार दुःख के बाद सुख का अनुभव होता है।'

'कब होता है? किस-किस स्थिति में होता है?'

वह कंजूस आदमी था, उसने कहा—'अच्छा, मैं एक बात बताता हूं। मेरे यहां पाहुनें आ जाएं और मुझे कहा जाए कि तुम्हारे यहां भोजन करना है तो मुझे बड़ा दुःख होता है। यदि उनको कोई सन्मति आ जाए और वे कहें—नहीं, अभी भोजन नहीं करेंगे, आज तो दूसरे के घर पर जाएंगे, तो मुझे बड़ा सुख होता है। यह दुःख के बाद होने वाला सुख है। उस स्थिति में मैं सोचता हूं कि मैं निहाल हो गया।'

प्राप्ति का क्षेत्र : प्रयोग का क्षेत्र

पाहुना आए और भोजन कराने का प्रसंग आए तो दुःख की अनुभूति। उसे भोजन न कराना पड़े तो सुख की अनुभूति। व्यक्ति धर्मस्थान में जाता है और वहां से खाली हाथ लौट आता है। धर्मस्थान में जो पाता है, उसे वहीं छोड़ आता है। यह दुःख की बात है। वह उसे भूलकर अपने कार्यों में उसी प्रकार संलग्न हो जाता है, यह दुःख के बाद सुख की बात मानता है। वह जाता है सुख के लिए, चित्त की शुद्धि के लिए और वहां से आने के बाद ज्यादा अशुद्धि कर लेता है। होना यह चाहिए—जो चित्त की शुद्धि वहां हुई, उसका उपयोग करे। धर्म स्थान प्राप्ति का क्षेत्र है और समाज प्रयोग का क्षेत्र। यदि वहां आकर उसका उपयोग नहीं कियां तो एक मखौल जैसा बन जाएगा। वस्तुतः आज ऐसा मखौल बन रहा है। बहुत सारे लोग कहते हैं—धर्मस्थान में जाते हैं तो धार्मिक बन जाते हैं और जब बाहर आते हैं तो रूप दूसरा बन जाता है। यह क्यों होता है? इसलिए होता है कि चित्त की शुद्धि नहीं हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असत् से सत्प्रवृत्ति की ओर

तीन शब्दों को याद रखना जरूरी है—असत् प्रवृत्ति, सत् प्रवृत्ति और निवृत्ति। असत् प्रवृत्ति है अवांछनीय प्रवृत्ति। सत् प्रवृत्ति है अच्छी प्रवृत्ति और निवृत्ति है अप्रवृत्ति।

प्रवृत्ति न करें, यह संभव नहीं है। प्रवृत्ति किए बिना जीवन नहीं चलता। असत् प्रवृत्ति समस्याओं को जन्म देती है और उससे सारी समस्याएं उलझती हैं। धर्म का उद्देश्य है असत् प्रवृत्ति से सत् प्रवृत्ति की ओर प्रस्थान करना। इस संदर्भ में यह वैदिक सूत्र बहुत संगत है—

तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।

असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर जाएं। इसके लिए चित्त की शुद्धि जरूरी है और चित्त की शुद्धि के लिए ध्यान जरूरी है। इस समग्र पृष्ठभूमि में हम ध्यान का मूल्यांकन करें तो ऐसा लगेगा—जीवन में जितनी-जितनी अनिवार्यताएं हैं, आवश्यकताएं हैं, उनमें ध्यान सबसे पहली अनिवार्यता है।

वस्तुस्थिति यह है—धर्म और ध्यान को नम्बर सबसे बाद में मिलता है। किसी भी आदमी से पूछा जाए—धर्म-ध्यान करते हो? उत्तर मिलेगा—बहुत व्यस्त हूं। मुझे समय ही नहीं मिलता। रोटी खाने के लिए, दिन में पांच-सात बार नाश्ता करने के लिए समय है। स्नान करना, व्यापार करना, गप्पे हांकना, ताश-चौपड़ खेलना—सबके लिए समय है। केवल समय नहीं है धर्म और ध्यान करने के लिए। जो प्राथमिक अनिवार्यता है, उसको अंतिम सूची में नम्बर दे दिया अथवा बिल्कुल स्थान दिया ही नहीं। इस स्थिति से जब तक आदमी नहीं उबरेगा तब तक समाज का कल्याण नहीं हो सकता।

शुभ संकेत

प्रसन्नता की बात है कि अब युवा लोग ध्यान में रुचि लेने लगे हैं। कुछ वृद्ध लोग कहते हैं—कितना अच्छा होता, यदि आज से पचास वर्ष पहले ध्यान चलता। एक अस्सी वर्ष के भाई ने कहा—अब हमारी शक्ति नहीं रही। जब हमारी शक्ति थी, तब ध्यान चला नहीं था। अब ध्यान चला है तो उसे करने की हमारी शक्ति नहीं है। यह शिकायत आज के युवा नहीं कर सकते। वे यह नहीं कह सकते कि ध्यान नहीं था, किन्तु वे यह तो कह सकते हैं कि हमने ध्यान किया नहीं। यह एक शुभ संकेत है— ध्यान के प्रति रुचि जागी है, नई दृष्टि और नई प्रेरणा जागी है। हम इसका ठीक मूल्यांकन करें। यह मूल्यांकन हमारे लिए बहुत उपयोगी होगा, भावी समाज की कल्पना के लिए, नए समाज की संरचना के लिए एक ऐसा मील का पत्थर सिद्ध होगा, जो सदा आदमी को नई दिशा देगा, सही ढंग से जीवनयापन करने की पद्धति पुरस्कृत कर पाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवेग और ध्यान

प्रेक्षाध्यान के शिविर में ध्यान के प्रयोग के साथ-साथ शरीर विज्ञान का प्रशिक्षण भी चलता है। प्रश्न हो सकता है–शरीर-विज्ञान का प्रशिक्षण एक डॉक्टर के लिए तो आवश्यक हो सकता है पर ध्यान करने वाले व्यक्ति के लिए वह क्यों जरूरी है? उसे शरीर विज्ञान का प्रशिक्षण क्यों दिया जाता है?

वैज्ञानिक युग में हर बात की वैज्ञानिक दृष्टि से मीमांसा होती है। प्रत्येक विषय में ये प्रश्न पूछे जाते हैं–क्यों करें? कैसे करें? क्या परिणाम होगा? आदि-आदि जिज्ञासाएं सामने आती हैं। ध्यान क्या है? ध्यान क्यों करें? कैसे करें? कब करें? ये सब बातें ज्ञातव्य हैं।

शरीर को जाने बिना ध्यान की पूरी बात समझ में नहीं आती। हमारा शरीर इतना बड़ा कारखाना है, इतना बड़ा यंत्र है कि उसकी सारी यांत्रिक प्रक्रियाएं ठीक से समझ ली जाएं तो आदमी बहुत आगे बढ़ सकता है और वे समझ में न आएं तो अवरोध भी आ सकता है। एक उदाहरण लें क्रोध का। आदमी को क्रोध आता है। यह बात स्पष्ट है, पर क्रोध क्यों आता है? और आता है तो फिर रुक क्यों जाता है? वह असीम क्यों नहीं हो जाता? क्या इसका उपचार किया जा सकता है? आज के मनोवैज्ञानिकों ने, शरीरशास्त्रियों ने इन विषयों की बहुत छानबीन की है। क्रोध आने का जो केन्द्र है, वह है हमारा मस्तिष्क। सारा संचालन मस्तिष्क के द्वारा हो रहा है। अच्छी और बुरी–सारी भावधाराएं मस्तिष्क में पैदा हो रही हैं। क्रोध करना, यह भाव भी मस्तिष्क से आ रहा है और क्रोध न करना, यह भाव भी मस्तिष्क से आ रहा है। क्रोध का उद्दीपन भी होता है और क्रोध का नियमन भी होता है। हाइपोथेलेमस का एक भाग क्रोध को प्रकट करता है तो साथ-साथ दूसरा भाग क्रोध का नियमन करता है। वह कहता है–इतना मत करो, अभी मत करो। क्रोध की कोई घटना घटी। हाइपोथेलेमस के उस भाग को सूचना मिलेगी–नहीं, अभी क्रोध करने का समय ठीक नहीं है। जरा ठहरो, रुको। इस संकेत से आदमी रुक जायेगा। यदि आदमी क्रोध करना पुनः शुरू कर देगा तो फिर सूचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलेगी—इतना तेज मत करो। इतना करोगे तो नुकसान होगा। यह सूचना भी उस केन्द्र को मिलती है। मस्तिष्क के एक भाग से क्रोध उपजता है, दूसरा भाग उसका नियमन भी करता है।

मनोविज्ञान की भाषा

मनोविज्ञान की भाषा में या शरीरशास्त्र की भाषा में कहा जाता है—एक केन्द्र है क्रोध को प्रकट करने वाला और एक केन्द्र है क्रोध का नियमन करने वाला। एक केन्द्र का नाम है डोर्सो मिडियल न्यूक्लियस (Dorsomidial nucleus)। दूसरे का नाम है वेंट्रो मिडियल न्यूक्लियस (Ventromidial nucleus)। जब व्यक्ति क्रोध करता है तो इतना करता है कि करता चला जाता है। इस स्थिति में साधारण आदमी का हार्टफेल हो जाता है। उसे समझदार कहा जाता है, जो अपने गुस्से पर नियमन करना जानता है। प्रश्न है—वह समझदारी कहां से आ रही है? उसी मस्तिष्कीय केन्द्र से आ रही है। हाइपोथेलेमस का वह भाग उसमें इतना विवेक पैदा कर देता है कि इस समय तुम्हें इससे ज्यादा क्रोध नहीं करना है। अगर बीमारी की अवस्था है तो वह मस्तिष्क सूचना देगा—देखो, तुम आगे ही कमजोर हो, इस समय तुम्हें क्रोध करना ही नहीं है। यह सारा नियंत्रण और नियमन मस्तिष्क में से आ रहा है। क्रोध का उद्दीपन और क्रोध का नियमन दो अलग-अलग केन्द्र हैं। केवल क्रोध के ही नहीं, प्रत्येक विषय के केन्द्र बने हुए हैं।

कर्मशास्त्र की भाषा

हम कर्मशास्त्र की भाषा में देखें तो यह बात यथार्थ प्रतीत होती है। एक है औदयिक भाव और दूसरा है क्षायोपशमिक भाव। औदयिक भाव क्रोध करने का, अहंकार और लोभ करने का उत्प्रेरक है। क्षायोपशमिक भाव उनका नियंत्रक है। जैसे ही औदयिक भाव प्रस्फुटित होता है, क्षायोपशमिक भाव की प्रेरणा मिलती है—यह मत करो। औदयिक भाव पर बराबर नियंत्रण कर रहा है क्षायोपशमिक भाव। यदि कोरा औदयिक भाव होता तो आदमी जी नहीं पाता। क्षायोपशमिक भाव है, वह बराबर नियमन कर रहा है इसीलिए मनुष्य की विवेक चेतना कषाय को निरंकुश नहीं बनने देती।

एक आदमी खाने का बहुत शौकीन है, वह खाता चला जाता है। उन क्षणों में भीतर से आवाज आती है—देखो, इतना खाना अच्छा नहीं है। वह क्षयोपशम की शक्ति उसको सचेत कर देती है। यह जो भीतर की आवाज है, उसे कहते हैं—आत्मा की आवाज। यह आत्मा की आवाज क्षयोपशम की आवाज है। यह क्षयोपशम का भाव सतत जागरूक रहता है। जहां कहीं भी अतिक्रमण होता है, तत्काल सावधान कर देता है, सचेत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर देता है--देखो, यह करना अच्छा नहीं है।

हम जागरूक बन जाएं तो भीतर की इस आवाज का पता चलने लग जाएगा। आवाज कोई बोलने वाला नहीं है, वह सुनाई भी नहीं देगी किन्तु यह भाषा स्पष्ट आ जाती है--सामने जो होने वाला है, वह ठीक नहीं है। यह स्थिति तब संभव होती है जब जागरूकता बढ़े। विकास करना है जागरूकता का। हम हर घटना के प्रति जागरूक बन जाएं। क्रोध करें तो भी हमारी यह जागरूकता रहे--देखो, क्रोध आ गया, क्रोध हो गया। यह जागरूकता रहेगी तो क्षयोपशम बहुत अच्छा काम करेगा और तत्काल सावधान कर देगा। बहुत लोग ऐसे होते हैं, वे आवेग आते ही संभल जाते हैं। आवेग आना औदयिक भाव है और संभल जाना क्षायोपशमिक भाव।

दो प्रकार की प्रेरणाएं हमारे भीतर चलती हैं। एक है कर्म के उदय की प्रेरणा और दूसरी है क्षयोपशम की प्रेरणा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है--एक है चित्त की मलिनता की प्रेरणा और दूसरी है चित्तशुद्धि की प्रेरणा। कभी-कभी औदयिक प्रेरणा प्रबल हो जाती है, आदमी आवेग की स्थिति में चला जाता है किन्तु वह आवेग में निरन्तर नहीं रहता, क्षयोपशम की प्रेरणा आवेश का नियमन कर देती है। जब वह प्रेरणा अधिक शक्तिशाली बन जाएगी, आवेश शांत हो जाएगा। क्या कभी किसी को चौबीस घंटे खाते हुए देखा जाता है? क्या कभी किसी को चौबीस घंटे क्रोध करते हुए देखा जाता है? कोई भी व्यक्ति चौबीस घंटा बुरा काम नहीं करता, वह बीच में विराम लेता है। वह जो विराम का क्षण है, उसके पीछे हमारी क्षयोपशम की प्रेरणा काम करती है।

बलवान कौन?

पूछा गया--बलवान कौन? जीव बलवान है या कर्म? दोनों में शक्तिशाली कौन है? इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। इसका उत्तर निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष ही दिया जा सकता है। आचार्य ने समाधान दिया--कहीं-कहीं जीव बलवान होता है और कहीं-कहीं कर्म बलवान होता है। जीव का मतलब है क्षयोपशम भाव। सर्वत्र जीव बलवान नहीं होता और सर्वत्र कर्म बलवान नहीं होता। दोनों का अपना-अपना दांव है, दोनों का अपना-अपना बल है। हमारी जागरूकता प्रखर है तो जीव अधिक समय बलवान रहेगा और जागरूकता नहीं है तो कर्म अधिक समय बलवान् रहेगा। यह निश्चित है कि कर्म का परिणाम भुगतना पड़ेगा। किन्तु क्षयोपशम की प्रबलता में कर्म का विपाक शक्तिशाली नहीं रह पाएगा। यदि क्षयोपशम तीव्र होगा तो जीव शक्तिशाली रहेगा, कर्म का विपाक मंद हो जाएगा। कर्म का विपाक दो तरह से भोगा जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है–प्रदेशोदय से और विपाकोदय से। कर्म का विपाक न हो और वह प्रदेशोदय में ही भोग लिया जाए अथवा विपाक हो तो तीव्र न हो, मन्द हो जाए। यह करना हमारे हाथ में है। यही है हमारे पुरुषार्थ का सूत्र।

भगवान महावीर ने पुरुषार्थ और पराक्रम को महत्त्व दिया। इसलिए दिया कि यदि तुम पुरुषार्थ नहीं करोगे, नींद में सोए रहोगे तो कर्म तुम्हारे पर हावी हो जाएगा। यह बहुत ध्यान देने की बात है कि कर्म कब बलवान बनता है? जब हमारा पुरुषार्थ सो जाता है, तब कर्म को अपना काम करने का मौका मिल जाता है। यदि हमारा पुरुषार्थ सक्रिय रहता है; सम्यक् पुरुषार्थ चलता है तो कर्म का एकछत्र साम्राज्य नहीं होता। हम बार-बार उसको धर दबोचते हैं। जब भी कोई विपाक आने लगता है, हम उसको बदल देते हैं, उसको हटा देते हैं और आने से रोक देते हैं।

भाग्य परिवर्तन का सूत्र

अपने भाग्य को बदलने का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है। अपने अच्छे योग को प्रकट करने का और बुरे योग को मिटाने का इतना महत्त्वपूर्ण सूत्र कोई ज्योतिषी भी नहीं दे सकता। वह सूत्र है जागरूकता–सद्प्रवृत्ति, अच्छा चिन्तन, अच्छा भाव। विधायक भाव जितना आपके भाग्य को बदल सकता है, कोई भी ज्योतिषी नहीं बदल सकता। अच्छा पराक्रम चले तो जीव शक्तिशाली बनेगा, क्षायोपशमिक की प्रेरणा प्रबल बनेगी और कर्म का विपाक दबता चला जायेगा। बहुत सारे ज्योतिषी उपचार बताते हैं। किसी के शनि की दशा आ गई, राहु की दशा आ गई, ज्योतिषी कहते हैं–तुम इतना दान दो, यह करो, वह करो, जप करो। वे कहते हैं–तुम इस प्रकार का अनुष्ठान करो, तुम्हारा भाग्य बदल जाएगा। उनसे भाग्य कितना बदलता है, मैं नहीं जानता किन्तु जो जागरूक बन जाता है, विधायक भाव में अपने जीवन को लगा देता है, निषेधात्मक भाव में कम से कम जाता है, उसका भाग्य निश्चित बदल जाता है। उसकी सारी आंतरिक आवाजें, आंतरिक प्रेरणाएं प्रफुल्लित हो जाती हैं।

बहुत बड़ा सूत्र है–पुरुषार्थ। हम इस सचाई को जानें–जिस शरीर के द्वारा हिंसा होती है, अहिंसा उसी शरीर के द्वारा होती है। जिस हाथ के द्वारा चांटा जड़ा जाता है, उसी हाथ के द्वारा अभय की मुद्रा बनती है। अभय की मुद्रा और चांटा मारने में इसी हाथ का उपयोग होता है। जिस पैर से अच्छी गति की जाती है, उसी पैर से लात भी मारी जा सकती है। ये हाथ, पैर और इन्द्रियां शरीर के अवयव हैं। जब-जब ये औदयिक प्रणाली के साथ जुड़ जाते हैं, तब-तब ये हिंसा, झूठ आदि में लग जाते हैं और जब-जब ये क्षयोपशम की प्रणाली के साथ जुड़ते हैं तब-तब हमारे लिए कल्याणकारी बन जाते हैं। मार्ग बहुत स्पष्ट है। प्रश्न है प्रयोग की दिशा का और पुरुषार्थ को जगाने का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें हमारी जागरूकता बहुत काम देती है। भाव-क्रिया का प्रयोग बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। हमने हाथ उठाया और हमें यह ध्यान रहा कि हमारा हाथ उठ रहा है। यदि यह ध्यान बराबर बना रहे तो यह हाथ किसी को चांटा नहीं मारेगा। इसलिए कि व्यक्ति यह जान रहा है–हाथ उठ रहा है और उसे यह भी भान है कि हाथ कहां जा रहा है। जिस क्रिया में बराबर जागरूकता रहती है, उस क्रिया में बहुत अंतर आ जाता है।

सीख गुरजिएफ की

रूस में एक बहुत बड़े योगी हुए हैं गुरजिएफ। अन्तिम समय था। लड़के ने कहा–आप मुझे कोई सीख दें। गुरजिएफ ने अंतिम सीख दी–बेटा ! देखो, कभी गुस्सा आने का प्रसंग आ जाए तो कम से कम चौबीस घंटे पहले गुस्सा मत करना।

इस क्षण गुस्सा करने का प्रसंग है। क्या चौबीस घंटे बाद कोई गुस्सा करेगा? एक घंटा, आधा घंटा में ही गुस्सा समाप्त हो जाएगा। चौबीस घंटा बाद तो कोई गुस्सा कर नहीं सकता। आवेग तत्काल आता है, समय निकल जाता है तो गुस्सा करने का प्रश्न ही शेष नहीं रहता। इतनी जागरूकता बढ़ जाए–मुझे चौबीस घंटे का अंतराल देना है तो कोई भी आवेश टिक नहीं सकता। यह भावक्रिया ध्यान का ऐसा प्रयोग है, जिसे प्रतिक्षण किया जा सकता है। चौबीस घंटा यह ध्यान सध सकता है। केवल जागते हुए ही नहीं, सोते हुए भी व्यक्ति ध्यान कर सकता है।

भीतर से आती है जागरूकता

जागरूकता बाहर में नहीं, भीतर में है। अवचेतन मन में जागरूकता रहती है। बाहर की क्रिया तो उसके साथ चलती है। भीतर से ही प्रमाद आता है और भीतर से ही जागरूकता। बाहर का मन चेतन मन है। वह आंतरिक प्रेरणा की क्रियान्विति कर देता है। मूल स्रोत यही है। इस अर्थ में ध्यान हमारे लिए बहुत उपयोगी बनता है। जागरूकता ध्यान का निश्चित परिणाम है। ध्यान शिविर में जितनी जागरूकता आती है, उतनी जागरूकता उसके बाद भी रह जाए तो जीवन बदल जाए। समस्या यह है–ध्यान शिविर में जितनी जागरूकता रहती है उतनी बाद में नहीं रहती। यदि उसका पांच-दस प्रतिशत रह जाए तो भी ऐसा लगेगा–व्यक्ति कुछ बदल कर आया है। परिवार के लोग सोचेंगे–शिविर में रखना अच्छा है, आवश्यक है। पहले लड़ाई करता था, आपस में झगड़े करता था, अब नहीं करता है। पहले गालियां देता था, अब नहीं देता है। पहले सामने बोलता था, कहना नहीं मानता था, अब बड़ा शालीन बन गया है। ध्यान का परिणाम है परिवर्तन। यदि परिवर्तन न आए तो ध्यान शिविर में भाग लेने की सार्थकता क्या होगी?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बड़ा पहुंचा हुआ साधक एक बार श्मसान में गया। चिता की राख ली और उसे सूंघने लगा। लोग बोले–'योगीप्रवर ! आपको क्या हो गया? यह क्या कर रहे हैं? आप चिता की राख को क्यों सूंघ रहे हैं?'

'भई ! एक रहस्य जानना है।'

'क्या रहस्य जानना है?'

'यहां दो मुर्दे जलाए गये थे। एक बड़ा अमीर था और दूसरा बड़ा गरीब था। जो अमीर था वह बहुत तेल लगाता था, इत्र लगाता था और भी न जाने कितने-कितने साधनों का उपयोग करता था। वह सजा-धजा रहता था। जो दरिद्र था, उसे खाने को रोटियां भी नहीं मिलती थीं। लोग मानते हैं कि वह बड़ा आदमी था और वह छोटा आदमी। मैं यह परखना चाहता हूं कि बड़े आदमी और छोटे आदमी की राख में क्या फर्क है? जो इतना तेल और इत्र लगाता था, उसकी राख सुगंधित होनी चाहिए और जो दरिद्र था, उसकी राख में दुर्गन्ध आनी चाहिए।'

'क्या पाया आपने?'

'पाया कुछ भी नहीं। दोनों की राख समान है, कोई अन्तर नहीं है। जैसी अमीर की राख, वैसी गरीब की राख। गन्ध में कोई अन्तर नहीं है तो फिर वह अमीर कैसे हुआ और वह गरीब कैसे हुआ?'

संन्यासी के इस प्रश्न ने लोगों को निरुत्तर कर दिया।

भेदरेखा खींचें

अन्तर दिखाई देना चाहिए। ध्यान शिविर में आया, जैसा पहले था, ध्यान शिविर के बाद वैसा का वैसा रहा तो गरीब और अमीर की राख एक जैसी बन गई। अन्तर होना चाहिए, एक भेदरेखा होनी चाहिए। पहले ऐसा था, अब इतना बदल गया। मात्रा कम अथवा अधिक हो सकती है। इतना तो होना चाहिए–पहले क्रोध बहुत करता था, अब कुछ कम हो गया। पहले उच्छृंखलता अधिक थी, अब इतनी कम हो गई। परिवर्तन तो आना ही चाहिए। पहले डर इतना लगता था, अब इतना कम हो गया। पहले पदार्थ के प्रति आकर्षण प्रबल था, अब कम हो गया। अगर इतना सा परिवर्तन नहीं होता है तो मानना चाहिए–ध्यान करना और न करना एक जैसा है। व्यक्ति स्वास्थ्य के लिए औषध लेता है। यदि दवा से स्वास्थ्य न सुधरे तो उस दवा का क्या अर्थ है? क्षुधा मिटाने के लिए भोजन करता है। वह भोजन भी करता चला जाए और भूख भी न मिटे तो खाने का मतलब क्या होगा? आज धर्म के क्षेत्र में यही स्थिति बन रही है। जो धर्म करता है, वह भी वैसा है और जो धर्म नहीं करता है, वह भी वैसा है। व्यवहार में,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचरण में, कोई अंतर नहीं दिखाई देता। यदि ध्यान के द्वारा यह भेदरेखा नहीं खीची जाती है तो बात समझ में नहीं आती। ध्यान के द्वारा अवश्य ही आवेगों में परिवर्तन आना चाहिए।

शामक औषधि है ध्यान

मनश्चिकित्सकों के सामने एक प्रश्न आया—जो लोग बहुत ज्यादा आवेग में आते हैं, वे पागल बनने की स्थिति में चले जाते हैं। उस पागलपन को कैसे रोका जाए? मनश्चिकित्सकों ने एक समाधान ढूंढा, शामक औषधियों का प्रयोग किया। पागलपन को रोकने के लिए शामक औषधियां दी जाती हैं। उससे पागलपन की स्थिति में परिवर्तन आता है और वह शांत हो जाता है। बहुत तेज आवेग, जिस पर कंट्रोल नहीं रहता, आदमी को पागलपन की दशा में ले जाता है। ट्रेंक्वेलाइजर का प्रयोग करते हैं, आवेग का नियमन हो जाता है। ध्यान शायद सबसे बड़ा ट्रेंक्वेलाइजर है। इसके बराबर कोई ट्रेंक्वेलाइजर नहीं है। जो गोलियां ली जाती हैं, थोड़ी देर बाद उनका असर समाप्त हो जाता है, किन्तु ध्यान एक ऐसी शामक औषधि है, जिसका असर स्थाई बनता है। यह पागलपन रोकने का एक सुन्दर उपाय है।

योग का एक शब्द है—विक्षेप, आवेग-जनित चंचलता। इस स्थिति में शारीरिक परिवर्तन भी घटित होते हैं। उन शारीरिक परिवर्तनों की आज मनोविज्ञान ने बहुत विशद व्याख्या की है। क्रोध भी आया तो इतना शांत आया कि मन की थोड़ी-सी बात एक तेजी के साथ कह दी और क्रोध शांत हो गया। क्रोध करना भी एक कला है। क्रोध में भी फूहड़पन नहीं होना चाहिए। यह क्रोध की कला नहीं है कि क्रोध आए और हाथ कांपने लगे, शरीर कांपने लग जाए, होठ फड़कने लग जाए। व्यक्ति कहता है कुछ और निकलता है कुछ। कोई भान ही नहीं रहता। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि व्यक्ति आवेश में स्वयं अपनी छाती पर मुक्का मारने लग जाता है। कभी अपना होठ काट लेता है, कभी अपने बाल नोंचने लग जाता है। कभी-कभी क्रोध में आकर आग की शरण में चला जाता है, आत्मदाह की बात भी कर लेता है। ये सारी स्थितियां क्रोध की कला न जानने के कारण बनती हैं। इन पर नियंत्रण करने के लिए ध्यान बड़ा प्रयोग है। व्यक्ति ध्यान की स्थिति में चला जाता है तो भयंकरता की स्थिति समाप्त हो जाती है।

हम आवेगों को तीन श्रेणियों में बांट दें—तीव्र, मन्द और अभाव। एक आदमी ऐसा होता है, जिसका आवेग इतना तीव्र और भयंकर होता है कि जब आवेग आता है, कोई भान ही नहीं रहता। एक आदमी ऐसा है जिसे आवेग आता है, पर तीव्र और स्थाई नहीं रहता। पत्थर की लकीर मिटती नहीं है, बहुत गाढ़ बन जाती है। पानी या बालू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की लकीर जल्दी मिट जाती है। बालू में लकीर खींची, थोड़ी हवा चली, तत्काल मिट जाएगी। पानी में लकीर खींची, वह तत्काल मिट जाएगी। एक पानी की लकीर जैसा आवेग होता है। आवेग पत्थर की लकीर जैसा न बने, वह शांत रहे। हम ध्यान की प्रक्रिया के द्वारा क्रोध, अहंकार, माया लोभ, भय, घृणा, वासना--इन सबको शांत करते चले जाएं, मन्द करते चले जाएं तो उनकी तीव्रता समाप्त होती चली जाएगी। एक दिन ऐसा आएगा–हम आवेश और कषाय से मुक्त वीतराग-दशा का वरण कर लेंगे। इस स्थिति की उपलब्धि ही ध्यान का लक्ष्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१

सुरक्षा और ध्यान

आज का वातावरण हिंसा और आतंक का वातावरण है। हर व्यक्ति अपने-आपको असुरक्षित अनुभव करता है। विशेषत: वे लोग, जो नेता हैं, राजनीति में लगे हुए हैं, धनपति और उद्योगपति हैं, अपने आपको अधिक असुरक्षित अनुभव करते हैं। सुरक्षा के लिए जितने कमाण्डो आज चल रहे हैं, संभवत: पहले नहीं रहे होंगे। पहले किसी विशिष्ट राजा आदि के साथ सुरक्षा की व्यवस्था चलती थी। आज तो सैकड़ों-हजारों लोगों के साथ सुरक्षा की व्यवस्था चलती है। एक भय का-सा वातावरण समाज में बना हुआ है। यह सोचने के लिए विवश करता है—क्या मनुष्य कहीं सुरक्षित है? क्या उसके लिए सुरक्षा की कोई व्यवस्था है? इस प्रश्न का उत्तर अपने आपमें खोजना होगा और वह होगा—हर व्यक्ति सुरक्षित है, हर व्यक्ति असुरक्षित है। दुनिया का कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसके पास अपने सुरक्षा की व्यवस्था न हो और कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जो असुरक्षित न हो।

प्रश्न है—सुरक्षा कहां है? व्यक्ति जितना-जितना अपने-आपमें होता है, अपनी चेतना के साथ जुड़ा हुआ रहता है, उतनी-उतनी सुरक्षा है। जितना-जितना बाहर फैलता है, पदार्थ के साथ जुड़ता है, उतनी-उतनी असुरक्षा है।

घर में चोर आया। धन लूटा और धनपति को भी मार दिया। वह धन की भी सुरक्षा नहीं कर सकता। व्यक्ति के पास में शस्त्र था और पहले ही दूसरे ने शस्त्र से वार कर दिया। व्यक्ति मर गया, शस्त्र भी रक्षा नहीं कर सकता। सुरक्षा के जितने साधन माने जाते हैं, वे सब असुरक्षा के साधन बन जाते हैं। सुरक्षा है अपनी आत्मा में रहना, अपनी चेतना में रहना। इसके सिवाय सुरक्षा का कोई ऐकांतिक साधन नहीं है। केवल अध्यात्म ही सुरक्षा का ऐकांतिक और आत्यंतिक साधन है।

भय का हेतु

असुरक्षा क्या है? व्यक्ति में एक मूर्च्छा है। शरीर के प्रति मूर्च्छा है, पदार्थ के प्रति मूर्च्छा है। वह मूर्च्छा भय पैदा करती है और भय व्यक्ति को असुरक्षित बनाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विश्व भारती में प्रेक्षाध्यान सीखने के लिए जर्मनी की एक युवती आई। उसने कहा—'मुझे डर बहुत लगता है। इसके लिए क्या प्रयोग करना चाहिए? डर का कोई कारण नहीं, हेतु नहीं, फिर भी डर लगता है। मन में एक असुरक्षा का भाव बना रहता है।' भय का हेतु है—मूर्च्छा। मूर्च्छा है, इसलिए भय पैदा हो रहा है। स्नायविक दुर्बलता भी भय को पैदा करती है, निषेधात्मक भाव भी भय को पैदा करता है, किन्तु इन सबकी जड़ में मूर्च्छा है, पदार्थ के प्रति आसक्ति है। सबसे पहली आसक्ति है शरीर के प्रति। शरीर के प्रति मूर्च्छा है इसलिए भय रहता है। शरीर को कहीं चोट न आ जाए, यह भय बना रहता है। शरीर की मूर्च्छा से ही सारा भय पैदा होता है, असुरक्षा पैदा होती है। जिस व्यक्ति के मन में शरीर की मूर्च्छा नहीं है, वह सर्वथा अभय है।

कौन करता है सुरक्षा?

भगवान महावीर अकेले घूमे। जंगलों में घूमे। वहां गए, जहां सामने मौत दिखाई दे रही थी, जहां भयंकर दृष्टविष सर्प चण्डकौशिक सामने था, जहां यक्ष सामने था। पुजारी ने कहा—यह शूलपाणि यक्ष का मंदिर है यहां रहने वाला रात को जीवित रहता है पर सुबह जीवित नहीं मिलता। प्रातः केवल उसकी लाश मिलती है। तुम यहां मत रहो। महावीर ने इस कथन को सुना, किन्तु स्वीकार नहीं किया। महावीर वहीं रहे, कोई भय नहीं था, असुरक्षा नहीं थी। महावीर से कहा गया—आपको अकेले में काफी कष्ट होते हैं। आपके साथ हम सुरक्षा की व्यवस्था कर दें। महावीर ने उत्तर दिया—'सुरक्षा की व्यवस्था दूसरा कौन करने वाला है?, सुरक्षा मेरे भीतर है। बाहर से कौन सुरक्षा करने वाला है? यह कितनी सचाई है। सुरक्षा के नाम पर आज एक व्यक्ति के साथ अनेक कमाण्डो चलते हैं, फिर भी आतंकवादी उसे मार देते हैं। कमाण्डो देखते ही रह जाते हैं और वे भी मौत के शिकार हो जाते हैं। आखिर सुरक्षा है कहां? जहां मूर्च्छा है, वहां कहीं सुरक्षा होती नहीं है।

मूर्च्छा और भय

शरीर की मूर्च्छा से भय और भय से असुरक्षा—यह एक चक्र है। सुरक्षा के लिए सबसे पहले भय से मुक्ति पाना जरूरी है, अभय होना जरूरी है। अभय के लिए मूर्च्छा का त्याग जरूरी है। यदि मूर्च्छा का त्याग नहीं है तो एक भय मिटेगा, दूसरा भय पैदा हो जाएगा।

एक व्यक्ति बहुत डरता था। किसी मंत्रज्ञ के पास गया, बोला—'मुझे डर बहुत लगता है। कोई ऐसा ताबीज बना दो, जिससे मेरा डर समाप्त हो जाए।' मंत्रज्ञ व्यक्ति ने मंत्र का एक ताबीज बनाकर देते हुए कहा—तुम हाथ के बांध लो, तुम्हें डर नहीं लगेगा। उसने हाथ के बांध लिया। कुछ माह बाद मिला। मंत्रज्ञ ने पूछा—'कहो, कैसे हो?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या तुम्हारा डर मिट गया?' उसने कहा—'वह डर तो मिट गया किन्तु एक नया डर पैदा हो गया। हमेशा यह डर बना रहता है कि कहीं ताबीज गुम न हो जाए।'

जहां मूर्च्छा है वहां भय समाप्त नहीं होता। एक भय मिटता है तो दूसरा भय पैदा हो जाता है। एलोपैथिक दवा एक बीमारी मिटाने के लिए दी जाती है, वह बीमारी मिट जाती है, किन्तु उस दवा की एक प्रतिक्रिया होती है और दूसरी बीमारी पैदा हो जाती है। एक बीमारी का मिटना और दूसरी बीमारी का पैदा होना—दोनों साथ जुड़े हुए हैं। एलोपैथी दवा बीमारी को मिटाएगी, किन्तु पारिपार्श्विक खतरा भी उसके साथ जुड़ा हुआ है। मूल हेतु है—मूर्च्छा । यदि हम अध्यात्म को समझना चाहें, निश्चय नय अथवा वास्तविकता में जाना चाहें, तो हमें मूर्च्छा को पकड़ना पड़ेगा।

जगत् को हम दो भागों में बांट दें—एक धार्मिक अथवा मोक्ष का जगत् और एक व्यावहारिक अथवा सांसारिक जगत्। यह परिभाषा की जा सकती है—जहां-जहां मूर्च्छा वहां-वहां संसार। जहां-जहां मूर्च्छा का अभाव, वहां-वहां अध्यात्म अथवा मोक्ष।

सबसे बड़ी समस्या है मूर्च्छा। पदार्थ के प्रति इतना आकर्षण पैदा हो गया कि छूट नहीं पा रहा है। इन्द्रियों ने पदार्थ के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर लिया और मन की चंचलता का ऐसा योग मिल गया कि आदमी इस मूर्च्छा के चक्रव्यूह में उलझता चला जा रहा है।

जीवन का नया आयाम

इस चक्र से निकलने के लिए ध्यान की जरूरत है। ध्यान से चंचलता कम होती है। चंचलता कम होती है तो एक नये वातावरण में जीने का मौका मिलता है। चंचलता हमेशा व्यक्ति को पदार्थ जगत् की ओर खींचती है। जैसे ही चंचलता समाप्त होती है, नई दुनिया हमारे सामने आ जाती है। शरीर की चंचलता मिटे, वाणी और मन की चंचलता समाप्त हो जाए, निर्विकल्प स्थिति में पहुंच जाए तो जीवन का नया आयाम उद्घाटित हो जाए। उस स्थिति में नया दृष्टिकोण, नई दिशा, नई दुनिया, नई दृष्टि—सारा वातावरण नया बनता है, जिस स्थिति का हमें अनुभव नहीं है, वह स्थिति सामने आती है।

हमारा सारा अनुभव इन्द्रिय-जन्य है। जो इन्द्रियों से पैदा हुआ है, वह हमारा अनुभव है। हम किसी वस्तु को अच्छा अथवा बुरा बताते हैं, इसका हेतु हमारी इन्द्रियां हैं। कोई चीज खाई, अच्छी लगी। हमने कहा—अच्छी वस्तु है। कोई चीज खाई, और खराब लगी, हम कहते हैं—यह खराब वस्तु है। अच्छा और खराब होने का मानदण्ड क्या है? किसी वस्तु को देखा, आकृति को देखा, वह हमें प्रिय लगती है तो हम कहते हैं—अमुक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु सुन्दर है, बहुत अच्छी है। सुन्दर और असुन्दर होने का मानदण्ड है–हमारी इन्द्रियां। हम इन्द्रियों के आधार पर ही सारा निर्णय कर रहे हैं। इन्द्रिय जगत् से हम इतने जुड़े हुए हैं कि इन्द्रियों से परे की बात सोच ही नहीं पा रहे हैं। जब तक इन्द्रियातीत चेतना जागृत नहीं होती तब तक सुरक्षा की बात भी नहीं सोची जा सकती और मूर्च्छा को तोड़ने की बात भी नहीं सोची जा सकती।

सारा वातावरण इन्द्रियजन्य है। हम कान से सुनते हैं, आंख से देखते हैं, हाथ से किसी चीज को छूते हैं और उनके आधार पर हमारी अवधारणाएं बनती हैं। बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क करने का माध्यम है इन्द्रियां। उनके आधार पर हमारी सारी धारणाएं बनती हैं। मन वही काम करता है। जो मसाला इन्द्रियों के द्वारा मिल जाता है, वह उसको पक्का माल बना देता है किन्तु मूल स्रोत हमारी इन्द्रियां हैं। वे पदार्थों के साथ, बाह्य जगत् के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हैं। जब तक इन्द्रियां और मन से परे होने की बात समझ में नहीं आएगी तब तक नई दुनिया का अनुभव नहीं होगा।

पदार्थ की दुनिया

इन्द्रिय और मन की दुनिया का अर्थ है पदार्थ की दुनिया। पदार्थ की दुनिया का मतलब है–मूर्च्छा का जीवन। जो व्यक्ति जितना पदार्थ के साथ जुड़ा रहेगा, उतनी ही मूर्च्छा बढ़ेगी। पदार्थ के प्रति अनासक्त होना, मूर्च्छा का न होना, उसी स्थिति में संभव है, जब हम इन्द्रियों और मन से परे जो जगत् है उसका अनुभव कर सकें। उसे चाहे अध्यात्म कहें, ध्यान कहें अथवा धर्म कहें। आखिर ये एक ही परिवार के सदस्य हैं। उनकी परिभाषाएं अलग-अलग हैं। जो धर्म है, वह ध्यान है और जो ध्यान है, वह अध्यात्म है। परिभाषा में ये सब निकट आ जाते हैं, एक ही परिवार के हो जाते हैं। कोई चाचा है तो कोई भतीजा हो सकता है, कोई बाप है तो कोई बेटा हो सकता है, किन्तु आखिर एक ही परिवार से जुड़े हुए हैं।

सुरक्षा कहां?

दो जगत् हमारे सामने हैं–अध्यात्म का जगत् और इन्द्रियों का जगत्। इन शब्दों में भी कहा जा सकता है–एक है अतीन्द्रिय चेतना का जगत् और एक है इन्द्रिय चेतना का जगत्। इन्द्रिय चेतना के जगत् में सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। हम यह मान लें–व्यक्ति को किसी हत्यारे ने नहीं मारा किन्तु व्यक्ति स्वयं अपने आपको मारता है। अधिक क्रोध किया और मृत्यु हो गई। अधिक गुस्सा किया और हार्ट अटैक हो गया। अधिक खा लिया अथवा इतना खा लिया और उससे ऐसा बीमार पड़ गया कि मृत्यु हो गई। अधिक लोभ किया, लोभ का इतना तेज आवेश आ गया, युवावस्था में ही हृदय दुर्बल हो गया। व्यक्ति की असमय में मृत्यु हो गई। कौनसी सुरक्षा काम देगी? कोई सुरक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम नहीं दे सकती। आयु पूर्ण हो गई, मौत आ गई। किडनी खराब हो गई और जीवन की लौ बुझ गई।

हमने देखा–छापर के चौरड़िया परिवार का एक व्यक्ति बहुत कार्य में लगा हुआ था। उन दिनों छापर में मर्यादा-महोत्सव होने वाला था। वह व्यवस्था-समिति का अध्यक्ष था। सारा दायित्व ओढ़े हुए था। दर्शन के लिए आया। पांच मिनट बाद सुना वह व्यक्ति चल बसा। वह नीचे से ऊपर दूसरी मंजिल पर गया। पुनः नीचे नहीं उतर सका, केवल यह संवाद आया– 'माणक चौरड़िया नहीं रहा।' विश्वास होना मुश्किल था, किन्तु अविश्वास भी नहीं किया जा सका। अचानक गुर्दा फेल हो गया और निधन हो गया। ऐसे ही एक व्यक्ति आया, बैठा था सामने। अचानक हार्ट फेल हो गया, चल बसा। सुरक्षा क्या काम देगी? असुरक्षा इतनी है कि जीवन लुट जाता है, आदमी चला जाता है। कोई किसी को मार देता है तो कहा जाता है–सुरक्षा की व्यवस्था नहीं थी, इसलिए मारा गया। किन्तु जो असुरक्षा भीतर बैठी है, उसकी ओर ध्यान नहीं जाता। ब्रेन हेमरेज हो जाए, हार्ट खराब हो जाए, लीवर काम करना बन्द कर दे तो क्या होगा? एक बड़ा व्यक्ति है। सुरक्षा की पूरी व्यवस्था है। बाहर सैकड़ों पुलिस के लोग मशीनगनें ताने हुए खड़े हैं, भीतर कोई जा नहीं सकता किन्तु भीतर के अवयवों ने काम करना बन्द कर दिया, मस्तिष्क ने काम करना बन्द कर दिया, आभामण्डल बिगड़ गया और इतनी बड़ी सुरक्षा के बीच बैठा आदमी चल बसा।

वह सुरक्षित है

हमने सुरक्षा-असुरक्षा को इतने स्थूल अर्थ में ले लिया कि एक अकारण भय का वातावरण पैदा कर दिया। यदि थोड़े गहरे में जाते और सचाई का पता लगाते तो यह निष्कर्ष प्रस्तुत होता–मरना और असुरक्षा–दोनों जुड़े हुए नहीं हैं। बहुत सुरक्षा में भी आदमी मर सकता है और बहुत असुरक्षा में भी आदमी जिन्दा रह जाता है। कुछ वर्ष पहले महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्रों में भारी भूकम्प आया। छोटे-छोटे बच्चे मलबे में दब गए। जब मलबे को निकाला गया, दो तीन दिन बाद भी दो बच्चे जीवित निकल गये। उनकी कौन सुरक्षा कर रहा था? सैकड़ों-हजारों आदमी मरे हुए थे। उनकी कौन असुरक्षा कर रहा था? हमने मरने के साथ सुरक्षा और असुरक्षा को जोड़ कर भारी भूल की है। वास्तव में हमारी सुरक्षा की भाषा यह होनी चाहिए–जो व्यक्ति अपनी चेतना के साथ जीता है, आत्मा के साथ जीता है, वह दुनिया में सबसे ज्यादा सुरक्षित है। जो अन्तश्चेतना के साथ नहीं जीता, केवल पदार्थ-चेतना के साथ जीता है, वह दुनिया में सबसे ज्यादा असुरक्षित है।

मूर्च्छा में जीने वाला दुनिया में कभी सुरक्षित नहीं हो सकता। उसका भय हमेशा बना रहेगा। व्यक्ति धन की सुरक्षा करता है। उसके लिए कितनी गोदरेज की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलमारियां रखता है, और भी न जाने कितने साधन जुटाता है। धन को इतना सुरक्षित रखता है, फिर भी धन चला जाता है। बैंक में भी बहुत सुरक्षा-व्यवस्था रहती है, वहां भी चोरियां, डकैतियां हो जाती हैं। प्राण भी लूट लिए जाते हैं। जहां मूर्च्छा के जगत् में आदमी जीता है, वहां सुरक्षा की बात कैसे होगी?

जो धर्म को समझने वाला व्यक्ति है, उसका चिन्तन दूसरे प्रकार का होना चाहिए। धर्म को समझने का मतलब है सत्य को समझना। धर्म और सत्य–इन दोनों में कोई भेदरेखा नहीं खींची जा सकती। धर्म वास्तव में सत्य का ही एक पर्यायवाची नाम है। धर्म का एक अर्थ होता है वस्तु का स्वभाव। आचार्यों ने धर्म की परिभाषा करते हुए लिखा–**वत्थुसहावो धम्मो**–जो वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है। हमारी चेतना का जो स्वभाव है, उसका नाम है धर्म। वही तो सत्य है। चेतना में रहना, चेतना के स्वभाव में रहना धर्म में रहना है। वहां कोई मूर्च्छा है ही नहीं। जैसे ही व्यक्ति चेतना से बाहर आया, मूर्च्छा आ गई।

धर्म है भीतर रहना

प्रसिद्ध घटना है। डायोजिनीज से पूछा गया–'धर्म की परिभाषा क्या है?' डायोजिनीज महान दार्शनिक संत था। उसने कहा–'अभी मुझे समय नहीं। तुम अपना पता नोट करा दो। समय होने पर मैं तुम्हें धर्म की परिभाषा लिखकर भेज दूंगा।'

उसने अपना पता दे दिया। डायोजिनीज ने कहा–'क्या यह तुम्हारा स्थायी पता है?'

'स्थायी तो नहीं है। मैं रविवार के दिन अमुक स्थान पर चला जाता हूं।' उसने वहां का पता भी दे दिया।

'क्या यह तुम्हारा स्थायी पता है?'

'नहीं, मैं बृहस्पतिवार के दिन दूसरी ऑफिस में काम करने जाता हूं।' उसने उस ऑफिस का पता भी दे दिया।

डायोजिनीज ने तीन-चार बार इस प्रश्न को दोहराया। 'स्थाई पता, स्थाई पता–यह कहते हुए आदमी गुस्से में आ गया। एक बात तीन-चार बार पूछी जाती है तो आदमी उबल जाता है, गुस्से में आ जाता है। उसने कहा–'क्या बार-बार पूछ रहे हो? यहां रहता हूं, यहां रहता हूं, यही मेरा स्थायी पता है'–यह कहते हुए उसने छाती पर मुक्का मारा। संत ने कहा–'यही धर्म की परिभाषा है। यहां रहना धर्म है और यहां से बाहर जाना अधर्म है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुरक्षा की जड़

अपने भीतर रहना धर्म और बाहर जाना अधर्म। यदि यह चेतना जागृत होती तो असुरक्षा की बात नहीं होती, भय नहीं होता। भीतर कोई भय नहीं है। भय सारा बाहर में है। ध्यान शिविर में आए लोग इस हाल में बैठे हैं। यहां भय कहीं नहीं है किन्तु मन के एक कोने में भय बना हुआ हो सकता है। यह चिन्तन उभर सकता है मकान के ताला लगाकर आए हैं, कहीं चोर ताला न तोड़ डाले। कहीं कुटीरों में कोई घुस न जाए। कहीं घर में पीछे से कोई कुछ कर न दे। हम जानें या न जानें, स्थूलदृष्टि से न पकड़ पाएं किन्तु सूक्ष्म भावना के स्तर पर, अध्यवसाय के स्तर पर हर व्यक्ति में क्रोध, अभिमान, लोभ, भय, काम-वासना आदि निरन्तर सक्रिय बने हुए हैं। जिसको निमित्त मिला, वह व्यक्त हो गया और जिसे निमित्त नहीं मिला, वह अव्यक्त उपादान के रूप में विद्यमान रह गया।

असुरक्षा की जो जड़ है, वह भीतर में है। जब तक वह नहीं मिटती, तब तक भय और असुरक्षा का यह चक्र बराबर चलता रहेगा। उसे मिटाने के लिए उपादान को समाप्त करना होगा और उसके लिए गहराई में जाना पड़ेगा। अगर पत्ते को तोड़ना है, फूल या टहनी को तोड़ना है तो कहीं गहरे में जाने की जरूरत नहीं है। थोड़ा-सा हाथ ऊंचा किया और पत्ता तोड़ दिया किन्तु अगर जड़ तक पहुंचना है तो बहुत गहरे में पहुंचना होगा।

गहराई में जाएं

ध्यान का मतलब है गहराई में जाना। ध्यान शिविर में बार-बार शरीर प्रेक्षा का प्रयोग कराया जाता है। इसका अर्थ केवल चमड़ी को देखना नहीं है, शरीर की गहराई में जाना है। श्वास प्रेक्षा के द्वारा केवल श्वास के प्रकम्पन को ही नहीं पकड़ना है, उसके साथ उस प्राण-शक्ति को पकड़ना है, जो श्वास का संचालन कर रही है। श्वास और श्वास-प्राण एक नहीं है। श्वास अलग है और श्वास-प्राण अलग है। जो बाहर से हवा ली जा रही है, ऑक्सीजन ली जा रही है, प्राणवायु ली जा रही है, वह श्वास है। श्वास को खींचने वाला एक अवयव है रेस्पीरेटरी सिस्टम। वह हर व्यक्ति के शरीर में होता है। उस श्वसन तंत्र को संचालित करने वाली जो शक्ति है, वह है श्वास-प्राण।

ध्यान का मतलब इतना ही नहीं है कि केवल आते-आते श्वास को देखें। यह पहला स्थूल उपक्रम है। हमें वहां तक पहुंचना है, जहां हम श्वास-प्राण को पकड़ सकें। उस प्राण-शक्ति को पकड़ सकें और यह भेद कर सकें—यह श्वास है और यह श्वास को संचालित करने वाली शक्ति का केन्द्र है। श्वास-प्राण का केन्द्र है हमारे मस्तिष्क में। हम उच्चारण करते हैं, बोलते हैं, यह हमारी भाषा हो गई। भाषा अलग बात है, भाषा-प्राण अलग बात है। हम सोचते हैं, यह मन हो गया किन्तु मन अलग वस्तु है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोबल प्राण, जो मन को संचालित कर रहा है, एक अलग बात है। ध्यान के द्वारा हमें उस गहराई में जाना है, जहां पहुंचकर हम चेतना और शरीर, के पुद्गल और चेतना के भेद को पकड़ सकें, उसे समाप्त कर सकें।

हम कायोत्सर्ग का प्रयोग करते हैं, शरीर शिथिल हो जाता है। शिथिलता से विश्राम मिल सकता है किन्तु वह मंजिल नहीं है। हमें पहुंचना वहां तक है, जहां शरीर और आत्मा को जोड़ने वाला ममत्व का सूत्र है, धागा है। शरीर के प्रति जो ममत्व जुड़ा है, वह ममत्व की ग्रंथि विमोचित हो जाए तो सही अर्थ में कायोत्सर्ग सिद्ध होगा। भगवान् महावीर ने दीक्षा के समय संकल्प किया था—'**वोसट्ठचत्तदेहे विहरिस्सामि**'—मैं शरीर का व्युत्सर्ग और त्याग करता हूं।

अस्पर्शयोग की भूमिका

प्रेक्षाध्यान के शिविर में आधा घण्टा अथवा एक घण्टा का कायोत्सर्ग कराया जाता है। महावीर का बारह वर्ष का साधना-काल कायोत्सर्ग का काल था। आप लोग लेटकर करते हैं किन्तु महावीर खड़े-खड़े भी कायोत्सर्ग नहीं करते थे, चलते-चलते भी कायोत्सर्ग करते थे। एक ओर स्वयं चल रहे थे, दूसरी ओर कायोत्सर्ग चल रहा था। काया के प्रति उनका ममत्व छूट गया। वे निरन्तर कायोत्सर्ग में ही थे, चाहे चलते, बोलते, हाथ अथवा पैर को हिलाते। कायोत्सर्ग में बताया जाता है कि हाथ न हिले, पैर न हिले किन्तु महावीर का हाथ भी हिलता था, पैर भी चलते थे और कायोत्सर्ग भी साथ-साथ चलता था। हमें भी यहां तक पहुंचना है—बोलते समय भी कायोत्सर्ग, चलते समय भी कायोत्सर्ग और उठते-बैठते समय भी कायोत्सर्ग। यह स्थिति बनती है, तब सुरक्षा का प्रश्न समाहित हो जाता है। इस स्थिति में मूर्च्छा, भय, असुरक्षा की वृत्ति हमें छू भी नहीं पाती। हम अस्पर्श की भूमिका में पहुंच जाते हैं। गीता में अस्पर्श योग का विवेचन मिलता है। हम अस्पर्श की भूमिका में पहुंच जाएं तो वह हमारी नितान्त सुरक्षा की भूमिका होगी। ध्यान उस भूमिका की उपलब्धि का सर्वोत्तम पथ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२

ध्यान की कसौटी

व्यक्ति ध्यान प्रारम्भ करता है, कुछ अभ्यास बढ़ता है। थोड़ा आनन्द का अनुभव होने लगता है, कुछ मानसिक शांति प्रतीत होने लगती है और व्यक्ति समझता है कि ध्यान सिद्ध हो गया। ये सब इस बात के लक्षण हैं कि ध्यान हो रहा है। प्रकाश दिखाई देना, रंग दिखाई देना, आनंद होना, प्रीति होना—ये सारे ध्यान के लक्षण तो हैं, पर कसौटियां नहीं हैं। ध्यान करने वाले व्यक्ति को प्रतिवर्ष अथवा प्रति मास यह कसौटी करते रहना चाहिए कि यथार्थ में ध्यान हो रहा है या नहीं? ध्यान सिद्ध हो रहा है या नहीं? जिज्ञासा होती है—ध्यान की कसौटी क्या है? ध्यान की अनेक कसौटियां हैं। उनमें सात ये हैं—

१. आहार का संयम।
२. वाणी का संयम
३. जागरूकता।
४. दुःख में कमी।
५. दौर्मनस्य का अभाव।
६. श्वास की संख्या में कमी।
७. संवेदनशीलता।

आहार का संयम

ध्यान की पहली कसौटी है—आहार का संयम। यदि आहार का संयम सधा है तो मान लेना चाहिए—ध्यान भी सध रहा है। व्यक्ति ध्यान करता चला जा रहा है और आहार में कोई परिवर्तन नहीं आया है। जैसे पहले खाता था, वैसे ही खाता चला जा रहा है, जीभ की लोलुपता कम नहीं हुई है तो मानना चाहिए, ध्यान सिद्ध नहीं हो रहा है। यह निश्चित है कि जिस व्यक्ति का ध्यान सिद्ध होगा, उसमें आहार की आसक्ति कम होगी, उसके खाने का उद्देश्य बदल जायेगा। कहा जाता है—जीने के लिए खायें, खाने के लिए न जीयें। यह बात सुनने में अच्छी लगती है, पर यह सार्थक तब बन सकती है, जब भोजन की आसक्ति छूट जाये। यदि आसक्ति छूटे तो समझना चाहिए कि ध्यान की कुछ निष्पत्ति हुई है, मेरे चरण ध्यान की दिशा में कुछ आगे बढ़ रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणी का संयम

ध्यान की दूसरी कसौटी है–वाणी का संयम। यदि ध्यान करने वाला व्यक्ति अनावश्यक बातें करता है, व्यर्थ की बकवास करता है, अफवाहें फैलाता है, कड़वी भाषा बोलता है तो मानना चाहिए–ध्यान निष्पन्न नहीं हुआ। ध्यान का एक अनिवार्य परिणाम है वाणी का संयम। मौन करना बहुत अच्छा है पर मेरी दृष्टि में मौन से भी अधिक उपयोगी है वाणी का संयम। मौन कितने समय किया जा सकता है? एक घण्टा, दो घण्टा, एक दिन अथवा दो दिन। यह संभव नहीं है कि व्यक्ति जीवन पर्यन्त मौन करे। व्यक्ति ने एक घण्टा मौन किया और शेष घण्टों में मौन की सारी कसर निकाल ली तो मौन का अर्थ कम हो गया। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया–वह बोलता हुआ भी मौन ही है, जिसके वचन की गुप्ति है, वाणी का संयम है। जिसके वाणी का संयम नहीं है, वह नहीं बोलता हुआ भी वाचाल है। वाणी का संयम होना, वाणी का विवेक होना बहुत बड़ी उपलब्धि है। समाज के साथ सारा सम्पर्क जुड़ता है वाणी के द्वारा। इसीलिए कहा गया है–'**बोल्या के लाधा।**' यह राजस्थानी कहावत है। इसका तात्पर्य है–आदमी कैसा है? यह जानना है तो उसकी वाणी को परख लो। बोलने में कितना फूहड़ है, कितना समझदार है, यह बोलने से स्वयं पता लग जायेगा।

ध्यान की उपसम्पदा के दो सूत्र हैं–मित आहार और मित भाषण या मौन। उपसम्पदा के जो सूत्र हैं, वे हमारे आचरण-सूत्र हैं। प्रेक्षाध्यान के द्वारा उन्हें सिद्ध करना है। आपने ध्यान किया। बहुत आनन्द आया। जैसे ही ध्यान पूरा कर परिजनों, मित्रों और पड़ोसियों के बीच गये, वही कटु व्यवहार शुरू कर दिया तो उनके पल्ले क्या पड़ा? आनन्द आपका व्यक्तिगत प्रश्न हो सकता है किन्तु दूसरों के प्रति वही व्यवहार है तो दूसरा यही कहेगा–यह ध्यान नहीं है, ढोंग है। हम उसकी इस प्रतिक्रिया को गलत कैसे कह सकते हैं? पांच-दस वर्ष से निरन्तर ध्यान करने वाले का व्यवहार नहीं बदलता है तो ध्यान और रूढ़िवादी धर्म में क्या अन्तर किया जा सकेगा? ध्यान रूपान्तरण की प्रक्रिया है। जैसे रूढ़िवादी धर्म की धारणाओं से आज परिवर्तन नहीं होता वैसी ही दशा ध्यान की बन जायेगी। बहुत अनिवार्य है व्यवहार का परिवर्तन।

जागरूकता

ध्यान की तीसरी कसौटी है–जागरूकता। जागरूकता होना बहुत आवश्यक है। यह साधना का सबसे बड़ा सूत्र है। महावीर की समग्र साधना का एक मात्र सूत्र है अप्रमाद। साधना का विघ्न है प्रमाद और साधना का सूत्र है अप्रमाद। प्रमाद मत करो, विस्मृति मत करो, भूलो मत, प्रतिक्षण जागरूक रहो। जिस व्यक्ति में जागरूकता आ गई, उसके कर्त्तव्य का निर्वाह अच्छा होगा, उत्तरदायित्व का निर्वाह अच्छा होगा। जो व्यक्ति जागरूक नहीं होता, वह सम्यक् समझ ही नहीं पाता। जागरूकता आती है तो विषय को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पकड़ने में बड़ी सुविधा होती है। जर्मनी के मजिस्ट्रेट ने प्रेक्षाध्यान शिविर में भाग लिया। उसने दो-तीन वर्ष के बाद लिखा–'मेरी जागरूकता इतनी बढ़ गई कि मैं सामने आने वाली घटना का अंकन कर लेता हूं, उसका मूल्यांकन कर लेता हूं। मैं मजिस्ट्रेट हूं, मेरे सामने कोई अपराधी आता है, कटघरे में खड़ा होता है। मुझे बिना साक्ष्य के पता लग जाता है कि इस व्यक्ति ने अपराध किया है या नहीं। यह मुझे साक्षात प्रतीत हो जाता है।' यह जागरूकता का परिणाम है।

जो व्यक्ति जितना जागरूक, जितना संवेदनशील होता है, वह हर घटना को उतनी ही सूक्ष्मता से पकड़ लेता है। तिब्बत में एक ध्यान की प्रणाली चलती है, उसका नाम है कुंफू। कुंफू की प्रणाली बड़ी अजीब प्रणाली है। एक व्यक्ति ने अपना अनुभव लिखा–हम लोग तिब्बत गये। इस प्रणाली को जानना चाहा। हमें एक अंधे व्यक्ति के पास ले जाया गया। वह नब्बे वर्ष का था। उसने कहा–यह कुंफू की प्रणाली जागरूकता की प्रणाली है, संवेदनशीलता की प्रणाली है। इससे शरीर के सारे ज्ञान-तन्तु इतने संवेदनशील बन जाते हैं कि व्यक्ति हर किसी घटना को पकड़ लेता है। उसने कहा–तुम चार व्यक्ति लाठियां हाथ में ले लो और मुझे पीटना शुरू कर दो। मैं तुम्हारी एक भी चोट नहीं खाऊंगा। तुम मुझे पीटोगे, किन्तु मैं इतना संवेदनशील हूं कि कभी रास्ता निकाल कर बाहर चला जाऊंगा। उस व्यक्ति ने कहा–हम ऐसा काम नहीं कर सकते। आप इतने वृद्ध हैं, प्रज्ञाचक्षु हैं। हम आपके साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते। वृद्ध ने कहा–तुम मुझ पर दया मत करो। दया की बात छोड़ो। तुम्हें अगर कुंफू को समझना है तो मैं जैसा कहता हूं, वैसा करो। संकोच मत करो।

इस अजीब स्थिति का उल्लेख करते हुए उस व्यक्ति ने लिखा–मैं ऐसा नहीं कर सका, पर साथ में कुछ विद्यार्थी थे। पांच-सात विद्यार्थियों ने हाथ में लाठियां लीं। वृद्ध को घेर लिया और पीटने की तैयारी शुरू की। जैसे ही उन्होंने लाठियां चलाने की तैयारी की, उस वृद्ध व्यक्ति ने कहीं छिद्र देखा और उन विद्यार्थियों के घेरे से बाहर चला गया। विद्यार्थियों ने लाठियां चलाई। वे उन विद्यार्थियों पर ही गिरी। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। वृद्ध ने मुस्कराते हुए कहा–पुनः परीक्षा कर देख लो। मैंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए पूछा–यह कैसे हो सकता है? एक अन्धा आदमी जिसको दिखाई नहीं देता, जिसके चारों तरफ घेरा डाला हुआ है, कहीं अवकाश नहीं है फिर भी वह घेरे से सकुशल कैसे निकल गया? उस वृद्ध व्यक्ति ने बताया–मेरे ज्ञानतन्तु इतने सक्रिय और संवेदनशील बन गये हैं कि मैं तरंगों से देख लेता हूं। तुम आंखों से देखते हो और मैं तरंगों से देखता हूं।

यह जागरूकता का निदर्शन है। वृक्ष कैसे जानते हैं? छोटे कीड़े-मकोड़े कैसे ज्ञान कर लेते हैं। वे ध्वनि प्रकम्पनों से ज्ञान कर लेते हैं कि समुद्री तूफान आने वाला है, भूकम्प आने वाला है, लावा फटने वाला है। छोटे-छोटे जानवरों को इनका पहले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही पता चल जाता है। वे स्थान छोड़कर चले जाते हैं। उन्हें पता चलता है तरंगों के आधार पर, प्रकम्पनों के आधार पर। यह क्षमता मनुष्य के भीतर भी है। यदि जागरूकता बढ़ जाये तो उसे सूक्ष्म चीज का भी पता लगने लग जाये। बहुत बड़ा सूत्र है जागरूकता। जागरूकता नहीं है तो स्थूल चीज का पता भी नहीं चल सकता।

एक आदमी ने गाय खरीदी। जैसे ही वह गाय को दुहने लगा, गाय ने लात मार दी और दूध भी नहीं दिया। दूध था ही नहीं, गाय दूध कैसे देती? उसने सोचा–फंस गया। दलाल से संपर्क किया दलाल। किसी ग्राहक को ले आया। ग्राहक ने गाय देखी, पूछा–'गाय तो ठीक है, दूध कितना देती है?' वह व्यक्ति बोला–'मैं क्या कहूं। मेरे पड़ोस में एक बड़ा भक्त आदमी रहता है, रात-दिन माला जपता रहता है। वही इसकी साख दे देगा, उसके पास चलो।' सब उसके पास आए। ग्राहक ने पूछा–'भक्तजी महाराज! यह गाय दूध कितना देती है?' भक्त माला जप रहा था। उसने माला जपते-जपते एक पत्थर की ओर संकेत कर दिया। ग्राहक ने गाय खरीद ली। शाम का समय। वह गाय को दुहने बैठा। एक बूंद भी दूध नहीं मिला। दूध के स्थान पर लातों की मार अवश्य पड़ी। वह भक्त के पास आया, बोला–'इतने बड़े भक्त कहलाते हो, मुझे धोखा दे दिया। गाय तो बिल्कुल दूध नहीं देती।'

भक्त ने कहा–'मैंने क्या धोखा दिया?'

'आप जब माला फेर रहे थे, तब आपने उस पत्थर की ओर संकेत किया था। वह पत्थर कम-से-कम दस किलो का था। मैंने सोचा–गाय दस किलो दूध देगी

भक्त बोला–'मूर्ख ! मैंने तो यह कहा था–यह पत्थर दूध दे तो यह गाय दूध देगी

जागरूकता के बिना होता कुछ है, समझ लिया जाता है कुछ और। जिस व्यक्ति में जागरूकता नहीं बढ़ी, उसकी समझ की शक्ति भी इतनी मोटी बन जाती है कि वह स्थूल बात को भी नहीं पकड़ पाता। संकेत को पकड़ना तो और मुश्किल हो जाता है। जागरूकता ध्यान की निष्पत्ति है। ध्यान करने वाले व्यक्ति में उसका विकास होना चाहिए।

दुःख में कमी

ध्यान की चौथी कसौटी है–दुःख में कमी। योगसूत्र में चंचलता का पहला परिणाम बतलाया है दुःख। जो आदमी जितना चंचल है, उतना दुःखी है। जो चंचल नहीं होता वह बड़ी घटना को भी थोड़े में समाप्त कर देता है। जो चंचल होता है, वह एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोटी-सी राई जितना घटना का भी पहाड़ जितना बनाकर दुःख भोगता चला जाता है। तनाव, बेचैनी, उदासी, अवसाद आदि जितने मानसिक अथवा आंतरिक दुःख हैं, वे दुःख चंचलता के परिणाम हैं। चंचलता कम हुई, दुःख कम हो जाएंगे। वस्तुतः यह महत्वपूर्ण कसौटी है। अगर ध्यान सिद्ध हो रहा है तो दुःख कम होने चाहिए। ध्यान की सिद्धि और दुःख-बाहुल्य–दोनों का सह-अवस्थान नहीं हो सकता। ध्यान करने वाला व्यक्ति स्वयं निरीक्षण करे–मैंने जिस समय ध्यान शुरू किया, उस समय मानसिक दुःख की स्थिति क्या थी और आज एक वर्ष बाद क्या स्थिति है? व्यक्ति व्यापार का प्रतिवर्ष लेखा-जोखा करता है। पहले दीपावली या रामनवमी के दिन व्यापारी वर्ग वर्ष भर के बहीखाते मिलाता था। आजकल मार्च एण्डिंग में लेखा-जोखा होता है। प्रत्येक व्यक्ति यह लेखा-जोखा करे–मैंने उस शिविर में उस दिन से ध्यान शुरू किया। आज एक वर्ष बीत गया है। मेरा मानसिक दुःख कम हुआ या नहीं? अगर हुआ है तो मानना चाहिए–ध्यान सध रहा है और नहीं हुआ है तो समझना चाहिए–ध्यान अभी सधा नहीं है।

दौर्मनस्य का अभाव

ध्यान की पांचवी कसौटी है–दौर्मनस्य का अभाव। व्यक्ति के मन में अनेक इच्छाएं पैदा होती हैं। प्रत्येक इच्छा पूरी नहीं हो सकती। इच्छा में कोई बाधा आ गई, किसी दूसरे व्यक्ति ने बाधा डाल दी अथवा ऐसा कारण बन गया कि इच्छा पूरी नहीं हुई। इच्छा पूरी न होने के कारण मन में एक चोट लगती है और तब व्यक्ति के प्रति या स्थिति के प्रति दौर्मनस्य पैदा हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में आकांक्षा जागती है, इच्छा पैदा होती है। प्रकृति का नियम है–सारी इच्छाएं कभी किसी की पूरी नहीं होती। बहुत सारा दुःख है, वह यथार्थ का नहीं है। इच्छा पैदा करे और वह पूरी न हो तो दुःख होता है। यह स्वाभाविक है कि इच्छा की विफलता से एक चोट लगती है और वह एक समस्या पैदा करती है, किन्तु ध्यान की कसौटी यह है कि इच्छा पूरी न होने की स्थिति में भी दौर्मनस्य का भाव न आए। ध्यानी व्यक्ति में यह चिंतन उभरना चाहिए–अमुक कार्य ठीक होता तो अच्छा रहता और न हुआ तो कोई बात नहीं है। वह उस इच्छा के लिए दुःखी न बने। एक मुनि भिक्षा के लिए गए। शुद्ध आहार नहीं मिला। खाली आ गए। किसी ने कहा–आज तो भिक्षा नहीं मिली है, आहार नहीं मिला है, क्या करोगे? मुनि का उत्तर होता है–मैं उपवास करूंगा। यह बहुत अच्छा हुआ। मैं उपवास करने वाला नहीं था किन्तु आज सहज तप हो जाएगा। मुनि ने यदि ऐसा चिंतन कर लिया, तो दुःख नहीं हुआ। पर स्वाभाविक परिवर्तन हो गया। यह स्थिति ध्यान-साधना के द्वारा ही सम्भव है। अन्यथा व्यक्ति विपरीत अर्थ लगा लेता है और दुःखी बन जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथ के तीसरे आचार्य थे श्री रायचन्दजी। वे सहज साधक थे। उनका एक नाम था ब्रह्मचारीजी। बहुत पवित्र आत्मा थे। जब आचार्य पद पर आसीन हो रहे थे। किसी ने कहा–महराज ! यह क्या दिन देखा ! यह तो नखेद तिथि है। निषेध का व्यवहार में उच्चारण 'नखेद' होता है। भाई ने कहा–महाराज ! नखेद तिथि में पदाभिषेक हो रहा है। ऋषिराय ने कहा–अरे ! बहुत अच्छा हुआ, हमने तो देखा नहीं, सहज ही अच्छा हो गया। 'नखेद' अर्थात् न खेद–कोई खेद नहीं है। मिथ्या सम्यक् में परिणत हो गया, दुःख सुख में बदल गया।

यह स्थिति तब बनती है जब हमारी ध्यान की साधना सध जाए। उस स्थिति में इच्छा के अभिघात से होने वाली चोट नहीं लगती, किन्तु हम स्वयं उस घटना को सम्यक् ग्रहण कर लेते हैं। यदि इच्छा किसी के बाधा डालने से सफल न बने तो भी मन में कष्ट नहीं होगा, बाधा डालने वाले व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं होगा, शत्रुता नहीं होगी। यह चिंतन प्रस्फुटित होगा–मैंने अपना काम कर लिया, पुरुषार्थ कर लिया। उसने अपना काम कर लिया। संन्यासी ने कितना मार्मिक कहा था–'बिच्छु डंक मार रहा है तो बिच्छु अपना काम कर रहा है और मैं उसे बार-बार पानी से बाहर निकाल रहा हूं तो मैं अपना काम कर रहा हूं।' यह दौर्मनस्य न होना ध्यान की कसौटी है। यदि ध्यान करने वाला व्यक्ति दौर्मनस्य का जीवन जीए तो ध्यान करने का क्या परिणाम आया? इच्छा की पूर्ति उसके हाथ में नहीं भी हो सकती है, किन्तु दुःख न होना, दौर्मनस्य का पैदा न होना तो उसके हाथ में होना चाहिए।

श्वास की संख्या में कमी

ध्यान की छठी कसौटी है–श्वास की संख्या में कमी। आप ध्यान कर रहे हैं और आपकी श्वास की संख्या कम होती जा रही है तो मानें–ध्यान सध रहा है। यदि श्वास की संख्या पहले जैसी ही है अथवा बढ़ती जा रही है तो मानें–ध्यान नहीं सध रहा है, आवेश बढ़ रहा है। ध्यान करने वाले व्यक्ति की एक महत्वपूर्ण पहचान है कि उसका श्वास कैसा है? ध्यान करने से पूर्व व्यक्ति सोलह, सतरह अथवा अठारह श्वास लेता है तो ध्यान के बाद उसमें कमी आनी चाहिए। चौदह, बारह, दस–इस प्रकार श्वास की संख्या घटनी चाहिए। जैसे–जैसे भीतर में शांति व्याप्त होगी, आवेश शांत होगा, कषाय का क्षेत्र–इमोशनल एरिया बिल्कुल संतुलित होती चली जाएगी, वैसे-वैसे श्वास की संख्या कम होती चली जायेगी। आप श्वास की संख्या को स्वयं नाप लें कि कितने श्वास आ रहे हैं। यह नाप एक महीने से किया जा सकता है, छह महीने अथवा बारह महीने से किया जा सकता है।

जैसे एक्यूप्रेशेर की पद्धति स्वयं-निदान की पद्धति है वैसे ही ध्यान करने वाले के लिए श्वास की संख्या का ज्ञान स्वयं का निदान है। श्वास की गति को देखो, पता लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायेगा—ध्यान कहां तक बढ़ा है? स्वरोदय शास्त्र का समग्र विकास श्वास के आधार पर हुआ है। जो व्यक्ति श्वास की गति को ठीक समझने लग जाता है, वह ऐसी-ऐसी भविष्यवाणियां कर देता है, जिनकी सामान्य आदमी कल्पना नहीं कर सकता। केवल श्वास के आधार पर भविष्यवाणी करने की क्षमता भी आ जाती है। वह होने वाले घटनाक्रम को पहले ही समझ लेता है। इसका कारण बनता है—श्वास की गति।

संवेदनशीलता

ध्यान की सातवीं कसौटी है—संवेदनशीलता। ध्यान से आत्मसंवेदना जागी है, करुणा जगी है तो मानना चाहिए—ध्यान सध रहा है। यदि संवेदनशीलता नहीं जगी है, उतनी ही क्रूरता है जितनी पहले थी तो मानना चाहिए—ध्यान नहीं सध रहा है। अपने कर्मचारियों के प्रति, नौकरों के प्रति, पड़ोसियों के प्रति, परिवार के छोटे लोगों, स्त्रियों के प्रति—मन में वही क्रूरता है, वही क्रूर व्यवहार है, करुणा और संवेदनशीलता नहीं है तो ध्यान का क्या अर्थ होगा? दूसरे की कठिनाई को समझने की भावना नहीं है, उसे दूर करने की भावना नहीं है तो ध्यान से क्या मिला? यह कभी नहीं हो सकता कि ध्यान करने वाला व्यक्ति अपने घर से कचरा निकाले, घर की सफाई करे और उस कचरे को पड़ोसी के घर के सामने डाल दे। उसके लिए यह कभी संभव नहीं है कि अपने घर को अच्छा रखने के लिए दूसरों के घर के सामने गंदगी का ढेर कर दे। उसमें इतनी संवेदनशीलता आ जाती है, वह यह समझने लग जाता है—'पर' भी आत्मतुल्य है। मुझे जो प्रिय नहीं है, मैं दूसरे के लिए क्यों करूं? प्रसिद्ध वाक्य है—'पापाय परपीड़नम्'—परपीड़न पाप के लिए होता है। भगवान महावीर ने कहा—'जैसे तुम अपना अप्रिय नहीं चाहते वैसे ही दूसरों का भी अप्रिय मत चाहो।' ये सूत्र उसी संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति करने वाला सूत्र है। वह न जागे तो इन शब्दों का अर्थ ही समझ में नहीं आता। संवेदनशीलता जाग जाती है, तभी इनका अर्थ समझ में आता है।

आज की स्थिति विचित्र है। हम लोग बीदासर में चातुर्मास बिता रहे थे। वहां एक घर देखा। सामने की दीवार बहुत अच्छी थी, दरवाजा बहुत अच्छा था, ताला बहुत मजबूत लगा हुआ था किन्तु पीछे से सारी भींत टूटी हुई थी। अब वह ताला क्या काम आएगा? पीछे की दीवार टूटी हुई है तो आगे की चहर-दीवारी का क्या अर्थ होगा? यदि पीछे की दीवार टूटी हुई है तो बिना ताला खोले कोई जा सकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, बिना दरवाजा खोले कोई जा सकता है। ऐसी ही स्थिति आज बन गई है।

एक बैंक का कर्मचारी समझदार कम था। बैंक मैनेजर ने सांझ के समय बैंक का ताला लगा दिया और बैंक को आगे से सील कर दिया। उसने कर्मचारी से कहा—पूरी जागरूकता के साथ ध्यान रखना। मैनेजर चला गया। सुबह आया, देखा—पीछे से भींत टूटी हुई है। उसने देखते ही कर्मचारी से कहा—'यह क्या हुआ? कोई भीतर घुसा?' कर्मचारी बोला—'मुझे मालूम नहीं।'

'अरे ! तुम यहां थे। भीतर से सारा माल चला गया और तुम्हें पता नहीं चला।

मेरी जिम्मेवारी सील की रक्षा करने की थी, न कि माल की रक्षा करने की। सील कहीं टूटी हो तो मुझे बता दें। सील वैसी की वैसी ही है। माल चला गया तो उसका मैं क्या करूं?'

ऐसा लगता है—धर्म का क्षेत्र भी कुछ ऐसा ही बन गया है। वहां चपड़ी-सील की रक्षा बराबर की जा रही है किन्तु माल चले जाने की जिम्मेवारी से बचने का प्रयत्न चल रहा है। ध्यान करने वाले व्यक्ति में यह स्थिति नहीं बननी चाहिए। उसमें संवदेनशीलता और करुणा का विकास होना चाहिए।

कसें, खरे उतरें

ध्यान की ये सात कसौटियां हैं। इनकी परीक्षा किसी सुनार के पास जाकर न कराएं, स्वयं करें, यह आवश्यक है। आप सोचें—ध्यान का परिणाम क्या आ रहा है? परिवर्तन कितना आ रहा है? मैं कितना बदल रहा हूं? भीतर की बात जब तक व्यवहार में नहीं आएगी, तब तक क्या होगा? आप ध्यान करते हैं या नहीं करते, इसका पता सब व्यक्तियों को नहीं चलता। दूसरे व्यक्ति को तो केवल इस बात का पता चलता है कि आप कैसा व्यवहार करते हैं? ध्यान करने वाले बहुत सावधान रहें, इन कसौटियों से स्वयं को कसें, इन पर खरे उतरें। यदि ऐसा होगा तो ध्यान और ध्याता—दोनों कृतार्थ हो जाएंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान के अवतरण के लिए कुछ मर्यादाओं का निर्देश किया गया है। बाहरी और आंतरिक दोनों वातावरण अनुकूल होते हैं तब ध्यान का जन्म होता है। स्वच्छ स्थान, कोलाहल से मुक्त पवित्र वातावरण, पद्मासन, वज्रासन या अर्द्धवज्रासन, बन्द या अधमूंदी आंखें, जिनमुद्रा, ज्ञानमुद्रा अथवा खुले हाथ की मुद्रा, बाएं हाथ पर दायां हाथ यह सब ध्यान का बाहरी वातावरण है। इस वातावरण में ध्यान का जन्म होता है।

जब संग का त्याग होता है, आसक्ति कम होती है तब ध्यान का जन्म होता है। तीव्र आसक्ति वाले पुरुष में जन्म होता है। बहुत तीव्र कषाय वाले व्यक्ति में ध्यान का जन्म नहीं होता है। जिस व्यक्ति में संकल्प होता है, व्रत और नियम होता है, उसमें ध्यान का जन्म होता है। असंयमी मनुष्य में ध्यान का जन्म नहीं होता। जब मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है तब ध्यान का जन्म होता है।

—आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती

लाडनूं-३४१३०६ (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org